



उववाइय सुत्त

(औपपातिक सूत्र)

(मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ,
भावार्थ एवं विवेचन सहित)



प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन
संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
शास्त्रा-नेहरू गेट बाहर, व्यावर

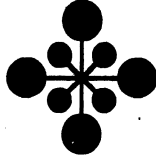


श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्न माला का ६२ वाँ रत्न

उपवाइय सूत्र

(औपपातिक सूत्र)

(शुद्ध मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ एवं विवेचन सहित)



प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन
संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
शाखा-नेहरू गेट बाहर, ब्यावर-३०५६०१
☎ (०१४६२) २५१२१६, २५७६६६ फेक्स नं. २५०३२८

द्रव्य सहायक

सुश्राविका श्रीमती मंगलाबहन जशवंतलाल शाह, मुम्बई प्राप्ति स्थान

१. श्री अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, सिटी पुलिस, जोधपुर २६२६१४५
२. शाखा-अ. भा. सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, नेहरू गेट बाहर, ब्यावर २५१२१६
३. महाराष्ट्र शाखा-माणके कंपाउंड, दूसरी मंजिल आंबेडकर पुतले के बाजू में, मनमाड
४. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी तलावलेन पो० बा० नं० २२१७, बम्बई-२
५. श्रीमान् हस्तीमल जी किशनलालजी जैन प्रीतम हाऊस काँ० सोसा० ब्लॉक नं० १०
स्टेट बैंक के सामने, मालेगांव (नासिक)
६. श्री एच. आर. डोशी जी-३६ बस्ती नारनौल अजमेरी गेट, दिल्ली-६ २३२३३५२१
७. श्री अशोकजी एस. छाजेड़, १२१ महावीर क्लॉथ मार्केट, अहमदाबाद
८. श्री सुधर्म सेवा समिति भगवान् महावीर मार्ग, बुलडाणा
९. श्री श्रुतज्ञान स्वाध्याय समिति सांगानेरी गेट, भीलवाड़ा
१०. श्री सुधर्म जैन आराधना भवन २४ ग्रीन पार्क कॉलोनी साउथ तुकोगंज, इन्दौर
११. श्री विद्या प्रकाशन मन्दिर, ट्रांसपोर्ट नगर, मेरठ (उ. प्र.)
१२. श्री अमरचन्दजी छाजेड़, १०३ वाल टेक्स रोड़, चैन्नई २५३५७७७५
१३. श्री संतोषकुमार बोथरा वर्द्धमान स्वर्ण अलंकार ३६४, शांपिंग सेन्टर, कोटा २३६०६५०

मूल्य : २५-००

द्वितीय आवृत्ति

१०००

वीर संवत् २५३१

विक्रम संवत् २०६१

अप्रैल २००५

मुद्रक - स्वास्तिक प्रिन्टर्स प्रेम भवन हाथी भाटा, अजमेर २४२३२६५

निवेदन

जैन धर्म के मूर्धन्य मनीषियों ने जैन आगम साहित्य को समय-समय पर अलग-अलग रूप से वर्गीकृत किया है। नंदी सूत्र के रचयिता आचार्य देववाचक जी ने सम्पूर्ण जैन आगम साहित्य को दो भागों-अंग प्रविष्ट और अंग बाह्य में विभक्त किया है। जबकि समवायाङ्ग सूत्र में इसे चौदह पूर्व एवं बारह अंग सूत्र में प्ररूपित किया है। वर्तमान में यही आगम साहित्य चार भागों में अंग, उपांग, मूल और छेद के रूप में प्रसिद्ध है। अंग सूत्रों में आचाराङ्गादि बारह सूत्रों का समावेश है। जिसमें वर्तमान में बारहवाँ दृष्टिवाद सूत्र का विच्छेद हो जाने से उपलब्ध नहीं है। शेष ग्यारह अंग, बारह उपांग, चार मूल और चार छेद रूप आगम श्रुतज्ञान रसिक साधकों के लिए उपलब्ध है।

औपपातिक सूत्र प्रथम उपांग सूत्र है। यद्यपि प्राचीनता एवं द्रव्यानुयोग की दृष्टि से प्रज्ञापना सूत्र विशेष महत्त्व रखता है। फिर भी औपपातिक सूत्र का उपांग सूत्रों में प्रथम स्थान होना अपने आप में अनेक मौलिक विशेषताओं का कारण है। जिसे आगे चर्चित किया गया है। प्रस्तुत सूत्र में दो विभाग हैं। प्रथम समवसरण दूसरा उपपात विभाग। चूंकि इस आगम (सूत्र) के दूसरे विभाग में जीवों के उपपात सम्बन्धी विस्तृत चर्चा है। इसी कारण इस सूत्र का नाम औपपातिक सूत्र रखा जाना संभव है। इस आगम की सबसे बड़ी विशेषता यह रही कि इसमें जिन-जिन विषयों निरूपण किया गया उनका पूर्ण विस्तार के साथ प्रतिपादन किया गया है। यही कारण रहा कि भगवती आदि अंग सूत्रों में जहाँ भी ये विषय आए वहाँ इनका संक्षिप्त कथन करके विशेष जानकारी के लिए इस सूत्र की भलावन दे दी गई।

जिस प्रकार बगीचा विभिन्न प्रकार के रंग बिरंगों, फूलों की महक से सुशोभित होता है। उसी प्रकार प्रस्तुत सूत्र भी अनेक विषयों के विशद वर्णन से सुशोभित है। इसमें जहाँ एक ओर उस समय की प्रचलित सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक स्थिति, आचार विचार, रीति रिवाज, वास्तुकला आदि का जीवन्त दिग्दर्शन किया गया है, तो दूसरी ओर उस समय की धार्मिक और दार्शनिक स्थिति का भी बहुत सुन्दर चित्रण किया गया है। चम्पानगरी की बसावट वहाँ के निवासियों की रिद्धि-सम्पदा, धार्मिक वृत्ति, आचार विचार, नगरी के बाहर उत्तर पूर्व दिशा भाग में-ईशान कोण में पूर्णभद्र नामक चैत्य (यक्षायतन) जो चारों ओर से विशाल वनखण्ड से घिरा हुआ। जिसके ठीक बीचोबीच एक विशाल एवं सुन्दर अशोक वृक्ष तथा उस अशोक वृक्ष के नीचे नीलमणी रंग का चबूतरे के सदृश शिलापट्टक जो मनोरम, दर्शनीय, अभिरूप आदि का हूबहू चित्रण किया है। साथ ही उस नगरी के राजा कोणिक, उसके राज्य दरबार, शासन व्यवस्था आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है।

कोणिक सम्राट की शासन व्यवस्था के वर्णन के साथ उसकी प्रभु महावीर के प्रति अनन्य भक्ति का दिग्दर्शन किया गया है। उसने प्रभु महावीर की दैनिक विहार-चर्या की जानकारी रखने के लिए अनेक कर्मचारियों से युक्त एक अलग से महकमा स्थापित कर रखा था। जो उन्हें प्रभु

महावीर प्रभु की दिन चर्या से अवगत कराते रहते थे। वैसे अनेक राजा-महाराजा प्रभु के प्रति अनन्य श्रद्धा भक्ति रखते थे। इतना ही नहीं आठ राजाओं ने तो प्रभु के चरणों में भागवती दीक्षा भी अंगीकार की। परन्तु कोणिक सम्राट द्वारा प्रभु महावीर की दैनिक विहार चर्या की जानकारी रखना अपने आप में एक बड़ी विशेषता रही।

प्रभु महावीर की शरीर सम्पदा का जितना विशद विवेचन प्रस्तुत सूत्र में मिलता है। वैसे विस्तृत वर्णन अन्य किसी आगम साहित्य में नहीं है। इसके साथ प्रभु महावीर के गुण सम्पन्न शिष्य समुदाय के साधक कैसे तेजस्वी, वर्चस्वी, यशस्वी, तपस्वी, ज्ञानी ध्यानी अनेक लब्धियों के धारक थे उसका भी सजीव वर्णन इसमें किया गया है।

प्रभु महावीर का अपने शिष्य समुदाय के सम्यक् चम्पानगरी में पधारना, कोणिक राजा को संदेशवाहक द्वारा सूचना मिलना, राजा द्वारा परोक्ष वंदना करना, देवों का आगमन, समवसरण की रचना, कोणिक राजा का सपरिवार प्रभु वंदना के लिए जाना, प्रभु द्वारा धर्मदेशना देना जिसमें श्रमणाचार और श्रावकाचार के सम्पूर्ण आचार मार्ग का प्ररूपण होना, परिषद् का विसर्जन आदि का विशद वर्णन प्रस्तुत सूत्र में किया गया है। यहाँ तक प्रथम समवसरण अध्ययन का निरूपण है। इसके पश्चात् दूसरे अध्ययन उपपात की शुरुआत है। जहाँ गणधर इन्द्रभूति परिषद् विसर्जन के बाद जीवों के उपपात सम्बन्धी अपनी अनेक जिज्ञासाएं प्रभु के चरणों में निवेदन की कि हे भगवन् ! जीवों के पाप कर्म का अनुबन्ध कैसे होता है ? किस प्रकार के आचार-विचार से जीव मरकर किस-किस योनि में उत्पन्न होते हैं ?

उपपात के सम्बन्ध में गणधर गौतम ने बाल अज्ञानी, संकिलष्ट परिणामी, भद्र परिणामी, विभिन्न वानप्रस्थ तापसों, परिव्राजकों, प्रत्यनीकों, निहवों, आजीवक मत वालों, संज्ञी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनि जीवों, अल्प आरम्भी मनुष्यों, अनारम्भी श्रमणों आदि के बारे में प्रभु से पृच्छा की, जिसका प्रभु ने विशद समाधान फरमाया। इसके अलावा अम्बड़ परिव्राजक उसकी वीर्य लब्धि, वैक्रिय लब्धि, अवधिज्ञान उसके सात सौ शिष्यों, उनके द्वारा बिना आज्ञा पानी ग्रहण नहीं करने, सभी के द्वारा संथारा ग्रहण करने, उनके उपपात की विस्तृत चर्चा उस सूत्र में की गई है। साथ ही केवली समुद्धात करने के कारण, उसका स्वरूप, सिद्धों का स्वरूप, इनका परिवास, सिद्ध-शिला के विभिन्न नाम एवं उनके स्वरूप का विस्तृत सजीव दिग्दर्शन प्रस्तुत सूत्र में किया गया है। निष्कर्षतः प्रस्तुत सूत्र अपने आप में बहुत ही महत्त्वपूर्ण सामग्री संजोए है। नगर, चैत्य, राजा, रानियाँ, प्रभु की शरीर सम्पदा, शिष्य वर्ग की विशेषताएं, समवसरण की रचना, धर्म देशना, उपपात आदि का जो जीवत्व चित्रण प्रस्तुत आगम में है। वह अन्य आगमों के लिए आधार भूत है। विषय वस्तु के साथ इसकी भाषा सरल एवं रोचक है ताकि सामान्य पाठक भी इसे आसानी से समझ सके। सामान्य जानकारी के लिए भी प्रस्तुत सूत्र बहुत उपयोगी है।

संघ द्वारा इस सूत्र का प्रकाशन सन् १९६३ में यानी लगभग ३५ वर्ष पूर्व हुआ था। जिसका अनुवाद आत्मार्थी पण्डित मुनि श्री उमेशमुनि जी म. सा. "अणु" ने किया था। जिसमें मूल पाठ

के साथ संक्षिप्त हिन्दी अनुवाद था। जो काफी समय से अनुपलब्ध था। अब इस सूत्र को संघ द्वारा प्रकाशित भगवती सूत्र की शैली (Pattern) पर तैयार किया गया है। मूल पाठ, कठिन शब्दार्थ, भावार्थ तथा आवश्यकतानुसार स्थान-स्थान पर विवेचन भी दिया गया है।

इस सूत्र की प्रेस काफी सुश्रावक श्री पारसमल जी सा. चण्डालिया ने तैयार की। जिसे आदरणीय मुमुक्षु आत्मा श्री धनराजजी बडेरा (वर्तमान में धर्मेश मुनि) एवं सेवाभावी सुश्रावक श्री हीराचन्द जी सा. पीचा ने पूज्य “वीरपुत्र जी” म. सा. को सुनाया। पूज्य श्री ने जहाँ उचित समझा संशोधन बताया वह किया। इसके पश्चात् पुनः इसे श्रीमान् पारसमल जी सा. चण्डालिया एवं मेरे द्वारा अवलोकन किया गया। इस प्रकार इस सूत्र को तैयार करने में पूर्ण सर्तकता एवं सावधानी बरती गई है। बावजूद इसके आगम ज्ञान की अल्पता, मुद्रण दोष से कोई त्रुटि रह गई हो तो तत्त्वज्ञ आगम मनीषीयों से निवेदन है कि हमे सूचित कर अनुग्रहित करावें।

संघ का आगम प्रकाशन का काम प्रगति पर है। इस आगम प्रकाशन के कार्य में धर्म प्राण समाज रत्न तत्त्वज्ञ सुश्रावक श्री जशवंतलाल भाई शाह एवं श्राविका रत्न श्रीमती मंगला बहन शाह, बम्बई की गहन रुचि है। आपकी भावना है कि संघ द्वारा जितने भी आगम प्रकाशन हो वे अर्द्ध मूल्य में ही बिक्री के लिए पाठकों को उपलब्ध हो। इसके लिए उन्होंने सम्पूर्ण आर्थिक सहयोग प्रदान करने की आज्ञा प्रदान की है। तदनुसार प्रस्तुत आगम पाठकों को उपलब्ध कराया जा रहा है, संघ एवं पाठक वर्ग आपके इस सहयोग के लिए आभारी है।

आदरणीय शाह साहब तत्त्वज्ञ एवं आगमों के अच्छे ज्ञाता हैं। आप का अधिकांश समय धर्म साधना आराधना में बीतता है। प्रसन्नता एवं गर्व तो इस बात का है कि आप स्वयं तो आगमों का पठन-पाठन करते ही हैं, पर आपके सम्पर्क में आने वाले चतुर्विध संघ के सदस्यों को भी आगम की वाचनादि देकर जिनशासन की खूब प्रभावना करते हैं। आज के इस हीयमान युग में आप जैसे तत्त्वज्ञ श्रावक रत्न का मिलना जिनशासन के लिए गौरव की बात है। आपकी धर्म सहायिका श्रीमती मंगलाबहन शाह एवं पुत्र रत्न मयंकभाई शाह एवं श्रेयांसभाई शाह भी आपके पद चिन्हों पर चलने वाले हैं। आप सभी को आगमों एवं थोकड़ों का गहन अभ्यास है। आपके धार्मिक जीवन को देख कर प्रमोद होता है। आप चिरायु हो एवं शासन की प्रभावना करते रहे।

उववाई सूत्र की प्रथम आवृत्ति अगस्त २००१ में प्रकाशित हुई थी। जो कुछ ही समय में अप्राप्य हो गई। अब इसकी यह द्वितीय आवृत्ति प्रकाशित की जा रही है। पाठक बंधुओं से निवेदन है कि इस नवीन आवृत्ति का अधिक से अधिक लाभ उठावें। इसी शुभ भावना के साथ!

ब्यावर (राजस्थान)

दिनांक : १०-४-२००५

संघ सेवक

नेमीचन्द बांठिया

अस्वाध्याय

निम्नलिखित बत्तीस कारण टालकर स्वाध्याय करना चाहिये।

आकाश सम्बन्धी १० अस्वाध्याय

१. बड़ा तारा टूटे तो-
 २. दिशा-दाह *
*
 ३. अकाल में मेघ गर्जना हो तो-
 ४. अकाल में बिजली चमके तो-
 ५. बिजली कड़के तो-
 ६. शुक्ल पक्ष की १, २, ३ की रात-
 ७. आकाश में यक्ष का चिह्न हो-
 - ८-९. काली और सफेद धूंअर-
 १०. आकाश मंडल धूलि से आच्छादित हो-
- औदात्तिक सम्बन्धी १० अस्वाध्याय**
११-१३. हड्डी, रक्त और मांस,

काल मर्यादा

- एक प्रहर
जब तक रहे
दो प्रहर
एक प्रहर
आठ प्रहर
प्रहर रात्रि तक
जब तक दिखाई दे
जब तक रहे
जब तक रहे

१४. अशुचि की दुर्गंध आवे या दिखाई दे-

१५. श्मशान भूमि-

१६. चन्द्र ग्रहण-

(चन्द्र ग्रहण जिस रात्रि में लगा हो उस रात्रि के प्रारम्भ से ही अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१७. सूर्य ग्रहण-

(सूर्य ग्रहण जिस दिन में कभी भी लगे उस दिन के प्रारंभ से ही उसका अस्वाध्याय गिनना चाहिये।)

१८. राजा का अवसान होने पर,

१९. युद्ध स्थान के निकट

२०. उपाश्रय में पंचेन्द्रिय का शव पड़ा हो,

(सीमा तिर्यच पंचेन्द्रिय के लिए ६० हाथ, मनुष्य के लिए १०० हाथ। उपाश्रय बड़ा होने पर इतनी सीमा के बाद उपाश्रय में भी अस्वाध्याय नहीं होता। उपाश्रय की सीमा के बाहर हो तो यदि दुर्गन्ध न आवे या दिखाई न देवे तो अस्वाध्याय नहीं होता।)

२१-२४. आषाढ़, आश्विन,

कार्तिक और चैत्र की पूर्णिमा

दिन रात

२५-२८. इन पूर्णिमाओं के बाद की प्रतिपदा-

दिन रात

२९-३२. प्रातः, मध्याह्न, संध्या और अर्द्ध रात्रि-

इन चार सन्धिकालों में-

१-१ मुहूर्त

उपरोक्त अस्वाध्याय को टालकर स्वाध्याय करना चाहिए। खुले मुंह नहीं बोलना तथा दीपक के उजाले में नहीं बांचना चाहिए।

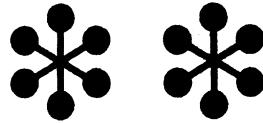
ज्योत - नक्षत्र २८ होते हैं उनमें से आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक नौ नक्षत्र वर्षा के गिने गये हैं। इनमें होने वाली मेघ की गर्जना और बिजली का चमकना स्वाभाविक है। अतः इसका अस्वाध्याय नहीं गिना गया है।

* आकाश में किसी दिशा में नगर जलने या अग्नि की लपटें उठने जैसा दिखाई दे और प्रकाश हो तथा नीचे अंधकार हो, वह दिशा-दाह है।

विषयानुक्रमिका

क्रं.	विषय	पृष्ठ	क्रं.	विषय	पृष्ठ
१.	नगरी वर्णन	१	२१.	अनगारों का अप्रतिबन्ध विहार	५७
२.	चैत्य वर्णन	६	२२.	अनगारों की तपश्चर्या	६०
३.	वनखण्ड वर्णन	११	२३.	बाह्य तप	६१
४.	अशोक वृक्ष	१४	२४.	आभ्यन्तर तप	७५
५.	शिलापट्टक वर्णन	१६	२५.	अनगारों की सक्रियता	८९
६.	कोणिक राजा का वर्णन	१७	२६.	संसार सागर से तिर कर पार होना	९०
७.	धारिणी रानी का वर्णन	१९	२७.	देवों का आगमन	९३
८.	कोणिक राजा की भगवद्भक्ति	२०	२८.	देवों का शरीर और शृंगार	९४
९.	भगवान् महावीर का वर्णन	२१	२९.	भवनपति देवों का वर्णन	९६
१०.	भगवान् का शरीर वर्णन	२२	३०.	व्यंतर देवों का वर्णन	९७
११.	शिख-नख वर्णन	२३	३१.	ज्योतिषी देवों का वर्णन	९८
१२.	धर्म सन्देशवाहक	३०	३२.	वैमानिक देवों का वर्णन	९९
१३.	कोणिक का परोक्ष वन्दन	३३	३३.	चम्पा नगरी में लोक वार्ता	१००
१४.	भगवान् का आगमन	३८	३४.	भगवान् के पास जन समूह का गमन	१०२
१५.	भगवान् के अन्तेवासी	३८	३५.	कोणिक को भगवान् की दिनचर्या- का निवेदन	१०४
१६.	निर्ग्रन्थों की ऋद्धि	४०	३६.	कोणिक राजा का आदेश	१०५
१७.	निर्ग्रन्थों का तप	४२	३७.	अभिवन्दना की तैयारी	१०६
१८.	स्थविरों के बाह्य-आभ्यन्तर गुण	४८	३८.	कोणिक का स्नान मर्दानादि	१११
१९.	अनगारों के गुण	५३	३९.	अभिवन्दना के लिए प्रस्थान	११४
२०.	निर्ग्रन्थों की उपमाएँ	५४			

क्रं.	विषय	पृष्ठ	क्रं.	विषय	पृष्ठ
४०.	कोणिक का जनता द्वारा स्वागत	११८	६१.	आजीवक.....उपपात	१७२
४१.	भगवान् की पर्युपासना	१२१	६२.	अतुक्कोसिय.....उपपात	१७२
४२.	सुभद्रा महारानी का प्रस्थान	१२२	६३.	निहवों का उपपात	१७३
४३.	भगवान् महावीर की धर्म-देशना	१२४	६४.	प्रतिविरत अप्रतिविरत अल्पआरंभी का उपपात	१७४
४४.	सभा विसर्जन	१३३	६५.	अनारंभी का उपपात	१७८
४५.	कोणिक राजा और रानियों का गमन	१३४	६६.	सर्वकाम विरत का उपपात	१८०
४६.	औपपातिक पृच्छा	१३६	६७.	केवलि समुद्घात के पुद्गल	१८१
४७.	कर्म बन्धन	१३८	६८.	केवलि समुद्घात का कारण	१८२
४८.	असंयत यावत् एकान्त सुप्त का उपपात	१४०	६९.	आवर्जीकरण का स्वरूप	१८४
४९.	बन्दी आदि का उपपात	१४२	७०.	समुद्घात के बाद की योग प्रवृत्ति	१८६
५०.	भद्र प्रकृति वाले आदि का उपपात	१४५	७१.	योग निरोध और सिद्धि	१८८
५१.	गतपतिका आदि का उपपात	१४५	७२.	वहां स्थित सिद्ध का स्वरूप	१९१
५२.	द्वि-द्रव्यभोजी आदि का उपपात	१४६	७३.	सिद्धयमान जीव के संहननादि	१९३
५३.	वानप्रस्थ तापसों का उपपात	१४८	७४.	सिद्धों का निवासस्थान	१९४
५४.	प्रव्रजित श्रमण कान्दर्पिक आदि का उपपात	१४९	७५.	सिद्ध स्तवना	१९७
५५.	परिव्राजकों का उपपात	१५०	७६.	परिशेष	२०९
५६.	अम्बड़ परिव्राजक के ७०० शिष्य	१५५			
५७.	अम्बड़ परिव्राजक	१५९			
५८.	अम्बड़ के भविष्य के भव	१६४			
५९.	प्रत्यनीक का यावत् उपपात	१७०			
६०.	संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचों का उपपात	१७१			



‘गमो जिणाणं जियभयाणं’

उववाइय सुत्त

(औपपातिक सूत्र)

नगरी वर्णन

१- तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा णामं णयरी होत्था। रिद्ध-त्थिमिय-समिद्धा, पमुइय-जण-जाणवया (पमुइय-जणुज्जाण-जणवया) आइण्ण-जण-मणुस्सा हल-सयसहस्स-संकिट्ट-विकिट्ट-लट्ट-पण्णत्त-सेउसीमा कुक्कुड-संडेय-गाम-पउरा उच्छु-जव-सालि-कलिया (सालिमालिणीया) गो-महिस-गवेलग-प्पभूया।

कठिन शब्दार्थ - होत्था - थी, रिद्ध - ऋद्धा-ऊँचे-ऊँचे भवनों से सुशोभित, त्थिमिए - स्तिमिता-स्वदेश के राजा व परदेश के राजा के भय से रहित, समिद्धा - समृद्धा-धन और धान्यादि से युक्त, पमुइय - प्रमुदिता-आनन्द युक्त, जण - जन-नागरिक जन, जाणवया- जानपदा-देश निवासी, आइण्ण - आकीर्ण-व्याप्त-भरा हुआ, हल सय सहस्स - सैकड़ों हजारों अथवा लाखों हल, संकिट्ट- संकृष्टा-अच्छी तरह से जोती हुई, विकिट्ट - विकृष्टा-बार-बार जोतने से कंकर पत्थर रहित होने से बीज बोने के योग्य, लट्ट - लष्टा-मनोज्ञ, पण्णत्त-सेउसीमा - प्रज्ञप्त सेतुसीमा-प्रत्येक किसान के खेत की सीमा बंधी हुई थी, कुक्कुड-संडेय-गामपउरा- जिसमें मुर्गे और सांडों का समूह बहुत था, उच्छु-जव-सालि-कलिया - इक्षु (गन्ना), जव और शाली (चावल) के ढेर से युक्त, गो-महिस-गवेलग-प्पभूया- गोमहिषगवेलक-प्रभूता-बैल, भैसा, गवेलक (मेढ़ा अथवा गौ) का गाय और बैल तथा ऐलक मेढ़ा) की प्रचुरता।

वर्णन - उस काल और उस समय में ‘चम्पा’ नाम की नगरी थी। वह ऋद्ध-ऋद्धिशाली अर्थात् बड़े-बड़े/भवनों वाली स्तिमित-स्वचक्र और परचक्र के भय से रहित अतएव स्थिर और समृद्ध-व्यापक आजीविक के साधनों की सुलभता, प्रचुरता और व्यापकता के कारण धनधान्यादि से युक्त थी। वहाँ नगरी-निवासी और देशवासी प्रसन्न रहते थे, अतः वह नगरी जन-मनुष्यों से भरपूर थी।

उसके आस-पास लम्बी दूर तक सैकड़ों-हजारों अथवा लाखों १००×१०००=लाखों हलों के द्वारा जोतने और बोने से सुन्दर और योग्य बनी हुई एवं मार्ग रूप सीमा से युक्त भूमि थी। उस नगरी में मुर्गों और तरुण साण्डों के बहुत-से समूह थे। ईख, जौ और शालि से लहलहाती हुई वहाँ की भूमि भली लगती थी। गायों, भैंसों और भेड़ों की अधिकता थी।

विवेचन - १. उववाइय-औपपातिक सूत्र में उपपात-वैक्रिय शरीरधारी नारक और देव में जन्म और सिद्धि-गमन के विषय में प्रश्नोत्तर हुए हैं। यह उपांग है। आचारांग सूत्र के सत्थपरिण्णा (शस्त्र-परिज्ञा) नामक पहले अध्ययन के पहले उद्देशक के 'एवमेगेसिं णो णायं भवइ, अत्थि मे आया उववाइए.....' इत्यादि सूत्र में आत्मा के जिस उपपात भाव का निर्देश किया गया है, उसका इस अध्ययन में विस्तार किया गया है। अतः इस आशय की समीपता के कारण, यह आचारांग का उपांग कहा जाता है।

ऐसी धारणा प्रचलित है कि अंग के किसी एक विषय को लेकर, जिसमें विस्तार से उसकी व्याख्या की गयी हो, उसे उपांग कहते हैं। विभिन्न उपांगों का सम्बन्ध अंगों के साथ जोड़ा जाता है। इस बात की पुष्टि टीकाकार के उपर्युक्त कथन से भी होती है।

२. 'उस काल.....उस समय.....' वर्तमान अवसर्पिणी काल के चौथे आरे के सामान्यकाल को 'उस काल' और जिसमें वह नगरी, राजा और परम तारक वर्धमान स्वामी विद्यमान थे, उस विशेष काल को 'उस समय' कहा गया है।

३. '.....नगरी थी' - जिस समय इस सूत्र का निर्माण हुआ था, उस समय में भी चम्पा नगरी विद्यमान थी, फिर भी '.....नगरी थी' - ऐसा भूतकालिक प्रयोग क्यों किया गया? कारण, अवसर्पिणीकाल हीयमान काल की अपेक्षा से। क्योंकि जिस काल की कहानी कही जा रही है-उस काल की विभूति के समान, जिस समय में कहानी कही जा रही है-उस में वह विभूति नहीं थी।

कालद्रव्य के निमित्त से द्रव्यों की अवस्था में सदा परिवर्तन होता रहता है। वस्तु क्षण मात्र भी एक-सी अवस्था में नहीं रह सकती। कुछ क्षणों के पहले ही घटित प्रसंगों के लिये भूतकालिक क्रिया का प्रयोग ही इस बात को सिद्ध कर रहा है। अतः द्रव्य की यह परिभाषा बिल्कुल सही है कि 'जो अपने सनातन गुणों में स्थित रहते हुए, नई-नई अवस्थाओं को धारण करे या पर्यायों में गमन करे।'

४. 'सैकड़ों-हजारों हलों.....' इस सूत्रांश में नगरी की लोक-बहुलता और क्षेत्र-बहुलता बतलाई गई है।

टीकाकार ने इस सूत्रांश के दो अर्थ-विकल्प और दिये हैं -

'लाखों हलों के द्वारा खेड़ी हुई.....नहरों के द्वारा सिञ्चित क्षेत्र भूमि जिसकी सीमा में हो ऐसी' अथवा '.....खेड़ने से दूर तक मनोज्ञ बनी हुई कही गई है सेतुसीमा जिसकी ऐसी।'

५. 'मुर्गों और.....' इस सूत्रांश से मनुष्यों का प्रमोद व्यक्त किया गया है। क्योंकि प्रमुदित लोग ही क्रीड़ा के लिये कुक्कुटों का पोषण करते हैं और साण्डों का सांड रूप में पालन करते हैं।

६. 'ईख.....' इस सूत्रांश से जनता के प्रमोद का कारण बताया गया है। क्योंकि इस प्रकार की वस्तुओं के अभाव में जन-प्रमोद हो ही नहीं सकता।

आयारवंत-चेइय-जुवइ-विविह-सण्णविट्ठ-बहुला उक्कोडिय-गाय-गंठि-भेय-भड-तक्कर-खंडरक्ख-रहिया खेमा णिरुवह्वा।

भावार्थ - आकारवान्-सुन्दर शिल्प कलामय चैत्यों-स्मारक मन्दिरों का और युवतियों के विविध सन्निवेशों का बाहुल्य था। औत्कटिकों-रिश्वतखोरों, ग्रन्थिभेदकों-गिरहकटों, भटों-उठाईगीरों-उचक्कों तस्करों-चोर डाकुओं और खण्डरक्षों-शुल्कपालों, दाणियों के उपद्रव से रहित, क्षेम से युक्त और शासकों के अत्याचार से रहित वह नगरी थी।

विवेचन - ७ 'आकारवान् चैत्य....' 'चैत्य' शब्द का प्रयोग शास्त्रों में अनेक अर्थों में हुआ है। जैसे कि-कहीं ज्ञान अर्थ में, कहीं जिनेश्वर देवों को जिन वृक्षों के नीचे ज्ञान की प्राप्ति हुई थी, उन वृक्षों के विशेषण रूप में, कहीं चौतरे सहित वृक्ष के अर्थ में, कहीं पूर्व पुरुषों के स्मारक चिह्न के अर्थ में, कहीं इष्ट देवता की प्रतिमा के अर्थ में, कहीं उद्यान के अर्थ के और कहीं चिता पर बने हुए चरण-चिह्नों और छतरियों के अर्थ में। यहाँ पर टीकाकार ने इस शब्द का अर्थ 'देवतायतन' (देवकुल) किया है और पाठान्तरों की व्याख्या में 'अर्हचैत्य' 'जनानां व्रतिनां च' अर्थात् वहाँ साधारण मनुष्य और व्रतधारी पुरुषों के समूह रहा करते थे। वस्तुतः यहाँ यह शब्द वीर या विशिष्ट पुरुषों के स्मारक-मन्दिरों के अर्थ में प्रयुक्त हुआ हो, ऐसा प्रतीत होता है। क्योंकि 'युवतियों के सन्निवेश' के साथ इस पद का उल्लेख है। अतः वे ऐसे स्थान होने चाहिए कि जो पूर्व पुरुषों की स्मृति में बने हुए होने पर भी, जहाँ विविध सांसारिक प्रवृत्तियाँ चलती हों, कला आदि का प्रदर्शन होता रहता हो और जीवन के कड़वे-मीठे प्रसंग उपस्थित होते रहते हों, जिनका जन-संस्कार के बनाव-बिगाड़ में बड़ा हाथ रहता है।

'युवतियों के सन्निवेश' का अर्थ, टीकाकार ने 'पण्य तरुणियों के पाटक' किया है। 'जुवइ' और 'सण्णविट्ठ' शब्द 'वेश्याओं के मोहल्ले' - यह अर्थ करने से पूर्व कुछ विचारणा के लिए प्रेरित करते हैं। 'पण्यतरुणी' शब्द का अर्थ यह भी हो सकता है कि - 'जन-साधारण के सहवास में आने वाली ऐसी स्त्रियाँ, जो कण्ठ, रूप और कला का प्रदर्शन करती हों, इन विषयों से सम्बन्धित शिक्षण देकर, अपनी आजीविका चलाती हों, यौन सम्बन्धी शिक्षण भी देती हों और राज्यनीति में भी दखल रखती हों, या राज-शासन में कोई कार्य साधने में जिनका उपयोग होता हो।' उनमें कई वर्ग होने की सम्भावना है। उनमें कुछ ऐसी भी हो सकती हैं, जो आजीवन पुरुष देह का भोगेच्छा से स्पर्श भी न करती हों। कुछ तरुणियों को गृहवास में प्रविष्ट होने की समाज से स्वीकृति और राजाज्ञा भी प्राप्त होती थी। कइयों के जीवन में राजाज्ञा से कितने ही पुरुषों का आगमन होता था और कई विलासिनियाँ भी होंगी। उन्हें राज्य संरक्षण प्राप्त था। ऐसा अर्थ करने में प्राचीन चरित्रों, इतिहास और लोक कथाओं का आधार है।

८. 'रिश्वतखोर.....' इस सूत्रांश से उपद्रवकारियों का अभाव सूचित किया गया है। राज्य का सुप्रबन्ध और जनता में बुरे संस्कारों के अभाव के साथ ही आत्म-रक्षण, आत्म-गौरव एवं सम्पन्नता युक्त तुष्टि का भी सूचन होता है।

सुभिक्षवा वीसत्थ-सुहावासा अणेग-कोडि-कुडुंबया-इण्ण-णिव्वुय-सुहा, णड-णट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्टिय-वेलंबय-कहग-पवग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंब-वीणिय-अणेग-तालायराणुचरिया, आरामुज्जाण-अगड-तलाग-दीहिय-वप्पिणि-गुणो-ववेया णंदणवण-सण्णिभ-प्पगासा।

भावार्थ - वहाँ भिक्षुओं के योग्य उचित भिक्षा मिलती थी, क्योंकि विभिन्न मतावलम्बी विश्वस्त निर्भय मनुष्यों का वहाँ सुखपूर्वक निवास था और अनेक कुटुम्बियों से घनी बस्ती होने पर भी आपस में अशान्ति-जनक व्यवहार का अभाव होने से-संतोष होने से सभी सुख से रहते थे। वह नगरी नट=नाटक करने वाले, नर्तक=नाचने वाले, नृत्यकला-विशारद, जल्ल=रस्सी पर चढ़ कर, कला दिखलाने वाले, राजा की प्रशंसा के गीत स्तोत्र पढ़ने वाले, मल्ल-कुश्ती करने वाले, मौष्टिक=मुष्टि-प्रहार की कला में दक्ष, विडम्बक=विदूषक, कथक-कथावाचक, प्लवक=उछलने वाले अथवा नदी आदि को तिरने वाले लासक=वीर रसोत्पादक गाथाएँ-रासक=गाने वाले, आख्यायक=शुभ-अशुभ का कथन करने वाले, लंख=बांस के अग्र भाग पर खेलने वाले, मंख=चित्रपट दिखाकर आजीविका करने वाले, तूणइल्ल 'तूण' नामक वाद्य को बजाने वाले, तुम्बवीणिक-वीणावादक और तालाचर=ताल बजाकर झांकी दिखलाने वाले इन व्यक्तियों के द्वारा पुनः पुनः सेवित थी। वहाँ कई गृहवाटिकाएँ-आराम, जिसके लताकुञ्जों में दम्पती आदि क्रीडा करते हों, ऐसे बगीचे सार्वजनिक बगीचे-उद्यान, उत्सव आदि में बहुजन भोग्य विपुल फूलों वाले वृक्ष आदि से घिरे हुए भूमिखण्ड, कुएँ, तालाब, लम्बी बावडियाँ दीर्घिका और साधारण बावडियाँ और जल क्रीडा रूप जलक्यारियाँ नंदन वन के समान सुशोभित थी।

उव्विद्ध-विउल-गंभीर-खाय-फलिहा चक्क-गय-मुसुंढि-ओरोह-सयग्घि-जमल-कवाड-घण-दुप्पवेसा धणु-कुडिल-वंक-पागार-परिक्खत्ता कविसीसय-वट्ट-रइय-संठिय-विरायमाणा।

अट्टालय-चरिय-दार-गोपुर-तोरण-उण्णय-सुविभत्त-रायमग्गा छेयायरिय-रइय-दढ-फलिह-इंदकीला।

भावार्थ - वह नगरी ऊँची, विस्तीर्ण गहरी और ऊपर से चौड़ी खाई से युक्त थी। जिसमें चक्र, गदा, मुसुण्ढि-बंदुक जैसा शस्त्र विशेष, अवरोध-अन्तर प्राकार या नगरी द्वार के सामने शत्रु-सेना के हाथियों आदि को रोकने के लिए बने हुए मजबूत साधन, शतघ्नी ऐसी महायष्टि या महाशिला अथवा

एक प्रकार का शस्त्र जिसके प्रयोग करने पर सैकड़ों मनुष्य मर जाते हैं और दरवाजे के निश्छिद्र कपाट-युगल के कारण शत्रुओं का प्रवेश करना कठिन था। धनुष के समान टेढ़े नगर कोट-प्राकार से वह नगरी घिरी हुई थी। उस कोट में विशिष्ट आकार के बनाये हुए गोल 'कविसीसग' भीतर से शत्रुसेना को देखने के लिये या अन्य कार्य के लिये बन्दर के शिर के आकार के बने हुए छेद शोभित हो रहे थे और वह कोट अट्टालक-प्राकार के ऊपर बने हुए आश्रयस्थान चरिक-कोट और नगरी के बीच में बना हुआ आठ हाथ चौड़ा मार्ग, द्वार=परकोटे में बने हुए छोटे द्वार-खिडकियाँ गोपुर नगर द्वार और तोरणद्वार से उन्नत था, जिससे राजमार्ग सुन्दर ढंग से विभक्त हो जाते थे। उन द्वारों की अर्गलाएँ और इन्द्रकील नगर द्वार के अवयव कुशल शिल्पाचार्य के द्वारा निर्मित हुए थे।

विवणि-वणिच्छेत्त (छेय) सिधियाइण्ण-णिव्वुय-सुहा सिंघाडग-तिग-चउक्क-चक्कर-पणियावण-विविह-वत्थु-परिमंडिया सुरम्मा, (सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह महापहेसु पणियावण-विविह-वेस-परिमंडिया) णरवइ-पविइण्ण-महिवइ-पहा अणेग-वर-तुरग-मत्त-कुंजर-रह-पहकर-सीय-संद-माणीया-इण्ण-जाण-जुग्गा, विमउल-णव-णलिणि-सोभिय-जला, पंडुर-वर-भवण-सण्ण महिया उत्ताण-णयण-पेच्छणिजा, पासाईया दरिसणिजा अभिरूवा पडिरूवा ॥ १ ॥

कठिन शब्दार्थ - पासाईया - चित्त प्रसन्न, कारिणी - देखने वाले के चित्त को प्रसन्न करने वाली, दरिसणिजा - जिसको देखते हुए आँखें थकती नहीं थी, अभिरूवा - मनोज्ञ-मन को लुभाने वाली, पडिरूवा - प्रतिरूप-जितनी वक्त देखे उतनी वक्त नया रूप दिखता था।

भावार्थ - हाटमार्ग, व्यापार के केन्द्र और शिल्पियों-कुंभकार आदि कलाविशारद-जिनके द्वारा जनप्रयोजन की सिद्धि होती है ऐसे कुशल कलाविदों की विपुलता से वहाँ सभी तरह से अमन-चैन था। त्रिकोण स्थान, तिराहे, चौक और चार से अधिक मार्गों के संगमस्थान, अनेक प्रकार की दुकानों और विविध मकानों से सुशोभित थे-अति रमणीय थे। राजा के गमनागमन से दर्शनोत्सुक मनुष्यों और सन्तों में चलने वाले मनुष्यादि के कारण राजमार्ग में भीड़ लगी रहती थी। इस नगरी के राजा के प्रभाव से अन्य राजाओं का प्रभाव कम हो गया था अर्थात् इस राजा का प्रभाव बहुत फैला हुआ था। मार्ग में श्रेष्ठ घोड़े, मस्त हाथी, ढंकी हुई पालखियाँ शिविका पुरुष प्रमाण पालखियाँ-स्यंदमानिका, रथों के समूह, गाड़ियाँ आदि यान और डोलियाँ आती-जाती रहती थी। इनका जमघट लगा रहता था। विकसित कमल और नव कुमुदनियों से शोभित जलाशय मार्ग में पड़ते थे। मार्ग के दोनों किनारों पर सफेदी से घेरेले बने हुए श्रेष्ठ भवनों की पंक्तियाँ भव्य लगते थे। नगर को देखते समय आँखें ऊँची उठी हुई रह जाती थी। पलकें मिरती ही-नहीं थी। नगरी का देखाव चित्त को प्रसन्न करने वाला, आँखों को लुभाने वाला, अपने में मन को रमा लेने वाला और हृदय में बस जाने वाला था।

चैत्य वर्णन

२- तीसे णं चंपाए णयरीए बहिया उत्तर-पुरत्थिमे (पुरच्छिमे) दिसि-भाए पुण्णभहे णामं चेइए होत्था। चिराईए पुव्वपुरिस-पण्णत्ते पोराने, सहिए वित्तिए (कित्तिए) णाए, सच्छत्ते सज्झए सघंटे सपडागाइपडाग-मंडिए, सलोम-हत्थे कयवेयहिए, लाउल्लोइय-महिए गोसीस-सरस-रत्त-चंदण-दहरदिण्ण-पंचंगुलितले, उवचिय-चंदण-कलसे चंदण-घड-सुकय-तोरण-पडिदुवार-देस-भाए, आसत्तोसत्त-विउल-वट्ट-वग्घारिय मल्ल-दाम-कलावे।

कठिन शब्दार्थ - चिराईए - चिरादिक-जिसकी आदि (प्रारम्भ) चिरकाल की थीं अर्थात् बहुत प्राचीन। पुव्व-पुरिस-पण्णत्ते - पूर्व पुरुष प्रज्ञप्त-बड़े बुढ़े पुरुषों द्वारा कथित, पोराने- पुरातन-पुराना, सहिए - शब्दित-प्रसिद्धि को प्राप्त, वित्तिए - प्रसिद्ध, (कित्तिए) - कीर्ति वाला, णाए - ज्ञात-सर्वजन प्रसिद्ध, सलोमहत्थे- मोर की पांख की बनी हुई पीच्छि से युक्त, लाउल्लोइय-महिए- इसका आंगन गोबर से लिपा हुआ था और उसकी भींते सफेद खड़ीया मिट्टी से पुती हुई थी इसलिए वह महित अर्थात् चमकती थी।

भावार्थ - उस चम्पा नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा के भाग में अर्थात् ईशान कोण में 'पूर्णभद्र' नामका चैत्य व्यंतरायतन अर्थात् व्यन्तर देव का स्थान था। वह बहुत काल पहले का बना हुआ था। बड़े बुढ़े मनुष्य भी उसकी प्राचीनता के बखान किया करते थे। उसकी प्रशंसा के गीत बन चुके थे। उस चैत्य की चढ़ावे आदि में आई हुई सम्पत्ति थी। योग्य निर्णायकता के कारण वह न्यायशील था। वह छत्र, ध्वज, घण्टा, पताका और अतिपताका छोटी पताका से ऊपर उठी हुई बड़ी पताका से मण्डित था। वहाँ रोममय पींछियाँ थी जिनसे उसकी सफाई होती थी वेदिका बनी हुई थी। भूमि गोबर आदि से लीपी हुई थी और भींते सफेद खड़ीया चूने आदि से भव्य बनी हुई थी। भीतों पर गोरौचन और सरस रक्त चंदन के पांचों अंगुली और हथेली सहित हाथ की छापें लगाई गई थी। चन्दनकलश-मंगलघट रखे हुए थे। प्रत्येक द्वार के देशभाग चंदनघट और तोरणों से युक्त थे। वहाँ भूमि और छत को छूती हुई विस्तृत गोल और लम्बी फूलमालाओं का समूह था।

विवेचन - चैत्य शब्द अनेकार्थवाची है। सुप्रसिद्ध जैनाचार्य पूज्य श्री जयमल जी म. सा. ने चैत्य शब्द के ११२ अर्थों की गवेषणा की है। आगम प्रकाशन समिति ब्यावर द्वारा प्रकाशित औपपातिक सूत्र (पृ० ६-७) में चैत्य शब्द के ये अर्थ प्रकाशित हुए हैं जो इस प्रकार हैं -

- चैत्यः प्रासाद-विज्ञेयः १ चेइय हरिरुच्यते २।
 चैत्यं चैतन्य-नाम स्यात् ३ चेइयं च सुधा स्मृता ४॥
 चैत्यं ज्ञानं समाख्यातं ५ चेइय मानस्य मानवः ६।
 चेइयं यतिरुत्तमः स्यात् ७ चेइय भगमुच्यते ८॥
 चैत्य जीवमवाप्नोति ९ चेई भोगस्य रंभणम् १०॥
 चैत्यं भोग-निवृत्तिश्च ११ चेई विनयनीचकौ १२॥
 चैत्यं पूर्णिमाचन्द्रः स्यात् १३ चेई गृहस्य रंभणम् १४।
 चैत्यं गृहमव्यावाधं १५ चेई च गृहछादनम् १६॥
 चैत्यं गृहस्तंभं चापि १७ चेई नाम वनस्पतिः १८।
 चैत्यं पर्वताग्रे वृक्षः १९ चेई वृक्षस्यस्थूलनम् २०॥
 चैत्यं वृक्षसारश्च २१ चेई चतुष्कोणस्तथा २२।
 चैत्यं विज्ञान-पुरुषः २३ चेई देहश्च कथ्यते २४॥
 चैत्यं गुणज्ञो ज्ञेयः २५ चेई च शिव-शासनम् २६।
 चैत्यं मस्तकं पूर्णं २६ चेई वपुर्हीनकम् २८॥
 चेई अश्वमवाप्नोति २९ चेइय खर उच्यते ३०।
 चैत्यं हस्ती बिज्ञेयः ३१ चेई च विमुखीं विदुः ३२॥
 चैत्यं नृसिंह-नाम स्यात् ३३ चेई च शिवा पुनः ३४।
 चैत्यं रंभानामोक्त ३५ चेई स्यान्मृदंगकम् ३६॥
 चैत्यं शार्दूलता प्रोक्ता ३७ चेई च इन्द्रवारुणी ३८।
 चैत्यं पुरंदर-नाम ३९ चेई चैतन्यमत्तता ४०॥
 चैत्यं गृहि-नाम स्यात् ४१ चेइ शास्त्र-धारणा ४२।
 चैत्यं क्लेशहारी च ४३ चेई गांधर्वी-स्त्रियः ४४॥
 चैत्यं तपस्वी नारी च ४५ चेइ पात्रस्य निर्णयः ४६।
 चैत्यं शकुनादि-वार्ता च ४७ चेई कुमारिका विदुः ४८॥
 चेई तु त्यक्त-रागस्य ४९ चेई धत्तूर कुट्टितम् ५०।
 चैत्यं शांति-वाणी च ५१ चेई वृद्धा वरांगना ५२॥
 चेई ब्रह्माण्डमानं च ५३ चेई मयूरः कथ्यते ५४।
 चैत्यं च नारका देवाः ५५ चेई च बक उच्यते ५६॥
 चेई हास्यमवाप्नोति ५७ चेई निभृष्टः प्रोच्यते ५८।
 चैत्यं मंगल-वार्ता च ५९ चेई च काकिनी पुनः ६०॥

- चैत्यं पुत्रवती नारी ६१ चेई च मीनमेव च ६२।
 चैत्यं नरेन्द्रराज्ञी च ६३ चेई च मृगवानरो ६४॥
 चैत्यं गुणवती नारी ६५ चेई च स्मरमन्दिरे ६६।
 चैत्यं वर-कन्या नारी ६७ चेई च तरुणी-स्तनौ ६८॥
 चैत्यं सुवर्ण-वर्णा, च ६९ चेई मुकुट-सागरौ ७०।
 चैत्यं स्वर्णा जटी चोक्ता ७१ चेई च अन्य-धातुषु ७२॥
 चैत्यं राजा चक्रवर्ती ७३ चेई च तस्य याः स्त्रियः ७४।
 चैत्यं विख्यात पुरुषः ७५ चेई पुष्पमती-स्त्रियः ७६॥
 चेई_ये मन्दिरं राज्ञः ७७ चैत्यं वाराह-संमतः ७८।
 चेई च यतयो धूर्ताः ९९ चैत्यं गरुडपक्षिणि ८०।
 चेई च पद्मनागिनी ८१ चेई रक्त-मंत्रेऽपि ८२।
 चेई चक्षुर्विहीनस्तु ८३ चैत्यं युवक पुरुषः ८४॥
 चैत्यं वासुकी नागः ८५ चेई पुष्पी निगद्यते ८६।
 चैत्यं भाव-शुद्धः स्यात् ८७ चेई क्षुद्रा च घंटिका ८८॥
 चेई द्रव्यमवाप्नोति ८९ चेई च प्रतिमा तथा ९०।
 चेई सुभट योद्धा च ९१ चेई च द्विविधा क्षुधा ९२॥
 चैत्यं पुरुष-क्षुद्रश्च ९३ चैत्यं हार एवं च ९४।
 चैत्यं नरेन्द्राभरणः ९५ चेई जटाधरो नरः ९६॥
 चेई च धर्म-वार्तायां ९७ चेई च विकथा पुनः ९८।
 चैत्यं चक्रपतिः सूर्यः ९९ चेई च विधि-भ्रष्टकम् १००।
 चैत्यं राज्ञी शयनस्थानं १०१ चेई रामस्य गर्भता १०२।
 चैत्यं श्रवणे शुभे वार्ता १०३ चेई च इन्द्रजालकम् १०४॥
 चैत्यं यत्यासनं प्रोक्तं १०५ चेई च पापमेव च १०६।
 चैत्यमुदयकाले च १०७ चैत्यं च रजनी पुनः १०८॥
 चैत्यं चन्द्रो द्वितीयः स्यात् १०९ चेई च लोकपालके ११०।
 चैत्यं रत्नं महामूल्यं १११ चेई अन्यौषधीः पुनः ११२॥

(इति अलंकरणे दीर्घं ब्रह्माण्डे सुरेश्वरवार्तिके प्रोक्तम् प्रतिमा चेइय शब्दे नाम ९० मो छे। चेइय ज्ञान नाम पांचमो छे। चेइय शब्दे यति=साधु नाम ७ मुं छे। पछे यथायोग्य ठामे जे नामे हुवे ते जाणवो। सर्व चैत्य शब्द ना आंक ५७, अने चेइयं शब्दे ५५ सर्व ११२ लिखितं पू० भूधर जी तत्तिशय ऋषि जयमल नागौर मझे सं. १८०० चैत सुदी १० दिने)

- जयध्वज पृष्ठ ५७३-७६

पंच-वणन-सरस-सुरहि-मुक्क-पुष्क-पुंजोवयार-कलिए, कालागुरु-पवर-कुंदुरुक्क-तुरुक्क-धूव-मघ-मघंत-गंधुद्धयाभिरामे, सुगंध-वर-गंध-गंधिए, गंधवट्टिभूए, णड-णट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्टिय-वेलंबय-पवग-कहग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुंब-वीणिय-भुयग-मागह-परिगए, बहुजण-जाणवयस्स विस्सुय-कित्तिए, बहुजणस्स आहुस्स आहुणिज्जे, पाहुणिज्जे, अच्चणिज्जे, वंदणिज्जे, णमंसणिज्जे, पूयणिज्जे, सक्कारणिज्जे, सम्माणणिज्जे, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं, विणएणं पज्जुवासणिज्जे, दिव्वे, सच्चे, सच्चोवाए सण्णिहिय-पाडिहेरे, जाग-सहस्स-भाग-पडिच्छए (यागभागदाय सहस्स पडिच्छए) बहुजणो अच्चेइ आगम्म पुण्णभहं चेइयं पुण्णभहं चेइयं ।

कठिन शब्दार्थ - पुष्क - पुष्प-फूल, पुंज - ढेर, उवयार - उपरचित-रचना की हुई, कुंदुरुक्क-कुन्दुरुक्क-गंध द्रव्य विशेष-चीड़, तुरुक्क - तुरुक्क-लोबान, मघ-मघंत - अत्यन्त गंधयुक्त, उद्धुय - सब जगह फैला हुआ, गंधवट्टिभूए - गंध की बत्ती के समान, भुयग - भोजक-सेवक, मागह - मागध-स्तुतिपाठक, आहुस्स - हवन करने वाले-दाता, आहुणिज्जे-दानपात्र, पाहुणिज्जे- बार-बार दान देने योग्य, दिव्वे - दिव्य, सच्चे - सत्य, सच्चोवाए- सेवा का फल देने वाला, सण्णिहिय-पाडिहेरे - अतिशय और अतीन्द्रिय प्रभाव युक्त, यागभागदाय सहस्स पडिच्छए - इसके नाम से हजारों लोग दान देते थे, आगम्म - आकर।

भावार्थ - वह चैत्य पंचरंगी सरस सुगन्धित ढेर के ढेर डाले गये फूलों की पूजा से कलित-शोभित था। काले अगर, श्रेष्ठ कुंदुरुक्क और तुरुक्क के धूप की महक से युक्त गंध के द्वारा वातावरण अभिराम मनोरम बना रहता था। सुगंध से सुवासित रहता था। महक की लपटें उठा करती थीं-सुगंधित धुएँ की इतनी प्रचुरता थी कि जिससे (गंध की) गोल गुटिकाएं (छल्ले) बन रही थी। वह चैत्य नट, नर्तक, जल्ल, मल्ल, मौष्टिक, विदूषक-हास्यकला-मर्मज्ञ, प्लवक-तैराक या वानरचेष्टा करने वाले, कथावाचक-कथक रासकों के आलपक, भविष्य भाखने वाले, बांस के अग्रभाग पर खेलने वाले, देवता-वीर आदि से सम्बन्धित चित्रपट दिखलाने वाले, तुनतुनी बजाने वाले, वीणा-वादक, भुजग-भोगि या भोजक-पुजारी और मागध-भाट, यशोगान के गायकों से पूरा भरा रहता था। बहुत से नगर निवासियों और देश-निवासियों में उसकी कीर्ति कर्ण-परम्परा से फैली हुई थी। बहुत से नागरिकों-आहोता-दानियों पूजकों के लिए वह आह्वान करने योग्य, विशिष्ट रीतियों से आह्वान करने योग्य, चन्दन आदि सुगंधित द्रव्यों से अर्चना करने योग्य, स्तुतियों से वंदना करने योग्य, अंगों को झुका कर नमस्कार करने योग्य, फूलों से पूजने योग्य, वस्त्रों से सत्कार करने योग्य, मन से आदर देने योग्य, कल्याण-मंगल-देव और इष्टदेव रूप (में मानकर) विनय सहित पर्युपासना करने योग्य, दिव्य सत्य

(वांछित) उपायों को सत्य बनाने वाला, सेवा को निष्फल नहीं जाने देने वाला, दिव्य प्रातिहार्य-अतिशय, अतीन्द्रिय कार्य से युक्त और हजारों प्रकार की पूजा को चाहने वाला था। बहुजन पूर्णभद्र चैत्य पर आ-आकर के अर्चना करते थे।

विवेचन - 'पुण्णभद्दं चेइयं पुण्णभद्दं चेइयं' इति अत्र द्विर्वचनं भक्ति-सम्भ्रम-विवक्षयेति। अर्थात् 'पुण्णभद्दं चेइयं' इस पद की पुनरावृत्ति जनता की भक्ति के आवेश को दरसाती है।

इस सूत्र में चैत्य की स्थिति, उसका होने वाला उपयोग और उसके प्रति जनसमाज की भावना का वर्णन किया गया है। प्रायः उस व्यंतरायतन में, विविध कारणों से लोगों की बहुत ही आस्था थी। उनकी दृष्टि के अनुसार उनके लिये वह पूजनीय-अर्चनीय और सत्य आदि था। अतः यह सूत्र 'बहुजन' की दृष्टि की ओर संकेतमात्र कह रहा है-सूत्रकार की दृष्टि का इसके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इस बात की पुष्टि 'बहुजणजाणवयस्स' 'बहुजणस्स आहुस्स' सूत्रांशों से भी होती है।

शंका - सूत्रकार जब उस दृष्टि से सहमत नहीं है, तब फिर उसका इतना लम्बा, अलंकृत भाषा में आँखों के सामने वैसा ही दृश्य खड़ा करने की क्या आवश्यकता थी? - 'जैसा हो वैसा' वर्णन करना, सूत्रकार को इष्ट हो सकता है। किन्तु ऐसे वर्णनों को किस ध्यान-किस भावना के अन्तर्गत गिनें? क्योंकि वीतराग-मार्ग में वही स्वाध्याय-ध्यान उत्तम और कर्तव्य है, जो वीतरागता का पोषक हो। क्या यह विकथा-सन्मार्ग से विचलित करने वाला कथन-नहीं है?

समाधान - पहली बात, इस स्थान का वर्णन इसलिए हुआ है कि भगवान् महावीर देव का वहाँ पदार्पण होगा। शासन-नायक के ध्यान रूप गुप्त पतले तागे में ये सूत्ररूप मणि पिरोये गये हैं। अतः वर्णन में तटस्थवृत्ति का निर्माण हो रहा है। रसमय वर्णन करते हुए भी सूत्रकार की उदासीन-मध्यस्थ दृष्टि अंकुश का कार्य करती हुई स्पष्ट झलक रही है। दूसरी बात, अलंकृत भाषा में हूबहू वर्णन करने का यह आशय स्पष्ट होता है कि भगवान् महावीर देव अपने निवास के लिये कैसे स्थान चुनते थे और उसमें कौन-सा ध्येय गर्भित होता था-यह स्पष्ट हो जाय। तीसरी बात, विषय-वर्णन मात्र से ध्यान और सद्भावना का सम्बन्ध नहीं है। किन्तु विषय-वर्णन के लक्ष्य, ढलाव और विचारक-ध्याता की वृत्ति से विशेष सम्बन्ध है। ध्यान और अनुप्रेक्षा के, नरक और स्वर्ग, शृंगार और वैराग्य, नृशंस और करुण, कठोर और कोमल, दूषण और भूषण, संसार और अपवर्ग-आदि सभी विषय और प्रसंग आधार हो सकते हैं-कायम रहना चाहिए, जिन आज्ञा का भान और उदासीन तटस्थ वृत्ति। ऐसा हो, तभी आत्म-समाधि आवेश-रहित दशा स्थिर रह सकती है और तभी वे विचार शान्तरस के स्थायी भाव बन सकते हैं। रसवृत्ति जागृत होते ही उदासीन वृत्ति-आत्मभान गायब हो जाता है और जिन-आज्ञा का विस्मरण। आकुलता बढ़ती है। अतः वे विचार उत्पन्न होने वाले विकारी भावों के अनुसार, शृंगारादि रसों का नाम धारण करते हैं और विकथा बन जाते हैं, आर्त्त-रौद्र ध्यान की गिनती में चले जाते हैं। इस सूत्र में लोगों की भूलभूलैया में फंसी भावना के प्रति सूत्रकार की करुणा का दर्शन हो रहा है और 'बहुजन के लिये'

‘पुजारियों के लिये’ आदि पदों से और जनता के आवेश के वर्णन से जनभावना और जिन आज्ञा का विलगाव किया गया है, अतः विकथा नहीं। कीचड़ से निकलने के लिए होने वाला कीचड़ का मर्दन पंक-क्रीडा नहीं, किन्तु पंक-तरण है।

वनखण्ड वर्णन

३- से णं पुण्णभदे चेइए एक्केणं महया वण-संडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खत्ते। से णं वणसंडे किण्हे किण्होभासे, णीले णीलोभासे, हरिए हरिओभासे, सीए सीओभासे, णिद्धे णिद्धोभासे, तिब्बे तिब्बोभासे, किण्हे किण्हच्छाए णीले णीलच्छाए, हरिए हरियच्छाए, सीए सीयच्छाए, णिद्धे णिद्धच्छाए, तिब्बे तिब्बच्छाए, घणकडिअ-कडिच्छाए, रम्मे महामेह णिकुरंबभूए।

कठिन शब्दार्थ - णिद्धे - स्निग्ध, किण्हे - कृष्ण-काला, किण्हच्छाए - कृष्णछायः-छाया आदित्यावरणजन्यो वस्तुविशेषः-सूर्य के ढक जाने पर जो हो उसे छाया कहते हैं। घणकडिअ कडिच्छाए-बहलनिरन्तरच्छाय-एक वृक्ष की शाखा दूसरे वृक्ष से मिली हुई थी इसलिए सघन छाया वाला। **महामेहणिकुरंबभूए** - महामेघवृन्दकल्पः-महामेघ के वृन्द (समूह) के समान।

भावार्थ - वह पूर्णभद्र चैत्य-व्यंतरायतन एक बहुत बड़े वनखण्ड से, दिशा-विदिशा में चारों ओर से घिरा हुआ था। उस वनखण्ड का अवभास-झांकी और छाया-कांति दीप्ति काली, नीली, हरी, शीतल, स्निग्ध चिकनी और तीव्र थी। वह स्वयं भी इन गुणों से युक्त था। वह शाखाओं के परस्पर चटाई के समान गुंथ जाने के कारण, घनी छाया से युक्त था। उसका दृश्य महामेघ की घिरी हुई घटा के समान रम्य था।

विवेचन - दृश्य के वर्णन में ‘कृष्ण’ आदि शब्द दुबारा आये हैं। किन्तु इसमें पुनरुक्ति दोष नहीं है। क्योंकि वे शब्द पहली बार ‘अवभास’ के और दूसरी बार छाया के विशेषण के रूप में आये हैं और उन विशेषण युक्त पदों के पहले आये हुए ‘कृष्ण’ आदि वनखण्ड के विशेषण कार्य-कारण भाव के सूचक हैं।

वृक्ष-जाति की विविधता और पत्तों की अवस्था के अनुसार दूर से प्रदेशान्तर में दिखाई देने वाले तिरंगें दृश्य का वर्णन करके, बाद में उसकी होने वाली असर का उल्लेख किया गया है। वह असर दृश्य-दर्शन के पश्चात् मनोवेग-जनित या दृश्य की प्रभा और दीप्ति के पुद्गलों और स्पर्शनेन्द्रिय के सम्बन्ध से जनित होना संभव है।

ते णं पायवा मूलमंतो कंदमंतो खंधमंतो तयामंतो सालमंतो पवालमंतो पत्तमंतो

पुष्पमंतो फलमंतो बीयमंतो हरियमंतो अणुपुव्व-संज्ञाय-रुइल-वट्टुभाव-परिणया,
 (एककखंधा अणेगसाला) अणेग-साह-प्पसाह-विडिमा अणेग-णर-वाम-सुप्प-
 सारिअ-अगेज्ज-घण-विउल-बद्ध-खंधा (पाईणपडिणायय-साला उदीणदाहिण-
 विच्छिण्णा ओणय-नय पणय विप्पहाइय ओलंब पलंब साहप्पसाह-विडिमा
 अवाईणपत्ता अणुईणपत्ता) अच्छिहपत्ता अविरलपत्ता अवाईणपत्ता अणईयपत्ता
 णिद्धय-जरढ-पंडु-पत्ता, णव-हरिय-भिसंत-पत्त-भारंधकार-गंभीर-दरिसणिज्जा,
 उवणिग्गय-णव-तरुण-पत्त-पल्लव-कोमल-उज्जल-चलंत-किस-लय-सुकुमाल-
 पवाल-सोहिय-वरंकुरग्ग-सिहरा।

कठिन शब्दार्थ - विडिमा - ऊपर की तरफ गई हुई शाखा, घण - सान्द्र-सघन, णिद्धय -
 गिर गया, जरढ - पुराने, पंडु - पीले, भिसंत - चमकते हुए।

भावार्थ - उस वन के वृक्ष मूल-जड़े, कंद-जड़ों का ऊपरी हिस्सा जहाँ फूटकर जड़े फैलती हैं-
 थड़ के नीचे का भाग, स्कंध, छाल, शाखा, प्रवाल-पत्तों की अंकुरित अवस्था, पत्र पुष्प, फल और
 बीज से सम्पन्न थे। वे क्रमशः उत्तम ढंग से बढ़े हुए थे, सुन्दर थे और गोलाई में परिणत हो गये थे।
 (एक थड़ और अनेक शाखाएँ थी) अनेक शाखा-प्रशाखाओं के द्वारा मध्य भाग वाले या विस्तृत बने
 हुए थे। अनेक व्यक्तियों की पसारी हुई भुजाओं से भी न पकड़े जा सके ऐसे (उनके) सघन और मोटे
 बने हुए थड़ थे। उनके पत्ते छिद्र रहित घने - एक-दूसरे पर छाये हुए, अधोमुख और ईति-स्वजातीय
 या विजातीय तत्त्वों से होने वाली हानि और चूहे, टिड्डी आदि क्षुद्र जंतुओं के उपद्रव से रहित थे। उनके
 पुराने-जर्जर पीले पत्ते खिर जाते थे। हरे चमकते हुए नये पत्तों के भार से, वहाँ अंधेरा छाया हुआ रहता
 था और गंभीरता दिखाई देती थी। वे वृक्ष ताजे-ताजे नये पुष्ट पत्तों, कोमल, उज्वल और हिलते हुए
 किशलयों-अपक्व पत्तों और प्रवाल-ताम्बे के से रंगवाले निकलते हुए कोमल पत्तों से शोभित, श्रेष्ठ
 अंकुर रूप शिखर को धारण किये हुए थे।

णिच्चं कुसुमिया, णिच्चं मऊरिया, णिच्चं पल्लविया, णिच्चं माइया, णिच्चं
 लवइया, णिच्चं थवइया, णिच्चं गुलइया, णिच्चं गोच्छिया, णिच्चं जमलिया,
 णिच्चं जुवलिया, णिच्चं विणमिया, णिच्चं पणमिया, णिच्चं कुसुमिय-माइय-
 लवइय-थवइय-गुलइय-गोच्छिय-जमलिय-जुवलिय-विणमिय-पणमिय-सुविभत्त-
 पिंड-मंजरि-वडिसयधरा।

कठिन शब्दार्थ-कुसुमिया - कुसुमित-फूल वाले, मऊरिया- मयूरित-मंजरी वाले, पल्लविया -
 पत्तों से युक्त, थवइया - स्तबकित-गुच्छों वाला, गुलइया - गुल्लिमित-गांठ वाले, गोच्छिया - फूल

और फलों के गुच्छों वाले, जमलिया - यमलित-समान पंक्तिवाले, जुवलिया - युगल रूप में स्थित, मंजरी वडिसयधरा - मंजरी रूप शिरोभूषण से युक्त ।

भावार्थ - उनमें कई वृक्ष बारहों मास फूलते थे, कई सदा मंजरियों से लदे रहते थे, कई नित्य पत्रभार से झुके हुए थे, कई हमेशा फूलों के गुच्छों से लदे रहते थे, कई पत्तों के गुच्छों से नित्य शोभित होते थे, कई गुल्मवाले थे, कई समश्रेणि रूप से सदा स्थित थे, कई नित्य युगल रूप से स्थित थे, कई फल-फूलादि के भार से सदा झुके रहते थे, कई सदा झुकने प्रारंभ हुए हों ऐसे स्थित रहते थे और कई इन सभी गुणों से युक्त थे। वे समस्त गुणों के धारक वृक्ष, सुन्दर रूप से बने हुए लुम्बों और मंजरियों के सेहरे (अवतंसक-कलौंगियाँ) को सदा धारण किये रहते थे।

सुय-बरहिण-मयण-साल-कोइल-कोहंगक-भिंगारक-कोंडलक-जीवंगीवक-णंदीमुह-कपिल-पिंगलक्ख-कारंड-चक्कवाय-कलहंस-सारस-अणेग-सउणगण-मिहुण-विरइय-सहुणण-इय-महुर-सर-णाइए सुरम्मे, संपिंडिय-दरिय-भमर-महुयरि-पहकर-परिलिंत-मत्त-छप्पय-कुसुमासव-लोल-महुर-गुम-गुमंत-गुंजंत-देसभागे, अब्भंतर-पुप्फ-फले-बाहिर-पत्तोच्छणणे, पत्तेहि यपुप्फेहि यउच्छणण-पडिवलिच्छणणे (साउफले निरोयए अकंटए गाणाविह-गुच्छ-गुम्म-मंडवग-रम्म-सोहिए) रम्मे, विचित्त-सुह-केउभूए वावी-पुक्खरिणी-दीहियासु य सुणिवेसिय-रम्म-जालहरए।

कठिन शब्दार्थ - सुय - शुक-तोता, बरहिण - मयूर (मोर), मयणसाल - मदनशाल-मैना, कोइल - कोयल-कोकिल, कोहंगक - पक्षी विशेष, भिंगारक - यह भी पक्षी विशेष, कोंडलक - पक्षी विशेष, जीवंगीवक - चकोर, णंदीमुह - नंदीमुख-पक्षी विशेष, कपिल - तीतर, पिंगलक्ख - बटेर, कारंड- पक्षी विशेष, चक्कवाय - चक्रवाक-चकवा, सउणगण - पक्षियों का समूह, दरिय - दृप्त-उन्नत, महुयरि - मधुकरी-भ्रमरी, पहकर- प्रकर-समूह।

भावार्थ - वह वनखण्ड शुक, मोर, मयणसाल-मैना, कोयल, कोहंगक, भिंगारक, कोंडलक, जीवंगीवक-चकोर, नंदीमुख, कपिल, पिंगलाक्ष, कारंड-बतख, चक्रवाक, कलहंस और सारस आदि अनेक पक्षियों के जोड़े के द्वारा विरचित शब्दों की उन्नति और मधुर स्वरों के आलाप से प्रतिध्वनित रहता था। जिससे उसकी रम्यता बढ़ जाती थी। उन्नत भैर और मधुमक्खियों-महूकरि के समूह एकत्रित होकर, वहीं लीन हो जाते थे और पुष्प-रस के लोभ से, मत्त षट्पद-सभी जाति के भैर गुन-गुन करते हुए, इधर-उधर गुंजन करते रहते थे।

वृक्ष भीतर से फल-फूल से युक्त और बाहर से पत्तों से ढंके हुए थे-पत्तों और फूलों से पूरे लदे हुए थे। (उनके फल मीठे थे और वे रोग-रहित निष्कंटक थे। वह वनखण्ड विविध गुच्छ, गुल्म-लताकुंज, लतामण्डप आदि के द्वारा रम्य लगता था-शोभा पा रहा था।) वहाँ चौकोण बावडियों

गोलबावडियों और लम्बी बावडियों में, रंग-बिरंगी शुभ ध्वजाओं से युक्त, सुन्दर ढंग से बने हुए रम्य जालगृह-जाली वाले घर थे।

पिंडिम-णीहारिम-सुगंधि-सुह-सुरभि-मणहरं च महया गंधद्वणिं मुयंता, पाणाविह-गुच्छ-गुम्म-मंडवग-घरग-सुह-सेउ-केउ-बहुला, अणेग-रह-जाण-जुग-सिविय-पविमोयणा, सुरम्मा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

कठिन शब्दार्थ - पिंडिम - एकत्रित, णीहारिम - दूर तक फैलने वाले, सुगंधि - सुगन्ध, सुह सुरभि मणहरं - शुभ गंध से मन को हरण करने वाली, गंधद्वणिं - गन्ध ध्राणि-गंध की तृप्ति, मुयंता- छोड़ते हुए, मंडवग - मण्डप, घरग - घर, सुह - सुख, सेउ - सेतु (पुल, मार्ग) केउ - केतु - पताका, रह - रथ, जाण - यान-सवारी, जुग - युग्य-गाडी, सिविय - शिविका-पालखी, पविमोयणा - रखने के स्थान।

भावार्थ - वह वृक्ष समूह, दूर तक पहुँचने वाली सुगन्धि के सञ्चित परमाणुओं की शुभ महक के द्वारा मन को हर लेता था। क्योंकि वह विपुल तृप्तिकारक सुगंधि को छोड़ता-रहता था। वहाँ विविध गुच्छ, गुल्म, मंडप, घर, सुखप्रद मार्ग या क्यारियों की पालियाँ और ध्वजा की बहुलता थी। उसमें रथ, यान, डोलियाँ और पालखियाँ के प्रविमोचन-ठहराने के स्थान थे। इस प्रकार वे वृक्ष चित्त के लिए आह्लादक, नयनाभिराम, मनोरम और हृदयाकर्षक थे।

अशोक वृक्ष

४- तस्स णं वणसंडस्स बहुमञ्जदेसभाए एत्थ णं महं एक्के(एगे) असोगवरपायवे पण्णत्ते। कुस-विकुस-विसुद्ध-रुक्ख-मूले, मूलमंते, कंदमंते जाव पविमोयणे सुरम्मे पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे।

कठिन शब्दार्थ-कुस-डाभ, विकुस-डाभ सरीखा एक घास।

भावार्थ - उस वनखण्ड के लगभग मध्यभाग में एक विशाल अशोक वृक्ष था। वह सुन्दर था। उस वृक्ष का मूल कुश-दर्भ और विकुश-घास आदि से रहित विशुद्ध था। उसके मूल आदि दसों अंग श्रेष्ठ थे। वह सभी गुणों (यावत् प्रविमोचन तक के वनखण्ड के वृक्षों के विषय में कथित विशेषताओं) से युक्त सुरम्य, चित्त को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप था, चित्त आह्लादक....था।

विवेचन - दूसरी वाचना में इतना पाठ अधिक है-

दूरोवगय कंदमूल वट्ट-लट्ट संठिय-सिलिट्ट घण मसिण णिद्ध सुजाय णिरुवह उव्विद्ध पवर खंधी अणेगनर पवर भुया-गेज्जो कुसुम भर समो णमंत पत्तल विसाल

सालो महुकरि भमर गण गुमगुमाइय णिलिंत उडुंत-सस्सिरीए णाणा सउण गण
मिहुण सुमहुर कण्णसुह पलत्त सह महुरे ।’

कठिन शब्दार्थ - वट्ट - वृत्त-वर्तुल गोल, लट्ट - लष्ट-मनोज्ञ, सिलिट्ट - शिलष्ट-सङ्गत, घण - निबिड-सघन, मसिण - अपरुष-मुलायम, णिद्ध - स्निग्ध-चिकणा, निरुवह - निरुपहत-विकार रहित, उव्विद्ध - उद्विध-अत्यन्त ऊँडा, अगेज्जो - अग्राह्य, पलत्तसह - प्रलप्तशब्द-उच्चारण किया हुआ शब्द ।

अर्थ - उस अशोक वृक्ष का स्कन्ध दूर तक फैला हुआ था। जड़ें बहुत ऊँड़ी गई हुई थी। बहुत से मनुष्य हाथ पसारे तो भी उसका स्कन्ध ग्रहण नहीं होता था। भ्रमर और अनेक पक्षी उस पर मधुर शब्द कर रहे थे।

से णं असोग-वर-पायवे-अण्णेहिं बहूहिं तिलएहिं लउएहिं छत्तोवेहिं सिरीसेहिं
सत्तवण्णेहिं दहिवण्णेहिं लोद्धेहिं धवेहिं चंदणेहिं अज्जुणेहिं णीवेहिं कुडएहिं कलंबेहिं
सव्वेहिं फणसेहिं दाडिमेहिं सालेहिं तालेहिं तमालेहिं पियएहिं पियंगूहिं पुरोवगेहिं
रायरुक्खेहिं णंदिरुक्खेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते । ते णं तिलया लवइया जाव
णंदीरुक्खा कुस-विकुस-विसुद्ध-रुक्खमूला मूलमंतो कंदमंतो एएसिं वण्णओ
भाणियव्वो जाव सिविय-पविमोयणा सुरम्मा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ।

भावार्थ - वह अशोकवृक्ष तिलक, लकुच, छत्रोप, शिरीष, सप्तपर्ण, दधिपर्ण लोध्र, धव, चंदन, अर्जुन, नीप, कुटज, कदम्ब, सव्य, पनस, दाडिम, शाल, ताल, तमाल, प्रियक, प्रियंगु, पुरोपग, राजवृक्ष और नंदिवृक्ष-इन वृक्षों से चारों ओर से घिरा हुआ था। वे वृक्ष भी कुश-विकुश से रहित-विशुद्ध मूलवाले, स्वस्थ मूलवाले, कंदवाले (इन वृक्षों का वर्णन ‘सिविय-पविमोयणा’ तक कहना चाहिए) सुरम्य, चित्त को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप थे।

ते णं तिलया जाव णंदिरुक्खा अण्णेहिं बहूहिं पउम लयाहिं णाग लयाहिं असोग
सयाहिं चंपग लयाहिं चूय लयाहिं वण लयाहिं वासंतिय लयाहिं अइमुत्तग लयाहिं कुंद
लयाहिं सामलयाहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता । ताओ णं पउमलयाओ णिच्चं कुसु-
मियाओ जाव वडिसयधरीओ पासाईयाओ दरिस-णिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ ।

भावार्थ - वे तिलक से लगाकर नदी तक के वृक्ष अन्य बहुत-सी पद्म लताओं, नाग लताओं, स्याम लताओं-कड्डेली चम्पक लताओं, सहकार लताओं, वन लताओं-पीलुक वासंती लताओं, अभिमुक्तक लताओं, कुंद लताओं और श्याम लताओं-प्रियंगु से चारों तरफ घिरे हुए थे। वे लताएँ फूलने वाली से लगा कर श्रेष्ठ अंकुरों के सेहरों तक की विशेषताओं से परिमंडित थी चित्त-प्रसन्नकारक, दर्शनीय, अभिरूप थीं।

शिलापट्टक वर्णन

५- तस्स णं असोगवर पायवस्स हेट्ठा ईसिं खंध-समल्लीणे एत्थ णं महं एगे पुढवि-सिलापट्टए पण्णत्ते। विखंभायाम-उस्सेह-सुप्पमाणे, किण्हे (अंजणग-घण कुवलयहलधरकोसेजागास केस कज्जल कक्के यणिंदणील-अयसि-कुसुमप्पगासे भिगंजण सिंगभेय-रिट्ठग-णीलगुलिय-गवल-अइरेग-भमर-निकुरंबभूए जम्बूफल-असण-कुसुम-बंधण-णीलुप्पल-पत्त-णिकर-मर-गय-आसासग-णयणकीय-रासिवण्णे णिद्धे रूवगपडिरूव-दरिसणिज्जे मुत्ता-जाल-खइयंतकम्मे।) अंजण घण-किवाण-कुवलय-हलधर-कोसेजागास-केस-कज्जलंगी-खंजण-सिंगभेद-रिट्ठय-जंबूफल-असणक-सणबंधण-णीलुप्पल-पत्त-णिकर-अयसि-कुसुम-प्पगासे मरगय-मसार-कलित्त-णयण-कीय-रासिवण्णे, णिद्धघणे अट्टसिरे आयंसय-तलोवमे सुरम्मे ईहामिय-उसभ-तुरग-णर-मगर-विहग-वालग-किण्णर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउम-लय-भत्तिचित्ते, आईणग-रूय बूरणवणीय-तूल-फरिसे सीहासण-संठिए, पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे।

कठिन शब्दार्थ - ईसिं - ईषत्-थोडा, खंधसमल्लीणे - स्कन्ध के पास, विखंभ - विष्कम्भ-मोटा, आयाम-लम्बा, उस्सेह- ऊँचा, हलधर - बलदेव, कोसेज्ज - वस्त्र, मरगय - मरकत मणि, मसार-चिकना बनाने वाला अर्थात् कसौटी पत्थर, णयणकीय - आँख की कीकी, अट्टसिरे - अष्टकोण, आयंसतलोवमे - कांच के तले के समान, ईहामिय - ईहामृग-भेडिया, वालग - जंगली सर्प, उसभ - ऋषभ-बैल, तुरग-घोडा।

भावार्थ - वहाँ उस श्रेष्ठ अशोक वृक्ष के नीचे, उसके थड़ के कुछ समीप पृथ्वी का एक बड़ा शिलापट्टक था। उसकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई उत्तम प्रमाण से युक्त थी। वह काला था। अञ्जन, मेघ, कृपाण, नीलकमल, बलदेव के वस्त्र, आकाश, केश, काजल के घर, काजली, सींग के भीतरी हिस्से, रिष्टक रत्न, जाम्बूफल, बीयक नामकी वनस्पति, सन के फूल के डंठल, नीलकमल के पत्तों के समूह और अलसी के फूल के समान उसकी प्रभा थी और मरकत, इन्द्रनील मणि, कटिन्न-एक प्रकार के चमड़े या कमर पर बांधने के एक जात के चमड़े के कवच और आँखों की तारा की राशि के समान वर्ण था। वह अति स्निग्ध, अष्टकोण, दर्पण के तले के समान चमकीला और सुरम्य था। ईहामृग, वृषभ, अश्व, मनुष्य, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, रुरु, सरभ-अष्टापद, चमर, हाथी, वनलता और पद्मलता के भित्तिचित्रों से युक्त था। उसका स्पर्श आजीनक-मृगचर्म या सुकोमल चर्मवस्त्र, रूई, बूर, मक्खन

और आक की रूई के समान मृदु-कोमल था। सिंहासन के समान आकार था। चित्त प्रसन्नकारक, दर्शनीय, सुन्दर और मन से भुलाया न जा सके, वैसा वह था।

कोणिक राजा का वर्णन

६- तत्थ णं चंपाए णयरीए कूणिए णामं राया परिवसइ। महया-हिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंद-सारे, अच्चंत-विसुद्ध-दीह-रायकुल-वंस-सुप्पसूए, णिरंतरं राय-लक्खण-विराइअंगमंगे बहुजण-बहुमाण पूइए सव्वगुण समिद्धे खत्तिए, मुइए मुद्धाहिसित्ते माउपिउ-सुजाए।

भावार्थ - उस चम्पा नगरी में कोणिक नाम का राजा रहता था। वह महाहिमवान् पर्वत के समान महान् और मलय, मेरु और महेन्द्र पर्वत के समान प्रधान था। अत्यन्त विशुद्ध, चिरकाल से राजकुल के रूप में प्रख्यात वंश में उसका जन्म हुआ था। उसके अंग सभी राजलक्षणों से सुशोभित थे। बहुत-से मनुष्य उसका बहुमान करते थे-पूजा करते थे। क्योंकि वह सभी गुणों से समृद्ध था-आक्रमण से जनता को बचाने वाला क्षत्रिय था और वह हमेशा प्रसन्न चित्त रहता था। वैधानिक रूप से राजा स्वीकार किया जा चुका था तथा अपने माता-पिता का योग्य पुत्र था-विनीत था।

दयपत्ते, सीमंकरे, सीमंधरे, खेमंकरे खेमंधरे, मणुस्सिंदे, जणवयपिया जणवयपाले, जणवय-पुरोहिए, सेउकरे, केउकरे, णरपवरे पुरिसवरे पुरिससीहे पुरिसवग्घे पुरिसासीविसे-पुरिसपुंडरीए पुरिसवर-गंधहत्थी, अड्ढे दित्ते वित्ते, विच्छिण्ण-विउलभवण-सयणासण-जाण-वाहणाइण्णे बहुधण-बहुजाय-रूव-रयए आओग-पओग-संपउत्ते, विच्छड्डीअ-पउर-भत्तपाणे बहु-दासी-दास-गो-महिस-गवेलग-प्पभूए पडिपुण्ण जंत-कोस-कोट्टागाराउधागारेण

कठिन शब्दार्थ - दयपत्ते - करुणा युक्त, सीमंकरे - सीमाकारी-सीमा बांधने वाला, सीमंधरे - स्वयं मर्यादा का पालन करने वाला, खेमंकरे - प्रजा में क्षेमकुशल बर्ताने वाला, खेमंधरे - प्रजा में आप स्वयं उपद्रव नहीं करने वाला, मणुस्सिंदे - मनुष्यों में इन्द्र के समान, जणवय-पुरोहिए - देश में शान्ति बर्ताने वाला, सेउकरे - मार्गदर्शक, केउकरे - अद्भूत कार्य करने वाला।

भावार्थ - उसमें करुणा प्रमुख कोमल गुणों का विकास था वह मर्यादा का कर्ता, की हुई मर्यादा का पालक, उपद्रव रहित अवस्था को बनाने वाला और प्राप्त हुई निरुपद्रव दशा का योग्य साधनों से स्थिर कर्ता था। परम ऐश्वर्य के कारण मनुष्यों में इन्द्र के समान था। जनता के हित का इच्छुक होने के कारण देश का पिता, रक्षक होने के कारण देश का पालक, शान्ति करने के कारण देश का पुरोहित,

मार्ग-दर्शक अद्भुत कार्य करके आदर्श स्थापित करने वाला और अति श्रेष्ठ नर रूप निधि का मालिक या अत्यन्त श्रेष्ठ मनुष्यों का आश्रयदाता था। पुरुषों में श्रेष्ठ-प्रधान पुरुषों में सिंह के समान शूरवीर, पुरुषों में व्याघ्र रूप, पुरुषों में आशीविष-सर्प अर्थात् कोप को सफल करने की शक्ति वाला, पुरुषों में सफेद कमल-सुखार्थियों से सेवित और पुरुषों में गंधहस्ति के समान-विरोधी राजा रूप हाथियों का भञ्जक था। अतः वह समृद्ध, दर्पवान् और प्रसिद्ध था। उसके यहाँ अनेकों विशाल भवन, सोने-बैठने के आसन, यान रथ आदि और वाहन अश्व आदि की अधिकता थी। बहुत सारा धन, सोना और रूपा (चांदी) था। वह अर्थलाभ के अनेक उपायों का प्रयोग करने वाला था। उसके यहाँ से बहुत-से व्यक्तियों के भोजन-दान के बाद विविध प्रकार का प्रचुर भोजन-पान बचा हुआ रहता था। उसके अनेक दासी-दास थे और गायें, भैंसों और भेड़ों की बहुलता थी। सब तरह के यंत्र कोश-खजाना, कोठार और शस्त्रागार भरपूर थे।

बलवं दुब्बल-पच्चामित्ते, ओहयकंटयं णिहयकंटयं मलिय-कंटयं उद्धियकंटयं अकंटयं, ओहयसत्तुं, णिहयसत्तुं, मलियसत्तुं उद्धियसत्तुं णिज्जियसत्तुं पराइयसत्तुं, ववगय-दुब्भिव्खं मारिभय-विप्पमुक्कं खेमं सिवं सुभिव्खं पसंत-डिंब-डमरं (पसंताहियडमरं) रज्जं पसासेमाणे (पसाहेमाणे) विहरइ।

भावार्थ - उसके पास प्रबल सेना थी। उसने अपने राज्य के सीमान्त प्रदेश के राजाओं या अपने पड़ोसी राजाओं को दुर्बल बना दिये थे। उसने अपने गोत्र में उत्पन्न विरोधियों का एवं समान आकांक्षियों का विनाश कर दिया था, उनकी समृद्धि का अपहरण कर लिया था, उनके मान को भंग कर दिया था और उन्हें अपने देश से निकाल कर बाहर कर दिया था। अतः उसका कोई भी गोत्रज विरोधी शेष नहीं रहा था। इसी तरह शत्रुओं का भिन्न गोत्रोत्पन्न विरोधियों का भी विनाश कर दिया था, वैभव-धन छीन लिया था, मान भंग कर दिया था, उन्हें देश से बाहर निकाल दिया था, अपने प्रभाव से जीत लिया था और पुनः शिर न उठा सके ऐसी हालत में पहुँचा दिया था। अतः वह दुर्भिक्ष, मारी और भय से मुक्त क्षेम-निरुपद्रव कल्याणमय, सुभिक्षयुक्त और विघ्न राजकुमारादि कृत उपद्रवता से रहित राज्य का शासन करता हुआ रहता था।)

विवेचन - जिसका मातृपक्ष निर्मल हो उसे मुदित कहते हैं। जैसा कि कहा है - 'मुइओ जो होइ जोणिसुद्धो' अर्थात् जिसकी योनी (उत्पत्ति स्थान) निर्मल हो।

मूल में धन शब्द दिया है यहाँ धन चार प्रकार का बतलाया गया है- यथा- धनं-गणिम-धरिम-मेय-परिच्छेद्य-भेदाच्चतुर्धा-

गणिमं जाईफल फोफलाइं, धरिमं तु कुंकुम-गुडाइं।

मेजं चोपड-लोणाइं, रयण-वत्थाइं परिछेजं॥

अर्थ - धन चार प्रकार का कहा गया है - यथा -

गणिम - गिनने योग्य - जायफल, सुपारी, नारियल आदि।

धरिम - तराजू में धरकर तोलने योग्य-गुड़, गेहूँ आदि धान्य।

मेय - मापने योग्य - तेल, घी आदि।

परिच्छेद्य - परीक्षा करने योग्य-रत्न, वस्त्र, हाथी, घोड़ा आदि।

धारिणी राणी का वर्णन

७- तस्स णं कोणियस्स रण्णो धारिणी णामं देवी होत्था । सुकुमाल-पाणि-पाया, अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदिय-सरीरा, लक्खण-वंजण-गुणोववेआमाणु-म्माण-प्पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंग-सुंदरंगी, ससि-सोमागार-कंत-पिय-दंसणा, सुरूवा ।

भावार्थ - उस कोणिक राजा की धारिणी नाम की राणी थी। उसके हाथ-पैर सुकोमल थे। पांचों इंद्रियों और शरीर लक्षण की अपेक्षा से खामियों से रहित और स्वरूप की अपेक्षा से परिपूर्ण या पवित्र था। वह स्वस्तिक आदि लक्षण, तिल, मष आदि व्यंजन रूप गुणों से युक्त थी। मान, उन्मान और परिमाण से परिपूर्ण होने के कारण यथोचित अवयवों की रचना से उसके पैरों से लेकर मस्तक तक समस्त अङ्ग और उपाङ्ग बड़े सुन्दर थे अर्थात् उसका शरीर सर्वाङ्ग सुन्दर था। उसका आकार चन्द्र के समान सौम्य और दर्शन कान्त और प्रिय था। इस प्रकार उसका रूप बहुत सुन्दर था।

विवेचन - प्रश्न - मान किसको कहते हैं ?

उत्तर - मनुष्य परिमाण जल से भरे हुए कुण्ड में मनुष्य को बिठाने पर उसमें से यदि द्रोण परिमाण जल बहकर कुण्ड से बाहर निकल जाय तो उस मनुष्य का उचित "मान" गिना जाता है।

लगभग एक सेर के बराबर तोल को एक प्रस्थ (पायली) माना जाता है। ऐसे चार प्रस्थ का एक आढक होता है और चार आढक का एक द्रोण होता है।

प्रश्न - उन्मान किसको कहते हैं ?

उत्तर - तराजू में तोला जाय और अर्ध भार प्रमाण तोल आवे उसको उन्मान युक्त मनुष्य कहा जाता है। मगध देश में प्रसिद्ध एक प्रकार के तोल को अर्धभार कहा है।

प्रश्न - परिमाण किसको कहते हैं ?

उत्तर - अपने अङ्गुल से एक सौ आठ अङ्गुल परिमाण ऊँचाई वाला पुरुष परिमाण वाला कहलाता है।

इस प्रकार धारिणी राणी मान, उन्मान और परिमाण युक्त थी।

करबल-परिमिय-पसत्थ-तिवलिय-वलिय-मज्झा, कुंडलुल्लिहिय गंडलेहा

(कुंडलोल्लिहिय पीणगंडलेहा) कोमुइ-रयणियर-विमल-पडिपुण्ण-सोम-वयणा, सिंगारागार-चारुवेसा, संगय-गय-हसिय-भणिय-विहिय-विलास-सललिय-संलाव-णिउण-जुत्तोवयार-कुसला(सुंदर थणजघणवयण-करचरण-णयण-लावण्णविलास कलिया) पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा-

कोणिएणं रण्णा भंभसार-पुत्तेणं सद्धिं अणुरत्ता अविरत्ता इट्ठे सह-फरिस-रस-रूव-गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोए पच्चणुब्भवमाणी विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - कोमुइ - कौमुदी-कार्तिक पूर्णमासी, रयणियर - रजनीचर।

भावार्थ - उसकी कमर करतल-परिमित अर्थात् मुट्टी में आवे इतनी पतली थी और मध्यभाग प्रशस्त त्रिवली पेट पर पड़ने वाली मुडी हुई तीन रेखाओं से युक्त थी। कुण्डलों के द्वारा जिसके कपोलों-गालों की रेखा सतेज हो गई थी। मुख शरदपूनम के चांद के समान विमल, परिपूर्ण और सौम्य था। शृंगार रस के आगार-घर के समान सुन्दर वेश था। उसकी चाल, हंसी, बोली, अंगचेष्टा और आँखों की चेष्टा संगत-उचित थी। वह प्रसन्नता से युक्त वार्तालाप करने में निपुण थी और योग्य लोकव्यवहार में दक्ष थी। अतः वह चित्त के लिए आकर्षक, नयनाभिराम और सौन्दर्य की प्रतिमा थी-मन में उसकी सौम्यमूर्ति अङ्कित हो जाती थी। वह भंभसार-श्रेणिक के पुत्र कोणिक राजा के साथ बहुत ही प्रीति रखती थी-राजा के द्वारा अप्रिय प्रसंग आने पर भी विरक्त नहीं होती थी और इष्ट शब्द-संगीत आदि, रूप-नाटक आदि, गंध-फूल, इत्र, धूप आदि, रस-खाद्य पदार्थ और स्पर्श-वस्त्राभूषण, मकान शय्या, मर्दन, शीत-उष्णता की अनुकूलता आदि, ये पांच तरह के मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों को बारबार भोगती हुई रहती थी।

कोणिक राजा की भगवद्भक्ति

८- तस्स णं कोणिसस्स रण्णो एक्के पुरिसे विउल-कय-वित्तिए भगवओ पवित्तिवाउए, भगवओ तद्देवसिअं पवित्तिं णिवेएइ। तस्स णं पुरिसस्स बहवे अण्णे पुरिसा दिण्ण-भति-भत्त-वेयणा भगवओ पवित्तिवाउया भगवओ तद्देवसिअं पवित्तिं णिवेदेंति।

कठिन शब्दार्थ - पवित्तिवाउए - प्रवृत्तिव्यापृत-प्रवृत्ति को निवेदन करने वाला।

भावार्थ - उस कोणिक राजा ने भगवान् की विहारादि प्रवृत्ति को जानने के लिये एक पुरुष को विपुल वृत्ति-आजीविका देकर नियुक्त किया था, जो भगवान् की उस दिन-सम्बन्धी प्रत्येक दिन की प्रवृत्ति का उससे निवेदन करता था। उस पुरुष के भी-बहुत-से अन्य पुरुष भगवान् की प्रवृत्ति के निवेदक थे, जिन्हें दैनिक आजीविका और भोजन रूप वेतन देकर नियुक्त कर रखे थे। वे उसे भगवान् की प्रतिदिन की प्रवृत्ति के समाचार देते थे।

विवेचन - वृत्ति का परिमाण इस प्रकार बतलाया गया है - 'अर्द्धत्रयोदश-रजत सहस्राणि यदाह-मंडलियाणं सहस्सा पीडदाणं सयसहस्सा' अर्थात् वृत्ति का परिमाण साढ़े बारह हजार रजतमुद्राएँ (चांदी के सिक्के) हैं। क्योंकि कहा है "माण्डलिकों की ओर से वृत्ति हजारों की संख्या में और प्रीतिदान सौ-हजारों लाखों की संख्या में दिया जाता है।

९-तेणं कालेणं तेणं समएणं कोणिए राया भंभ-सार-पुत्ते बाहिरियाए उवट्टाणसालाए अणेगगण-णायग-दंडणायग-राईसर-तलवर-माडंविय-कोडंविय-मंति-महामंति-गणग-दोवारिय-अमच्च-चेड-पीढमह-णगर-णिगम-सेट्टि-सेणा-वइ-सत्थवाह-दूयसंधि-वाल-सद्धिं संपरिवुडे विहरइ।

कठिन शब्दार्थ - उवट्टाणसालाए - उपस्थान शाला अर्थात् सभा भवन।

भावार्थ - उस काल और उस समय में भंभसार-श्रेणिक का पुत्र कोणिक राजा, बाहरी सभा भवन में अनेक गणनायकों, दण्डनायकों-तंत्र के रक्षकों (कोतवाल) राजाओं, युवराजाओं, तलवरों अर्थात् राजा के द्वारा सम्मान सहित दिये गये रत्नपट्टक के धारक धनिकों, माडम्बिकों-दूर-दूर पर फैली हुई और बीच की भूमि में आस-पास बस्ती से रहित बस्तियों के स्वामियों, कुटुम्बों के आगेवानों, मन्त्रियों, महामन्त्रियों (मंत्रीमण्डल का प्रधान) गणकों-ज्योतिषियों अथवा खजांची, दौवारिकों-प्रतिहारों या दरवानों, अमात्यों-राज्य के अधिष्ठायकों, चेटों-सेवकों, परिपार्श्वकों या जी हजूरियों, नागरिकों, कर्मचारियों या व्यापारियों, श्रेष्ठियों-शिर पर 'श्री' देवता के चिह्नाङ्कित स्वर्णपट्ट के धारक धनिकों, सेनापतियों, सार्थवाहों, व्यापारियों के समूह को साथ में लेकर व्यापारार्थ देश-विदेश में भ्रमण करने वालों दूतों और सन्धिपालों-राज्य-सीमा के रक्षकों से घिरा हुआ बैठा था।

भगवान् महावीर का वर्णन

१०- तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे, आइगरे तित्थगरे (तित्थगरे) सहसंबुद्धे, पुरिसुत्तमे पुरिससीहे पुरिसवर-पुंडरीए पुरिसवरगंधहत्थी, अभयदए, चक्खुदए मग्गदए सरणदए जीवदए, दीवो ताणं सरणं गइ पइट्टा धम्म-सर-चाउरंत-चक्कवट्टी अप्पहिडय-वर-णाण-दंसण-धरे वियट्टच्छउमे जिणे जाणाए तिण्णे तारए मुत्ते मोयए बुद्धे बोहए, सव्वण्णू सव्वदरिसी सिव-मयल-मरुअ-मणंत-मक्खय-मव्वावाह-मपुणरावत्तिअं सिद्धिगइ-णामधेयं ठाणं संपाविउकामे (अरहा जिणे केवली)।

भावार्थ - उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी चम्पा के समीप पधारे। वे

घोर तपस्या करने से 'श्रमण' नाम से प्रसिद्ध थे। समस्त ऐश्वर्य से युक्त होने के कारण 'भगवान्' कहे जाते थे। देव आदि के द्वारा उपद्रव किये जाने पर भी अपने मार्ग पर वीरता से डटे रहे, अतः देवों ने उन्हें 'महावीर' नाम से प्रतिष्ठित किये थे। केवल ज्ञान होने पर पहले पहल श्रुतधर्म के करने वाले होने से वे आदिकर्ता थे और साधु साध्वी श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ रूप तीर्थ के स्थापक होने के कारण तीर्थङ्कर थे। स्वयमेव-किसी की सहायता या निमित्त के बिना ही-उन्होंने बोध प्राप्त किया था। वे पुरुषों में उत्तम थे, क्योंकि उनमें सिंह के समान शौर्य का उत्कृष्ट विकास हुआ था, पुरुषों में रहते हुए भी श्रेष्ठ सफेद कमल के समान सभी प्रकार की अशुभताएँ-मलिनताएँ, उनसे दूर रहती थी और श्रेष्ठ गंधहस्ती के समान, किसी क्षेत्र में उनके प्रविष्ट होते ही सामान्य हाथियों के समान परचक्र, दुर्भिक्ष, महामारी आदि दुरितों का विनाश हो जाता था। वे प्राणों को हरण करने में रसिक और उपद्रवों के करने वालों को भी भयभीत नहीं करते थे अथवा सभी प्राणियों के भय को हरण करने वाली दया के धारक थे-निर्भयता के दाता थे। चक्षु के समान श्रुतज्ञान के देने वाले थे। सम्यग्-दर्शन आदि मोक्षमार्ग के प्रदाता थे। उपद्रव से रहित स्थान के दायक थे और जीवन= अमरता रूप भाव प्राण के दानी थे। वे दीपक के समान समस्त वस्तुओं के प्रकाशक अथवा द्वीप के समान संसार सागर में नाना प्रकार के दुःखों की लहरों के थपेड़ों से पीड़ित व्यक्तियों के लिए आश्वासन-धैर्य के कारण द्वीप रूप, अनर्थों के नाशक होने से त्राणरूप, उद्देश्य की प्राप्ति में कारण होने से शरणरूप, खराब अवस्था से उत्तम अवस्था में लाने वाली गति रूप और संसार रूपी खड्डे में गिरते हुए प्राणियों के लिये आधार रूप थे। चार अन्तों= तीन दिशाओं में समुद्र और उत्तर दिशा में हिमवान् पर्वत रूप किनारे वाली पृथ्वी के मालिक चक्रवर्ती के समान धर्म में श्रेष्ठ चक्रवर्ती रूप थे। क्योंकि वे अप्रतिहत-अचूक ज्ञान के और दर्शन के धारक थे, कारण-उनके ज्ञान आदि के आवरण-ज्ञानादि गुणों को दबाने वाले कर्म हट गये थे। अतः निश्चय ही राग और द्वेष को जीत लिया था। ज्ञायक भाव में रागादि के स्वरूप, उनके कारण और फल के ज्ञातृभाव में-स्थित थे। इसलिए मुक्त थे, मुक्त करने वाले थे। बोध को प्राप्त किये हुए थे और दूसरों को बोध कराने वाले थे। वे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी उपद्रव से रहित, स्वाभाविक और प्रयोगजन्य चलन से रहित, नीरोग, अनन्त, सादि होते हुए भी नाश से रहित-अक्षय, बाधा-पीडा से रहित थे। अरहा-वे अर्हन्त थे अर्थात् वे अशोकादि अष्टमहाप्रातिहार्य रूप पूजा के योग्य थे तथा उनसे कोई बात छिपी हुई नहीं थी जिणे-'जयति राग द्वेषौ इति जिनः वे जिन थे अर्थात् राग द्वेष के विजेता थे। वे केवली थे। अर्थात् शुद्ध अनन्त ज्ञानादि के धारक थे, अतएव वे सर्वज्ञ थे और जहाँ से पुनः आगमन नहीं हो ऐसे 'सिद्धिगति' नामवाले स्थान को पाने के लिए सहजभाव से विचरण कर रहे थे अर्थात् अभी ऐसे स्थान को प्राप्त नहीं हुए थे किन्तु उसे प्राप्त करने की प्रवृत्ति चालू थी।

भगवान् के शरीर का वर्णन

सत्त-हत्थूसेहे, सम-चउरंस-संठाण-संठिए, वज्ज-रिसह-णाराय-संघयणे,

अणुलोम-वाउवेगे, कंकग्गहणी, कवोय-परिणामे, सउणि-पोस-पिदुंतरोरु-परिणए, पउमुप्पल गंध-सरिस-णिस्सास-सुरभि-वयणे, छवी णिरायंक-उत्तम-पसत्थ-अइ-सेय-णिरुवम-तले जल्ल-मल्ल-कलंक सेय-रय-दोस वज्जिय-सरीर-णिरुवलेवे छाया-उज्जोइयंग-मंगे।

भावार्थ - भगवान् के शरीर की ऊँचाई सात हाथ की थी। आकार समचौरस संस्थान-उचित और श्रेष्ठ माप से युक्त-सुन्दर था। उनकी हड्डियों की संयोजना अत्यन्त मजबूत थी। अतः सौन्दर्य और शक्ति का सुन्दर संयोग हुआ था। शरीर-स्थित वायु का वेग अनुकूल था। कंकपक्षी के समान गुदाशय था अर्थात् मलोत्सर्ग-क्रिया में कोई खराबी नहीं थी या मलोत्सर्ग स्थान के अवयव नीरोग थे। कबूतर के आहार-परिणमन की शक्ति के समान पाचन शक्ति थी। पक्षियों के समान अपान-देश निर्लेप रहता था। पीठ, अन्तर-पीठ और पेट के बीच के दोनों तरफ के हिस्से-पार्श्व और जंघाएँ विशिष्ट परिणाम वाली थीं अर्थात् सुन्दर थीं। पद्म कमल या 'पद्म' नामक गन्ध द्रव्य और उत्पल-नील कमल या 'उत्पलकुष्ठ' नामक गंध द्रव्य की सुगन्ध के समान निःश्वास से सुरभित प्रभु का मुख था। उनकी चमड़ी कोमल और सुन्दर थी। रोग से रहित, उत्तम, शुभ, अति सफेद और अनुपम प्रभु की देह का मांस था। अतः जल्ल-कठिन मैल, मल्ल-अल्प प्रयत्न से छूटने वाला मैल, कलङ्क-दाग, पसीने और रज के दोष से रहित भगवान् का शरीर था-उस पर मैल जम ही नहीं सकता था। अतः अंग-अंग उज्वल कान्ति से प्रकाशमान् थे।

शिख नख वर्णन

घण-णिचिय-सुबद्ध-लक्खणुण्णय-कूडागार-णिभ-पिंडि-अग्ग सिरए, सामलि-बोंड-घण-णिचियच्छोडिय-मिउ-विसय-पसत्थ-सुहुम-लक्खण-सुगंध-सुंदर-भुयमोयग-भिंग-णिल-कज्जल-पहिट्टु-भमर-गण-णिद्ध णिकुरंब-णिचिय-कुंचिय-पयाहिणावत्त-मुद्ध-सिरए दालिम-पुप्फ-प्पगास-तवणिज्ज-सरिस-णिम्मल-सुणिद्ध-केसंत-केसभूमी।

भावार्थ - अत्यन्त ठोस या सघन, स्नायुओं से अच्छी तरह से बंधा हुआ, श्रेष्ठ लक्षणों से युक्त, पर्वत के शिखर के समान आकार वाला और पत्थर की गोल पिण्डी के समान भगवान् का शिर था। सेमल वृक्ष के फल-जो कि रूई से ठोस भरा हुआ हो, उसके फटे हुए अंश से रूई बाहर निकल आई हो- उसके समान कोमल, सुलझे हुए, स्वच्छ और चमकीले या पतले-सूक्ष्म, लक्षणयुक्त सुगंधित, सुन्दर, भुजमोचक रत्न, भृंगकीट, नील-विकार, काजल और अत्यंत हर्षित भौर के समान काले और लटों के समूह से एकत्रित घुंघराले छल्लेदार बाल-प्रदक्षिणावर्त शिर पर थे। केश के समीप में केश के

उत्पत्ति के स्थान की त्वचा दाडिम के फूल के समान प्रभायुक्त थी, लाल सोने के समान वर्ण वाली निर्मल थी और उत्तम तेल से सिञ्चित-सी थी अर्थात् चिकनाई से युक्त चमकीली थी।

दिवेचन- तीर्थकर भगवन्तों के शरीर का वर्णन शिख नख अर्थात् मस्तक से लेकर पैरों के नखों तक होता है जब कि सामान्य मनुष्यों के शरीर का वर्णन पैरों से लगाकर मस्तक तक होता है। आगम में जहाँ प्रतिमाओं का वर्णन है यथा - ऋषभ, वर्धमान, चन्द्रानन, वारिसेण। इन सब प्रतिमाओं का वर्णन सामान्य मनुष्यों की तरह पैरों से लेकर मस्तक तक का है, इसलिए ये तीर्थकरों की प्रतिमा नहीं है ऐसा समझना चाहिए।

घण-णिचिय-छत्तागारुत्तमंगदेसे, णिव्वण-सम-लट्ट-मट्ट-चंदद्धसम-णिडाले उडुवइ-पडिपुण्ण सोम-वयणे, अल्लीण-पमाण-जुत्त-सवणे, सुस्सवणे, पीण-मंसल-कवोल-देसभाए (आणामिय चाव रुइल किण्हभ्भराइ संठिय संगय आयय सुजाय-भमुए) आणामिय-चाव-रुइल-किण्हभ्भराइ-तणु-कसिण-णिद्ध-भमुहे अवदालिय-पुंडरीय-णयणे कोयासिय-धवल-पत्तलच्छे, गरु-लायत-उज्जु-तुंग-णासे, उवचिय-सिल-प्पवाल-बिंबफल-सण्णिभाहरोट्टे, पंडुर-ससि-सयल-विमल-णिम्मल-संख-गोक्खीर-फेण-कुंददगरय-मुणालिआ-धवल-दंत-सेढी, अखंड-दंते अप्फुडियदंते, अविरलदंते, सुणिद्धदंते, सुजायदंते, एगदंतसेढीविव अणेगदंते, हुयवहणिद्धंत-धोय-तत्त-तवणिज्ज-रत्त-तल-तालु-जीहे अवट्टिय-सुविभत्त-चित्त-मंसू मंसल-संठिय-पसत्थ-सहूल-विउल-हणुए।

भावार्थ - उनका उत्तमांग (सिर) घन, भरा हुआ और छत्राकार था। ललाट आधे चांद के समान, घाव आदि के चिह्न से रहित, सम, मनोज्ञ और शुद्ध था। नक्षत्रों के स्वामी पूर्ण चन्द्र के समान सौम्य मुख था। मनोहर या संलग्न-ठीक ढंग से मुख के साथ जुड़े हुए या आलीन प्रमाण से युक्त कान थे, अतः वे सुशोभित थे। दोनों गाल मांसल और भरे हुए थे। भौंहें कुछ झुके हुए धनुष के समान टेढ़ी सुन्दर और काले बादल की रेखा के समान पतली, काली और कान्ति से युक्त थी। नेत्र खिले हुए सफेद कमल के समान थे। आँखें बरौनी=भांपन से युक्त धवल थीं, वे इस प्रकार शोभित थीं मानों कुछ भाग में पत्तों से युक्त खिले हुए कमल हों। नाक गरुड की चोंच के समान लम्बा सीधा और ऊँचा था। संस्कारित-शिलाप्रवाल=मूंगे और बिम्बफल के समान लाल अधरोष्ठ थे। दांतों की श्रेणि निष्कलङ्क चन्द्रकला या चांद के टुकड़े, निर्मल से भी निर्मल शंख, गाय के दूध, फेन, कुंद के फूल, जलकण और कमलनाल के समान सफेद थी। दांत अखण्ड, अजर्जर-मजबूत, अविरल-परस्पर सटे हुए, दो दांतों के बीच का अन्तर अधिक नहीं हो ऐसे, सुस्निग्ध=चीकने-चमकीले और सुन्दराकार थे। एक दांत की श्रेणि से अनेक दांत थे अर्थात् दाँतों की सघनता के कारण उनकी विभाजक रेखाएँ दिखाई नहीं देती थी,

अतः अनेक दांत होते हुए एक ही दन्त की पंक्ति-सी लगती थी। तालु और जीभ के तले, अग्नि के ताप से मल-रहित जल से धोए हुए और तपे हुए सोने के समान लाल थे। भगवान् की दाढ़ी-मूँछें कभी नहीं बढ़ती थी-सदा एक-सी रहती थी और सुन्दर ढंग से छँटी हुई-सी रम्य थी। चिबुक-उड्डी मांसल, सुन्दराकार, प्रशस्त और व्यान्न की चिबुक के समान विस्तीर्ण थी।

चउरंगुल-सुप्यमाण-कंबु-वर-सरिस-ग्गीवे, वर-महिस-वराह-सीह-सददुल-उसभ-णाग-वर-पडि-पुण्ण-विउल-क्खंधे जुग-सण्णिभ-पीण-रइय-पीवर-पउडु-सुसंठिय-सुसिलिडु-विसिडु-घण-थिर-सुबद्ध-संधि-पुर-वर-फलिह-वट्टिय भुए भुय-ईसर-विउल-भोग-आदाण पलिह-उच्छूढ (फलिह ओच्छूढ) दीह-बाहू-रत्त-तलोवइय-मउअ-मंसल सुजाय लक्खण-पसत्थ-अच्छिह-जाल-पाणी, पीवर (वट्टिय-सुजाय) कोमल वरंगुली आयंब-तंब-तलिण-सुइ-रुइल-णिद्ध-णक्खे, चंदपाणिलेहे, सूरपाणिलेहे, संखपाणिलेहे, चक्कपाणिलेहे, दिसासोत्थिय-पाणिलेहे (रवि ससि-संख चक्कसोत्थिय विभत्त सुविरइय पाणिलेहे) अणेग वर लक्खणुत्तम सत्थप सुइ रइय पाणिलेहे, चंद-सूर-संख-चक्क-दिसा-सोत्थिय-पाणिलेहे।

भावार्थ - भगवान् की ग्रीवा श्रेष्ठ शंख समान सुन्दर और चार अंगुल की उत्तम प्रमाण से युक्त थी। स्कंध-खंधे, श्रेष्ठ भैंसे, सूअर, सिंह, बाघ, प्रधान हाथी और वृषभ-सांड के खंधे के समान प्रमाण से युक्त-सभी विशेषताओं से सम्पन्न और विशाल थे। उनके बाहू गाड़ी के जुड़े के समान गोल और लम्बे मोटे, देखने में सुखकर और दुर्बलता से रहित-पुष्ट पोंचों=कलाइयों से युक्त थे, बाहू का आकार सुन्दर था, संगत था अतः वे विशिष्ट थे-घन वायु से फूले हुए नहीं किन्तु हृष्ट-पुष्ट स्थिर और स्नायुओं से ठीक ढंग से बंधी हुई सन्धियों=हड्डियों के जोड़ से युक्त थे। वे पूरे बाहू ऐसे दिखाई देते थे कि मानों इच्छित वस्तु को प्राप्त करने के लिए फणधर ने अपना महान् देह फैलाया हो। प्रभु के हाथ के तले लाल, उन्नत, कोमल, भरे हुए सुन्दर और शुभ लक्षणों से युक्त थे और अंगुलियों के बीच में उन्हें मिलाने पर छिद्र दिखाई नहीं देते थे। अंगुलियाँ पुष्ट, कोमल और श्रेष्ठ थीं। अंगुलियों के नख ताम्बे के समान कुछ-कुछ लाल, पवित्र, दीप्त और स्निग्ध अर्थात् रूक्षता से रहित थे। हाथ में चन्द्राकार, सूर्याकार, शंखाकार, चक्राकार और दक्षिणावर्त स्वस्तिकाकार रेखाएँ थीं। इन सभी रेखाओं के सुसंगम से हाथ सुशोभित थे।

कणग-सिलातलुज्जत-पसत्थ-समतल-उवचिय-विच्छिण्ण-पिहुल-वच्छे, (उवचिय पुरवर कवाड-विच्छिण्ण-पिहुलवच्छे, कणय सिलायलुज्जल पसत्थ समतल सिरिवच्छ-रइयवच्छे) सिरिवच्छंकियवच्छे अकरंडुय-कणग-रुयय-णिम्मल-सुजाय-

गिरुवहय-देह-धारी अट्ट-सहस्स-पडिपुण्ण-वर-पुरिस-लक्खण-धरे, सण्णयपासे, संगयपासे, सुंदरपासे, सुजायपासे, मिय-माइय-पीण-रइय-पासे ।

भावार्थ - भगवान् का वक्ष-छाती, सीना सुवर्ण शिलातल के समान उज्वल, प्रशस्त, समतल, मांसल, विशाल और चौड़ा था। उस पर 'श्रीवत्स' स्वस्तिक का चिह्न था। मांसलता के कारण पांसलियों की हड्डियाँ दिखाई नहीं देती थी। स्वर्ण-कांति-सा सुनहरा निर्मल, मनोहर और रोग के पराभव से-आघात से रहित भगवान् का देह था। जिसमें पूरे एक हजार आठ श्रेष्ठ पुरुषों के लक्षण थे। उनके पार्श्व-बगल नीचे की ओर क्रमशः कम घेरे वाले हो गये थे, देह के प्रमाण के अनुकूल थे, सुन्दर थे, उत्तम बने हुए थे और मितमात्रित-न कम न ज्यादा, उचित रूप से मांस से भरे हुए पुष्ट-रम्य थे।

उज्जुय-सम-संहिय-जच्च-तणु-कसिण-णिद्ध-आइज्ज-लडह-रमणिज्ज-रोम राई झस विहग सुजाय-पीण-कुच्छी (झसोदर-पउम-वियड णाभि) झसोदरे सुइकरणे, पउमवियडणाभे, गंगावत्तक पयाहिणावत्त तरंग-भंगुर-रवि-किरण-तरुण-बोहिय-अकोसायंत-पउम-गंभीर-वियडणाहे (भे), साहय-सोणंद-मुसल-दप्पण-णिकरिय-वर-कणगच्छरु-सरिस-वर-वइर-वलिय-मज्जे (सीह अइरेग वट्टिय) पमुइय वर-तुरग सीह वर-वट्टिय-कडी ।

भावार्थ - भगवान् के वृक्ष और उदर पर सीधे और समरूप से एक-दूसरे से मिले हुए, प्रधान पतले, काले स्निग्ध, मन को भाने वाले, सलावण्य-सलौने और रमणीय रोमों की पंक्ति थी। मत्स्य (मछली) और पक्षी की-सी उत्तम और दृढ़ मांसपेशियों से युक्त कुक्षि थी। मत्स्य का-सा उदर था। पावन इन्द्रिय थी या पेट के करण-अंत्रजाल पावन थे। गंगा के भंवर के समान, दाहिनी ओर घूमती हुई तरंगों से भंगुर अर्थात् चञ्चल, सूर्य की तेज किरणों से विकसित कमल के मध्य भाग के समान गंभीर और गहन नाभि थी। त्रिदंड, मूशल, साण पर चढ़ाये हुए श्रेष्ठ स्वर्ण दर्पणक= दर्पण-दंड और खड्गमुष्टि-मूठ के समान श्रेष्ठ, वज्रवत् क्षीण देह का मध्य भाग था। रोग-शोकादि से रहित= प्रमुदित श्रेष्ठ अश्व और सिंह की कटि के समान श्रेष्ठ घेरे वाली कटि (कमर) थी।

पसत्थ वर-तुरग-सुजाय-सुगुज्झ-देसे आइ-ण्णहउव्व गिरुवलेवे, वर-वारण-तुल्ल-विक्कम- विलसिय-गई, गय-ससण-सुजाय-सणिभोरु समुग्ग-णिमग्ग-गूढ-जाणू-एणी-कुरुविंदावत्त-वट्टाणुपुव्व-जंधे संठिय-सुसिलिट्ठ-गूढ-गुप्फे सुप्पइट्टिय-कुम्म-चारु-चलणे (अणुपुव्व सुसाहय पीवरंगुलीए) अणुपुव्व-सुसंहयंगुलीए, उण्णय-तणु-तंब-णिद्ध-णक्खे, रत्तुप्पल-पत्त-मउय-सुकुमाल-कोमल-तले, अट्ट-सहस्स-वर-पुरिस-लक्खण-धरे ।

विवेचन - तीर्थकर भगवन्तों के चौतीस अतिशय (अतिशेष) होते हैं वे समवायांग सूत्र के ३४ वें समवाय में 'बुद्धाङ्गशेष' शीर्षक से ३४ अतिशय दिये हैं वे इस प्रकार हैं -

१. भगवान् के मस्तक के केश दाढ़ी-मूँछ, रोम और नख अवस्थित रहते हैं अर्थात् दीक्षा लेने के बाद वृद्धि को प्राप्त नहीं होते हैं, परिमाणोपेत रहते हैं, २. नीरोग और लेप-रहित देह, ३. गोक्षीर के समान सफेद रक्त-मांस ४. कमल और नीलकमल या पद्म और कुष्ठ नामक गंधद्रव्य के समान सुगंधित श्वास-उच्छ्वास ५. चर्मचक्षु से अदृश्य-प्रच्छन्न आहार-नीहार ६. आकाशगत चक्र, ७. आकाश गत (तीन) छत्र ८. आकाशगत श्रेष्ठ सफेद चामर ९. आकाश के समान स्वच्छ स्फटिक का पादपीठ सहित सिंहासन १०. छोटी-छोटी हजारों झण्डियों से परिमण्डित इन्द्रध्वज का आगे-आगे चलना ११. जहाँ-जहाँ भगवान् ठहरते या बैठते हों वहाँ वहाँ उसी समय छत्र, ध्वज, घण्टा और पताका सहित पुत्र-पुष्प से लदे हुए हरेभरे अशोकवृक्ष का होना १२. शिरोभाग के कुछ पीछे अंधकार में भी प्रकाश करते हुए तेजोमण्डल भामण्डल का होना १३. विचरण भूमि का सम और रमणीय हो जाना १४. कांटों का उलटे मुख हो जाना १५. विपरीत ऋतु का भी सुखमय स्पर्शवाली हो जाना १६. शीतल, सुखद और सुरभित हवा से एक योजन के भूमि मण्डल का पूर्णतः चारों ओर से प्रमार्जित होना १७. उचित मेघ-फुँहार से रजकण का नीचे बैठ जाना १८. जल-स्थल में उत्पन्न हुए फूलों के उनके डींटे नीचे रहें इस प्रकार घुटने परिमाण ढेर होना १९. अमनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध का मिटना २०. मनोज्ञ शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध का प्रकट होना २१. मनोहर एक योजनगामी स्वर २२. अर्द्धमागधी भाषा २३. उस भाषा का आर्य-अनार्य पशु-पक्षी सभी की अपनी-अपनी हितकारी, कल्याणकारी और सुखकारी भाषा में बदल जाना २४. पूर्वबद्ध वैर और अनादिकालीन जातीय वैर को भूलकर देव मनुष्य और तिर्यञ्च का तीर्थकर भगवान् के चरणों में बैठकर, प्रसन्नचित्त से धर्मोपदेश सुनना २५. अन्य दर्शन में स्थित व्यक्तियों का भी समीप में आने पर विनयशील बन जाना २६. तीर्थकर भगवन्तों के चरणों की छाया में आने पर वादी का निरभिमानी हो जाना २७. जहाँ-जहाँ तीर्थकर भगवान् का विचरण होता है, वहाँ-वहाँ पर २५ योजन तक ईति=क्षुद्र जन्तुओं का भय अर्थात् कृषि को हानि पहुँचाने वाले उपद्रवों का न होना २८. संक्रामक रोगों का या मनुष्यों को काल के गाल में ले जाने वाले मारी, प्लेग, हैजा आदि रोगों का नहीं होना २९. निज राज्य के सैन्य आदि का उपद्रव नहीं होना ३०. पर राज्य के सैन्यादि का उपद्रव न होना ३१. अतिवृष्टि नहीं होना ३२. अनावृष्टि नहीं होना ३३. दुर्भिक्ष (दुष्काल) और ३४. अनिष्ट सूचक चिह्नों और उनके द्वारा होने वाले उपद्रवों और व्याधियों का नहीं होना यदि पहले हुई हो तो उनका शमन होना।

इनमें से दूसरे से पांचवें तक चार अतिशय तीर्थकरों के जन्म से होते हैं, इक्कीसवें से चौतीसवें तक और बारहवाँ भामण्डल कुल पंद्रह अतिशय घाती कर्म के क्षय से होते हैं और शेष पन्द्रह अतिशय देवकृत होते हैं। इससे भिन्न रूप में कहीं-कहीं उल्लेख दिखाई देता है, वह मतान्तर समझना चाहिए।

नोट - इनका विवेचन जैन सिद्धान्त बोल संग्रह भाग ७ पृष्ठ ३८ पर है।

तीर्थंकर भगवंतों की वाणी जगत् के समस्त जीवों के लिए विशेष उपकारक होती है। तीर्थंकर भगवान् राग द्वेष रहित होते हैं। इसलिए उनकी वाणी सर्वथा सत्य होती है, उस वाणी के पैंतीस अतिशय होते हैं। जिनका कथन समवायांग सूत्र के ३५ वें समवाय में है। यहाँ भगवान् के अतिशयों का वर्णन चल रहा है। इसलिए उनकी वाणी के पैंतीस अतिशयों का भी वर्णन यहां दे दिया जाता है-

वाणी के पैंतीस अतिशय-१. संस्कारयुक्त वचन २. उदात्त-उच्च वचन या उच्च स्वर ३. ग्राम्य-दोष से रहित ४. मेघ-गर्जन के समान गंभीर ५. प्रतिध्वनि-गुंजन से युक्त ६. सरल ७. संगीतमय-मालकोश आदि राग से युक्त ८. विशाल अर्थ युक्त ९. परस्पर अविरोधी वाक्यार्थ १०. शिष्टता युक्त या अपने सिद्धांत के प्रतिपादन की सामर्थ्य से युक्त ११. संदेह-रहित १२. किसी के दूषण लगाने की गुंजाइश से रहित १३. हृदयग्राही-सुनने वाले को प्रिय लगने वाले १४. देश-कालोचित १५. विवक्षित वस्तु-स्वरूप के अनुरूप १६. विषयानुकूल विस्तार से युक्त और असम्बद्ध विषयों के विस्तार से रहित १७. परस्पर सापेक्ष पदों से युक्त १८. प्रौढ़ स्त्री, बालक आदि की भूमिका के अनुसार प्रतिपादन शैली से सम्पन्न १९. घी-गुड के समान सुखकारी, स्निग्ध-मधुर २०. किसी के मर्म-प्रकाशन से रहित २१. मोक्ष रूप अर्थ एवं श्रुतचारित्र रूप धर्म से सम्बद्ध होना २२. उदारत्व-प्रतिपाद्य अर्थ का महान् होना अथवा शब्द और अर्थ की विशिष्ट रचना होना २३. परनिंदा और आत्म-प्रशंसा से रहित, २४. गुणों के योग से प्रशंसित २५. कारक, काल, वचन, लिंग आदि से सम्बन्धित दूषणों से रहित २६. स्व-विषय में कौतूहल-वर्धक-अखण्ड जिज्ञासा-वर्द्धक, २७-२८. न तीव्र, न मंद अद्भुत प्रवाह से युक्त २९. वक्ता के प्रति भ्रान्ति या वक्ता के मन की भ्रान्तिता विक्षेप-कहे जाते विषय के प्रति अरुचि और भय, रोष अभिलाषा आदि मनोदूषण से रहित ३०. वर्णनीय वस्तु का अनेक तरह से वर्णन करने के कारण, विचित्रता से युक्त ३१. अन्य वचनों की अपेक्षा आदर से ग्रहण किये जाने पर विशेषता से युक्त ३२. अलग-अलग वर्ण, पद और वाक्यों के द्वारा आकार-प्राप्त ३३. सत्त्व-परिगृहीत-उत्साह युक्त या बलप्रद ३४. अपरिखेदित्व-उपदेश देते हुए थकावट अनुभव न होना ३५. विवक्षित-कहे जाने वाले अर्थ की सम्यक् सिद्धि किये बिना-विषय को अधूरा ही छोड़कर, बंद नहीं होने वाले प्रवाह से युक्त भगवान् के वचन थे।

पहले के सात अतिशय शब्द की अपेक्षा से कहे गये हैं और शेष अर्थ की अपेक्षा से।

नोट - इन ३५ अतिशयों का वर्णन जैन सिद्धान्त बोल संग्रह के सातवें भाग के पृष्ठ ७१ पर है।

आगासगएणं चक्केणं आगासगएणं छत्तेणं, आगासियाहिं (सेय वर)चामराहिं आगस-फलियामएणं सपायवीढेणं सीहासणेणं, धम्मञ्जाएणं पुरओ पक-ढिज्ज-माणेणं (चउहसहिं समणसाहस्सीहिं, छत्तीसाए अज्जिआ-साहस्सीहिं) सद्धिं संपरिवुडे पुष्वाणुपुष्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूड्जमाणे, सुहंसुहेणं विहरमाणे, चंपाए णयरीए बहिया उवणगरगामं उवागए, चंपं णगरिं पुण्णभहं चेइयं समोसरिउं कामे।

भावार्थ - आकाशवर्ती धर्मचक्र, आकाशवर्ती तीन छत्र, आकाशवर्ती या ऊपर उठते हुए सफेद चामर, विशिष्ट सफेद चामर पादपीठ-पैर रखने की चौकी-सहित, आकाश के समान स्वच्छ स्फटिकमय सिंहासन और आगे-आगे चलते हुए धर्मध्वज (चौदह हजार साधु और छत्तीस हजार आर्यिकाएं) के साथ धिरे हुए तीर्थंकर भगवान् की परम्परा के अनुसार विचरते हुए क्रमशः एक ग्राम से दूसरे ग्राम को पावन करते हुए और शारीरिक खेद से रहित-संयम में आने वाली बाधा-पीड़ा से रहित विहार करते हुए, चम्पानगरी के बाहर के उपनगर-समीप के गांव में पधारे और वहाँ से चम्पानगरी के पूर्णभद्र चैत्य में, पधारने वाले थे।

विवेचन - यहाँ पर भगवान् महावीर स्वामी के साथ १४००० सन्त एवं ३६००० आर्याओं का कथन आया है। इसका आशय इस प्रकार समझना चाहिये कि जिस प्रकार चक्रवर्ती का राज्य छह खण्ड में होता है। उन छहों खण्डों में रहने वाली सेना सब चक्रवर्ती के अधीन होती है। वह चक्रवर्ती के साथ ही गिनी जाती है। किन्तु सभी सेना चक्रवर्ती के पास राजधानी में ही नहीं रहती है। इस प्रकार तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा में विचरने वाले जितने भी साधु-साध्वी हैं वे सब तीर्थंकर भगवान् के साथ ही गिने जाते हैं। इसलिये श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के श्रमणों की उत्कृष्ट सम्पदा १४००० और आर्याओं की सम्पदा ३६००० थी। वे सब भगवान् के साथ ही गिने जाते हैं। किन्तु इतने साधु-साध्वी भगवान् के एक साथ चंपा नगरी में पधारे ऐसा नहीं समझना चाहिए। दूसरी बात यह है कि - साधु-साध्वी का एक साथ विहार होता ही नहीं है। साथ विहार करने से तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन होता है और प्रायश्चित्त का कारण बनता है।

विहार के लिये मूलपाठ में तीन शब्द दिये हैं। जिनका अर्थ है - साधु साध्वी का विहार तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा के अनुसार होना चाहिये तथा पैदल विहार होना चाहिये ताकि ग्रामानुग्राम की भूमि साधु-साध्वी के पग-तल से स्पर्शित होती जाय किन्तु डोली, व्हीलचेअर, ठेला, कार, मोटर तथा हवाई जहाज आदि से नहीं होनी चाहिये।

तीसरा शब्द दिया है 'सुहं सुहेणं' जिसका अर्थ है - बहुत उतावला उतावला विहार नहीं होना चाहिये। जिससे कि ईर्या समिति का पालन न होने से संयम दूषित बने तथा इतना लम्बा विहार भी नहीं होना चाहिये जिससे शरीर खेदित हो जाय, अकड़ जाय, दूसरे दिन चलने की शक्ति न रह जाय, शरीर में किसी प्रकार की व्याधि उत्पन्न हो जाय। तात्पर्य यह है कि - संयम और शरीर खेदित न हों इस तरह का विहार होना चाहिये।

धर्म सन्देशवाहक

११- तए णं से पवित्तिवाउए इसीसे कहाए लद्धट्टे समाणे हट्टुट्टु-चित्त-माणंदिए पीडमणे परम-सोमणस्सिए हरिस-वस-विसप्पमाण-हियाए ण्हाए कयबलिकम्मे

कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्य-वेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवर-परिहिए
अप्यमहग्घा-भरणा-लंकिय-सरीरे, सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ।

कठिन शब्दार्थ - हट्टुट्टु - हष्टतुष्ट-हष्टतुष्टोऽतीव तुष्टः। अथवा हष्टो नाम विस्मयापन्नो यथा अहो भगवानास्ते इति। तुष्टस्तोषं कृतवान् यथा भव्यमभूत् यन्मया भगवानवलोकितः।

अर्थ - हष्टतुष्ट दोनों शब्दों का सम्मिलित अर्थ है - अन्त्यन्त सन्तुष्ट हुआ अथवा हष्ट का अर्थ है आश्चर्य चकित हुआ कि भगवान् यहाँ विराजते हैं और तुष्ट का अर्थ सन्तुष्ट हुआ कि-मैंने भगवान् के दर्शन किये।

भावार्थ - तब भगवान् की प्रवृत्ति के निवेदक उस पुरुष ने, यह बात जानकर हर्षित या विस्मित और संतुष्ट चित्त, आनंदित- किञ्चित् मुख-सौम्यता आदि भावों से समृद्ध, मन में प्रीति से युक्त, परम सुन्दर मानसिक भावों से सम्पन्न और हर्षावेश से विकसित हृदयवाला होकर, स्नान, बलिकर्म, कौतुक-मंगल और प्रायश्चित्त करने के बाद, स्नान से शुद्ध बने हुए शरीर पर, मंगल वस्त्रों के वेश को सुन्दर ढंग से पहनाकर थोड़े भार वाले बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को सजाया। फिर वह अपने घर से बाहर निकला।

विवेचन - मूल पाठ में 'कयबलिकम्मे' शब्द आया है। इस शब्द के अर्थ में मतभेद है - टीकाकार इसका अर्थ इस प्रकार करते हैं - 'कृतबलिकर्मन्-कृतं निष्पादितं स्नानानन्तरं बलिकर्म स्वगृहदेवतानां पूजा येन स कृत बलिकर्मा।'।

अर्थ - स्नान करने के बाद अपने घर के देवता की पूजा करना किन्तु यह अर्थ मूलपाठ के अनुसार नहीं है। क्योंकि आगमों में जहाँ पर स्नान का पूरा वर्णन यथा तेल मालिश करना, उबट्टन करना आदि है। वहाँ पर 'बलिकर्म' शब्द का प्रयोग नहीं है और जहाँ स्नान का पूरा वर्णन नहीं है वहाँ पूरा वर्णन बताने के लिये 'बलिकर्म' शब्द का प्रयोग हुआ है जैसे कि - जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का पूरा वर्णन दिया है वहाँ पर णमोत्थुणं का पूरा पाठ दिया गया है और जहाँ वर्णन पूरा नहीं दिया गया है वहाँ "समणेणं भगवया महावीरिणं जाव संपत्तेणं।" 'जाव' शब्द से णमोत्थुणं का पूरा पाठ लिया गया है। इसी प्रकार 'बलिकर्म' शब्द से स्नान सम्बन्धी पूरा पाठ लिया गया है।

ज्ञाताधर्म कथाङ्ग सूत्र के दूसरे अध्ययन में धन्ना सार्थवाह की स्त्री भद्रा का पुत्र की इच्छा से नाग, भूत, यक्ष के पूजन का वर्णन है। उसमें नगर के बाहर उद्यान में पुष्करणी में स्नान करने का उल्लेख है। ज्ञातासूत्र के आठवें अध्ययन में मल्लिकुमारी के पिता के पगवन्दन के वर्णन में तथा छह राजाओं को प्रतिबोध देने के वर्णन में भी यह पद है। इसी प्रकार ज्ञातासूत्र के सोलहवें अध्ययन द्रौपदी के वर्णन में, भगवती सूत्र शतक ९ उद्देशक ३३ में देवानंदा के वर्णन में, जमाली के वर्णन में, भगवती सूत्र शतक ७ उद्देशक ९ में वरुण नाग-न्तुआ श्रावक के वर्णन में भी 'बलिकर्म' शब्द का प्रयोग हुआ है किन्तु वहाँ कोई गृह देवता नहीं है। 'राजप्रश्नीय' सूत्र में राजा प्रदेशी और केशीकुमार श्रमण के प्रश्नोत्तर के प्रसङ्ग में कठियारे का जंगल में स्नान करने के वर्णन में 'बलिकर्म' शब्द का प्रयोग हुआ है। वहाँ उसका कोई

गृहदेवता नहीं है। निष्कर्ष यह है कि - जहां स्नान का पूरा वर्णन नहीं है वहाँ स्नान सम्बन्धी सम्पूर्ण वर्णन को लेने के लिये 'कयबलिकम्मे' शब्द का प्रयोग हुआ है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र के तीसरे वक्षस्कार में भरत चक्रवर्ती के स्नान का विस्तृत वर्णन है। वहाँ पर 'बलिकर्म' शब्द का प्रयोग नहीं है। निष्कर्ष यह है कि जहाँ स्नान का पूरा वर्णन है वहाँ 'कयबलिकम्मे' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है।

समर्थ चर्चावादी श्री जेठमल जी म. सा. द्वारा रचित 'समकित सार' ग्रन्थ में भी 'कयबलिकम्मे' शब्द का उपरोक्त अर्थ ही किया है कि - स्नान सम्बन्धी सारे वर्णन को बताने के लिये ही 'कयबलिकम्मे' शब्द का प्रयोग होता है। 'गृहदेवता का पूजन' यह अर्थ आगम सम्मत नहीं है।

सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमित्ता, चंपाए णयरीए मज्झं-मज्झेणं जेणेव कोणियस्स रण्णो गिहे, जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला, जेणेव कूणिए राया भंभसारपुत्ते, तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ। वद्धावित्ता एवं वयासी-जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं कंखति, जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं पीहंति, जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं पत्थंति, जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं अभिलसंति, जस्स णं देवाणुप्पिया णाम-गोत्तस्स वि सवणयाए हट्टुत्तु जाव हियया भवंति, से णं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे, गामाणुगगामं दूइजमाणे, सुहं सुहेणं विहरमाणे, चंपाए णयरीए उवणगरगामं उवागए, चंपं णगरि पुण्णभहं चेइयं समोसरिउं कामे। तं एयं णं देवाणुप्पियाणं पियट्टु-याए पियं णिवेदेमि पियं ते भवउ।

कठिन शब्दार्थ-उवट्टाणसाला - उपस्थान शाला-बैठने की सभा, जएणं- सामान्य जय, विजएणं- विशिष्ट जय-प्रबल शत्रुओं पर जय, वद्धावेइ - वृद्धापयति-जय विजय से वृद्धि को प्राप्त हो।

भावार्थ - वह प्रवृत्ति निवेदक अपने घर से निकल कर चम्पा नगरी के मध्य में होता हुआ जहाँ कोणिक राजा का निवास स्थान था, जहाँ बाहरी सभा भवन था और जहाँ भंभसार श्रेणिक का पुत्र कोणिक राजा (बैठा) था, वहाँ आया। जय-विजय से (आपकी वृद्धि हो-इस प्रकार) वधाया अर्थात् आप जय विजय करते हुए वृद्धि को प्राप्त होवें ऐसा आशीर्वाद दिया फिर वह इस प्रकार बोला-हे देवानुप्रिय ! आप जिनके दर्शन चाहते हैं एवं प्राप्त होने पर छोड़ना नहीं चाहते हैं, हे देवानुप्रिय ! जिनके दर्शन नहीं हुए हों तो पाने की इच्छा करते हैं, हे देवानुप्रिय ! जिनके दर्शन हो-ऐसे उपायों की अन्यजन से अपेक्षा करते हैं-अर्थात् चाहते हैं, हे देवानुप्रिय ! जिनके दर्शन के लिए अभिमुख होना सुन्दर मानते हैं और हे देवानुप्रिय ! जिनके नाम-महावीर, ज्ञात पुत्र, सन्मति आदि और गोत्र-काश्यप के सुनने मात्र से हर्षित, संतुष्ट यावत् हर्षावेश से विकसित हृदयवाले हो जाते हैं - वे ही श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, क्रमशः विचरते हुए, मार्ग में आने वाले गांवों को पावन करते हुए और सुखपूर्वक

विचरते हुए चम्पा नगरी के पूर्णभद्र चैत्य में आने के लिये, चम्पानगरी के उपनगरों में पधारे हैं। यह देवानुप्रिय का प्रीतिकर विषय होने से प्रसन्नता के लिये प्रिय समाचार निवेदन कर रहा हूँ। वह आपके लिये प्रिय बने।

कोणिक राजा का परोक्ष वन्दन

१२- तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते तस्स पवित्तिवाउयस्स अंतिए एयमट्टं सोच्चा णिसम्म हट्टुट्टु-जाव हियाए (धाराहय-णीव-सुरभि-कुसुम-चंचुमालइय-अच्छिय-रोमकूवे) वियसिय-वर-कमल-णयण-वयणे पयलिय वर-कडग-तुडिय-केऊर-मउड-कुंडल-हार-विरायंत-रइय-वच्छे पालंब-पलंबमाण-घोलंत-भूसण-धरे, ससंभमं तुरियं चवलं णरिदे सीहासणाठ अब्भुट्टेइ। अब्भुट्टित्ता पायपीठाउ पच्चोरुहइ। पच्चोरुहिता (वेरुलिय वरिट्टु रिट्टु अंजण विउणोविय-मिसिमिसिंत-मणिरयण पंडियाओ) पाउयाओ ओमुयइ। ओमुइत्ता अवहट्टु पंच-राय-ककुहाइं, तं जहा-खगं १, छत्तं २, उप्फेसं ३, वाहणाओ ४, वालवीयणं ५, एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ। करेत्ता आयंते चोक्खे परम सुइभूए अंजलि-मउलियग्ग हत्थे तित्थगराभिमुहे सत्तट्टु-पयाइं अणुगच्छइ सत्तट्टु-पयाइं अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ। वामं जाणुं अंचेत्ता दाहिणं जाणुं धरणितलंसि साहट्टु, तिक्खुत्तो मुद्दाणं धरणितलंसि णिवेसेइ। णिवेसेत्ता ईसिं पच्चुण्णमइ। पच्चुण्णमित्ता कडग-तुडिय-थंभियाओ भुयाओ पडिसाहरइ। पडिसाहरित्ता करयल- जाव कट्टु एवं वयासी-

कठिन शब्दार्थ - ककुहाइं - राजचिह्न, उप्फेसं - मुकुट, वालवीयणं - चामर, उत्तरासंगं - उत्तरीयस्य देहे न्यासविषेशः-उत्तरीय अर्थात् दुपट्टे को वायुकाय जीवों की रक्षा के लिये मुख पर लगाना, एगसाडियं - एकशाटिक-अर्थात् बिना सिला हुआ।

भावार्थ - तब भंभसार श्रेणिक राजा का पुत्र कोणिक, उस प्रवृत्ति-निवेदक से यह बात कान से सुनकर हृदय से धारण कर, बहुत प्रसन्न हुआ। श्रेष्ठ कमल के समान नेत्र और मुख विकसित हो गये। भगवान् के आगमन-श्रवण से उत्पन्न हर्षविेश के कारण कङ्कण, तुडिय-हाथ के तोड़े आभूषण, केयूर-अंगद, भुजबंध, मुकुट, कुंडल और हार से सुशोभित बना हुआ वक्ष विकसित हो रहा था। लम्बी लटकती हुई माला और हिलते हुए भूषणों के धारक नरेन्द्र ससंभ्रम-आदर सहित जल्दी-जल्दी सिंहासन से उठे। सिंहासन से उठ कर, पादपीठ से-चौकी से नीचे उतरे। उतर कर पादुकाएँ खोली। पांच राज विहों को दूर किये, यथा - १. खड्ग २. छत्र ३. मुकुट ४. उपानद्-पगरक्खी, जूते और

५. चामर। एक-शाटिक उत्तरासंग किया। जल स्पर्श से मैल से रहित-अति स्वच्छ बने हुए हस्तसम्पुट-अञ्जली से कमल की कली के समान आकार वाले हाथों से युक्त (अर्थात् हाथ जोड़ कर) जिधर तीर्थङ्कर भगवान् विराजमान थे उधर मुख करके, सात-आठ कदम सामने गये। बायें पैर को संकुचित किया। दायें पैर को धरतीतल पर, संकोचकर रखा और शिर को तीन बार धरती से लगाया। फिर थोड़ा-सा ऊपर उठकर कड़े और तोड़े से स्थिर बनी हुई भुजाओं को उठा कर, हाथ जोड़े और अंजली को सिर पर लगा कर इस प्रकार बोले -

णमोऽत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं, आइगराणं तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं,
पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुंडरीयाणं पुरिसवरगंधहत्थीणं, लोगुत्तमाणं
लोगणाहाणं लोगहियाणं लोगपईवाणं लोगपज्जोय-गराणं, अभयदयाणं चक्खुदयाणं
मग्गदयाणं सरण-दयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं, धम्मदयाणं धम्म-देसयाणं
धम्मणायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंत-चक्क-वट्टीणं, दीवो ताणं सरणं गई
पइट्ठा, अप्पडिहय-वर-णाण-दंसण-धराणं वियट्ट-छउमाणं, जिणाणं जावयाणं
तिण्णाणं तारयाणं, बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोयगाणं, सब्बणूणं सब्बदरिसीणं,
सिव-मयल-मरुय-मणंत-मक्खय-मव्वावाह-मपुणरावित्ति-सिद्धिगइ-णामधेयं ठाणं
संपत्ताणं। णमोऽत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स आइगरस्स तित्थयरस्स.... जाव
संपाविउ कामस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवए-सगस्स।

वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इह गए, पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं, ति कट्टु
वंदइ णमंसइ।

कठिन शब्दार्थ - अरिहंत - कर्म रूपी अरि-शत्रुओं का हनन-विनाश करने वालों को 'अरिहन्त' कहते हैं। जैसा कि कहा है -

अट्टुविहं पि य कम्मं, अरिभूयं होइ सयलजीवाणं।

तं कम्ममरिं हन्ता, अरिहंता तेण वुच्चंति॥

अर्थ - आठ प्रकार के कर्म सभी जीवों के लिए शत्रु रूप हैं। उन कर्मशत्रुओं का जो विनाश करते हैं। उनको 'अरिहन्त' कहते हैं।

भगवान् - परम ऐश्वर्यशाली, परम पूज्य। जैसा कि कहाँ है- 'भगं भाग्यं विदधते यस्य स भगवान्।'

ऐश्वर्यं समग्रस्य रूपस्य यशसः श्रियः।

धर्मस्याथ प्रयत्नस्य, षण्णां भग इति इङ्गना॥

अर्थ - सम्पूर्ण ऐश्वर्य रूप, यश, श्री (लक्ष्मी), धर्म और प्रयत्न, इन छह को 'भग' कहते हैं।
आदिकर (आइगर) - आचारादि श्रुतधर्म सम्बन्धी अर्थ की आदि (प्रारंभ) के करने वाले।
तीर्थङ्कर - जिसके द्वारा संसार समुद्र से तिरा जाय उसको तीर्थ अर्थात् प्रवचन कहते हैं। प्रवचन के धारक होने के कारण चतुर्विध संघ को भी तीर्थ कहते हैं। उस तीर्थ की स्थापना करने वाले को 'तीर्थकर' कहते हैं।

स्वयं संबुद्ध - बिना किसी के उपदेश के स्वयं बोध को प्राप्त होने वाले।

पुरुषोत्तम - संसार के सभी पुरुषों में अतिशयादि से उन्नत उत्तमोत्तम।

पुरुषसिंह - सिंह उत्कृष्ट शौर्यवान माना जाता है, उसी प्रकार पुरुषों में शौर्यादि गुणों में सिंह के समान।

पुरुषवर पुण्डरीक - जिस प्रकार पुण्डरीक कमल हजार पंखुड़ियों वाला निर्मल श्वेत रंग का श्रेष्ठ पुष्प होता है, उसी प्रकार सभी प्रकार के अशुभ मल से रहित और सभी शुभभावों-निर्मलताओं से युक्त।

पुरुषवर गंधहस्ती - हाथियों में गंधहस्ती ऐसा होता है कि जिसकी गंध से दूसरे सभी हाथी भाग जाते हैं, उसी प्रकार गंध हस्ती की तरह श्रेष्ठ पुरुष, जिनके विहार क्षेत्र के ईति-धान्यादि की फसलों को हानि पहुँचाने वाले चूहे टीढ़ आदि, भीति-परचक्र भय, दुर्भिक्ष दुष्काल, लूटपाट आदि और महामरी, महारोग आदि व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं। गंध हस्ती की गंध से दूसरे हाथी मद रहित हो जाते हैं। इसी प्रकार जो अन्यतीर्थक भगवान् के साथ चर्चा करने के लिए आते हैं, भगवान् को देखते ही उनका अभिमान नष्ट हो जाता है और वे भगवान् के भक्त बन जाते हैं।

लोकोत्तम - लोक के सभी प्राणियों में परम उत्तम।

लोकनाथ - 'योग' क्षेम कृन्नाथः अप्राप्तस्य प्रापणयोगः प्राप्तस्य रक्षणं क्षेमः ॥

अर्थ - जो सम्यग्-दर्शन (समकित) आदि गुण प्राप्त नहीं हुए उन्हें प्राप्त करवाना योग कहलाता है। प्राप्त हुए सम्यग्-दर्शन आदि गुणों की रक्षा करना एवं उन्हें निरतिचार पालन करवाना क्षेम कहलाता है। इस प्रकार योग और क्षेम करने वाले को 'नाथ' कहते हैं। संसार के समस्त प्राणियों के नाथ अर्थात् अनार्थों को नाथ बनाने वाले।

लोकहितंकर - लोक का हित करने वाले, लोक के जीवों को शाश्वत सुख प्राप्त करवाने में उत्कृष्ट सहायक।

लोक प्रदीप - जीवों के हृदय में भरे हुए अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर कर ज्ञान का दीपक प्रकटाने वाले उत्तम प्रदीप।

लोक प्रद्योतकर - सूर्य के समान। समस्त लोक और अलोक के स्वरूप को प्रकाशित करने वाले। जीव अजीव आदि तत्त्वों के भेद प्रभेद के रहस्य को प्रकट करने वाले।

अभयदाता - किसी को भय नहीं देने वाले और सभी जीवों के भय को दूर करने वाली अहिंसा-अभया के धारक, प्रसारक। निर्भयता प्रदायक।

चक्षुदाता - श्रुतज्ञान रूपी चक्षु प्रदान करके हेय ज्ञेय और उपादेय को जानने की दृष्टि खोलने वाले। जिस प्रकार किसी धनिक को भयानक अटवी में डाकुओं ने लूटकर आंखों पर पट्टी बांधकर धकेल दिया हो और वह अन्धे की तरह इधर उधर भटक रहा हो, उस समय कोई उपकारी पुरुष उसके आंखों की पट्टी खोलकर रास्ते पर लगावे और इच्छित स्थान पर पहुँचा दे, तो वह उपकारी माना जाता है, उसी प्रकार संसार रूपी भयानक अटवी में भटकते हुए जीवों को ज्ञानरूपी चक्षु प्रदान कर मोक्षरूपी परम सुखमय स्थान को प्राप्त कराने वाले।

मार्गदाता - मोक्षरूपी महानगर को प्राप्त करने के ज्ञानादि मार्ग को बताने वाले।

शरणदाता - शरण के देने वाले अर्थात् अनेक प्रकार के रोग, शोक, जन्म, मरण और उपद्रव रूपी दुःख से भरे हुए संसार से भव्य प्राणियों को निरुपद्रव एकान्त शाश्वत सुख के स्थान को प्राप्त कराने वाले।

जीवनदाता - जन्ममरण के दुःख से दूर कर शाश्वत अखण्ड जीवन प्रदान करने वाले।

बोधिदाता - बोधि अर्थात् सम्यक्त्व रत्न के दाता।

धर्मदाता - श्रुत चारित्र रूपी धर्म के दाता।

धर्मदेशक - श्रुत और चारित्र रूपी धर्म का उपदेश देने वाले।

धर्म नायक (नेता) - धर्म रूप संघ एवं तीर्थ के नायक।

धर्म सारथि - धर्मरूपी रथ के चालक। धर्मरूपी रथ में बैठकर मोक्षनगर की ओर जाने वाले भव्यात्माओं को और धर्म रथ को रक्षापूर्वक आगे बढ़ाने वाले-कुशल सारथि।

धर्मवर चातुरंत चक्रवर्ती - जिस प्रकार तीन ओर समुद्र और एक ओर हिमाचल पर्वत पर्यन्त पृथ्वी का स्वामी 'चातुरंत चक्रवर्ती' कहलाता है, उसी प्रकार लोक में भगवान् धर्म के चातुरन्त चक्रवर्ती-एक छत्र स्वामी हैं। अन्य प्रवर्तकों से अत्यधिक श्रेष्ठ धर्मशासक। अथवा-चतुर्गतिरूप संसार का अंत करने वाले धर्मचक्रवर्ती।

द्वीप-त्राण-सरण-गतिप्रतिष्ठारूप - संसार रूप समुद्र में डूबते हुए जीवों के लिए द्वीप के समान आधारभूत, रक्षक, शरणप्रद, उत्तमगति और प्रतिष्ठा रूप।

अप्रतिहत-वर-ज्ञान-दर्शनधर - दिवाल पर्वत आदि किसी भी प्रकार की ओट से नहीं रुकने वाले, विशुद्ध, अविसंवादी, क्षायक एवं प्रधान केवलज्ञान और केवलदर्शन के धारक।

व्यावृत्त छद्म - जिनकी छद्मस्थता-ज्ञान का आवरण नष्ट हो गया, जो सर्वज्ञ सर्वदर्शी हैं।

जिन - राग द्वेष रूपी शत्रुओं को जीतकर विजयी हुए।

जापक - दूसरों को जिन बनाने वाले।

तिरक - संसार समुद्र से तिर गये।
 तारक - भव्य जीवों को संसार समुद्र से तिरा कर पार पहुँचाने वाले।
 बुद्ध - जीवादि तत्त्वों को संपूर्ण रूप से जानने वाले।
 बोधक - भव्य जीवों को तत्त्व का बोध देने वाले।
 मुक्त - बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह से मुक्त अथवा संसार के मूल ऐसे मोहनीय आदि घातिकर्म से मुक्त।

मोचक - भव्य जीवों को मुक्त कराने वाले।

सर्वज्ञ सर्वदर्शी - समस्त पदार्थों, उनकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवस्थाओं-भूत भविष्य और वर्तमान की सभी अनन्तानन्त पर्यायों को विस्तार से और सामान्यरूप से जानने वाले।

शिव-सभी प्रकार के उपद्रवों से रहित, अचल-स्थिर नीरोग, अनन्त, अक्षय अव्याबाध (बाधा पीड़ा से रहित) अपुनरावर्तित (जहाँ से फिर आना नहीं होता ऐसे) सिद्धिगति नाम वाले स्थान को प्राप्त (शुद्धात्मा) को नमस्कार हो।

भावार्थ - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी - जो कि आदिकर, तीर्थङ्कर यावत् सिद्धिगति नाम वाले स्थान को पाने के इच्छुक-भावी सिद्ध हैं, मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक हैं उन्हें नमस्कार हो।

यहाँ पर स्थित मैं वहाँ पर स्थित भगवान् की वन्दना नमस्कार करता हूँ। वहाँ पर स्थित भगवान् यहाँ पर स्थित मुझे देखें।

इस प्रकार वह कोणिक राजा वन्दना-नमस्कार करता है।

वंदिता णमंसित्ता सीहासण-वर-गए पुरत्थाभिमुहे णिसीयइ। णिसीइत्ता तस्स पवित्तिवाउयस्स अडुत्तर सयसहस्सं पीइदाणं दलयइ। दलइत्ता सक्कारेइ सम्माणेइ। सब्कारित्ता सम्माणित्ता एवं वयासी-‘जया णं देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे इहमागच्छेज्जा-इह समोसरिज्जा, इहेव चंपाए णयरी बहिया पुण्णभदे चेइए अह्मपडिरूवं उगहं उग्गिणिहत्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावमाणे विहरेज्जा, तथा णं मम एयमट्ठं णिवेदिज्जासि - त्तिकट्टु विसज्जिए।

भावार्थ - वह वन्दना-नमस्कार करके, पूर्व की ओर मुख रखकर सिंहासन पर बैठा। उस प्रवृत्ति-निवेदक को एक लाख आठ हजार रजतमुद्रा का प्रीतिदान दिया, श्रेष्ठ वस्त्रादि से सत्कार किया, आदर-सूचक वचनों से सन्मान किया। पुनः इस प्रकार बोला-‘हे देवानुप्रिय! जब श्रमण भगवान् महावीर यहाँ आवें-यहाँ समवसरें, इस चम्पा नगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य में संयमियों के योग्य आवासस्थान को ग्रहण करके, संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरें, तब यह सूचना मुझे देना।’

इस प्रकार कह कर उस प्रवृत्ति-निवेदक को विसर्जित किया।

भगवान् का आगमन

१३- तए णं समणे भगवं महावीरे कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुलुप्पल-कमल-कोमलु-म्मिलियम्मि अह पंडुरे पहाए-रत्तासोगप्पगास किंसुय-सुयमुह-गुंजद्ध-राग-सरिसे कमलागर-संडे-बोहए उट्टियम्मि सूरे सहस्सरस्सिमि दिणयरे तेयसा जलंते, जेणेव चंपा णयरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवा-गच्छइ उवागच्छित्ता अहा-पडिरूवं उगहं उगिगणिहत्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

भावार्थ - तब श्रमण भगवान् महावीर स्वामी फैलते हुए प्रकाश से बिदाई लेती हुई रात्रि में-ऊषाकाल में फूलते हुए पत्तों की कोमल पंखुरियाँ और हरिणों की सुकुमार आँखें खुल रही थीं-ऐसे उजले प्रभात में, लाल अशोक के समान प्रभाव वाले, पलाश-खांखरे के फूल, शुक की चोंच और गुंजाफल के आधे भाग की लाली के समान अरुण-लाल कमलाकरों-जलाशयों के कमल वन के चेतना-प्रदायक, हजार किरणों वाले दिन के स्रष्टा, तेज से ज्वाज्वल्यमान सूर्य के उदय होने पर, जहाँ चम्पा नगरी थी-जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ पधारे। पधारकर संयम मार्ग के अनुकूल आवास को ग्रहण करके, संयम और तप से आत्मा को प्रभावित करते हुए विचरने लगे।

भगवान् के अन्तेवासी

१४- तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अन्तेवासी बहवे समणा भगवंतो, अप्पेगइया उगपव्वइया भोगपव्वइया राइण्णपव्वइया णायपव्वइया कोरव्वपव्वइया खत्तियपव्वइया, भडा- जोहा सेणावई पसत्थारो सेट्ठी इब्भा अण्णे य बहवे एवमाइणो, उत्तम-जाइ-कुल-रूव-विणय-विण्णाण-वण्ण-लावण्ण-विक्कम-पहाण-सोहग्ग-कंति-जुत्ता बहु-धण धण्ण-णिच्चय-परियाल-फिडिआ णरवइ-गुणाइरेगा इच्छिय भोगा सुह-संपललिया, किंपाग-फलोवमं च मुणिय विसयसोक्खं, जलबुब्बुय-समाणं कुसग्ग जलबिंदु-चंचल जीवियं च णारुण, अब्हुवमिणं रयमिव पडग्गलगं संविधुणित्ता णं चइत्ता हिरण्णं जाव पव्वइया अप्पेगइया अब्हुमास-परियाया अप्पे-गइया मासपरियाया एवं दुमास-तिमास.....जाव -एक्कारस-मास-परियाया अप्पेगइया वासपरियाया दुवास.....तिवास-परियाया, अप्पेगइया अणेगवास-परियाया, संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

भावार्थ - उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के अन्तेवासी-शिष्य बहुत-से श्रमण भगवन्त संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे। उनमें से कई उग्रवंश वाले प्रव्रजित-दीक्षित हुए थे, तो कई भोगवंश वाले, राजन्यवंश वाले, ज्ञात या नागवंश वाले, कुरुवंश वाले और क्षत्रियवंश वाले दीक्षित हुए थे। भट, योद्धा, सेनापति, धर्मनीति-शिक्षक, श्रेष्ठ-स्वर्णपट्टाङ्कित धनिक इभ्य-हस्ति ढंका जाय इतनी धन राशि वाले धनिक और ऐसे ही और भी बहुत से जन-जिनकी जाति- मातृपक्ष और कुल-पितृपक्ष उत्तम थे, जिनका रूप शरीर का आकार, विनय, विज्ञान, वर्ण-काया की छाया, लावण्य, विक्रम, सौभाग्य और कान्ति अत्युत्तम थी, जो विपुल धन-धान्य के संग्रह और परिवार से विकसित (खुशहाल) थे, जिनके यहाँ राजा से प्राप्त पांचों इन्द्रियों के सुख का अतिरेक था, अतः इच्छित भोग भोगते थे और जो सुख से क्रीड़ा करने में मस्त थे-वे विषयसुख को विषवृक्ष-किंपाक के फल के समान समझकर और जीवन को पानी के बुदबुदे के समान तथा कुश के अग्रभाग पर स्थित जलबिन्दु के समान चञ्चल-क्षणिक जानकर इन ऐश्वर्य आदि अध्रुव पदार्थों को कपड़े पर लगी हुई रज के समान झाड़कर-विपुल रूपा, सुवर्ण-घड़ा हुआ सोना, धन-गौ आदि, धान्य, बल चतुरंग सैन्य, वाहन, कोश, कोष्ठागार, राज्य, राष्ट्र, पुर, अन्तःपुर धन-गणिमादि चार तरह के पदार्थ, कनक-बिना घड़ा हुआ सोना, रत्न-कर्केतन आदि, मणि-चन्द्रकान्त आदि, मौक्तिक, शंख शिलाप्रवाल=विद्रुम-मूंगे, पद्मराग आदि पदार्थों को छोड़कर-दीक्षित बन गये। कई को दीक्षित हुए आधा महीना ही हुआ था, कई को महीने, दो महीने, तीन महीने यावत् ग्यारह महीने, एक वर्ष, दो वर्ष और तीन वर्ष हुए थे तो कई को अनेक वर्ष हो गये थे।

विवेचन - '.....चइत्ता हिरण्णं जाव पव्वइया.....' इस सूत्रांश में स्थित 'जाव' शब्द से निम्न लिखित पद संगृहीत किये गये हैं - "चिच्चा सुव्वण्णं चिच्चा धणं एवं धण्णं बलं वाहणं कोसं कोट्टागारं रज्जं रुद्धं पुरं अंतेउरं, चिच्चा विपुल-धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिअ-संख-सिलप्पवाल-रत्तरयण माईयं संत-सारसावतेज्जं विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता, दाणं च दाइयाणं परिभायइत्ता, मुण्डा भवित्ता, अगाराओ अणगारियं-"

इनमें से कुछ पदों के अर्थ ऊपर दिये जा चुके हैं। कुछ पदों के अर्थ निम्नलिखित हैं - '.....विद्यमान प्रधान द्रव्य को विशेष रूप से छोड़ कर या वमन के समान करके, खुला छोड़कर के या अपना स्वामित्व हटाकर-प्रकट करके या अपने कुटुम्बियों आदि देने योग्य व्यक्तियों को देकर-बांटकर और मुण्ड होकर, अगारी से अनगारं बने थे।'

'विच्छड्डइत्ता' पद से विषयभोगों की तरफ तीव्र अरुचि का भाव 'विगोवइत्ता' पद से धन-धान्यादि के प्रति निर्ममत्व का भाव और 'परिभायइत्ता' पद से उदारता एवं करुणा का भाव दर्शित होता है।

निर्ग्रन्थों की ऋद्धि

भगवान् के साथ जो श्रमण थे, वे कैसे थे, सो उनका वर्णन किया जाता है -

१५- तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे णिगंथा भगवंतो।

भावार्थ - उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर के अन्तेवासी बहुत-से निर्ग्रन्थ=बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह से रहित भगवान् के साथ में थे।

अप्येगइया आभिणिबोहियणाणी जाव केवलणाणी

भावार्थ - जिनमें कई आभिनिबोधिकज्ञानी-इन्द्रियों और मन के द्वारा, योग्य देश में स्थित पदार्थों को जानने वाले यावत् केवलज्ञानी=आत्मप्रदेशों से सम्पूर्ण द्रव्यों और उनकी तीनों काल की समस्त अवस्थाओं को जानने वाले थे।

विवेचन - 'जाव' शब्द से 'सुयणाणी ओहिणाणी मणपज्जवणाणी' पदों का संग्रह किया गया है। वे श्रुतज्ञानी-अंगादि सिद्धान्तों के ज्ञाता, अवधिज्ञानी-मन और इन्द्रियों की सहायता के बिना आत्मा से ही रूपी पदार्थों के ज्ञाता और मनःपर्यवज्ञानी-मन की अवस्थाओं से मनः चिन्तित बातों के ज्ञाता थे। अर्थात् कई दो ज्ञान के (मतिज्ञान और श्रुतज्ञान के) धारक थे, तो कई तीन ज्ञान- (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान या मनःपर्यवज्ञान के) चार ज्ञान- (मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान) के और एक ज्ञान-केवलज्ञान के धारक थे।

अप्येगइया मणबलिया वयबलिया कायबलिया णाणबलिया दंसणबलिया चारित्तबलिया।

- कई मनोबली-मन की स्थिरता के धारक, वचनबली= प्रतिज्ञात अर्थ=कहे हुए आशय का निर्वाह करने वाले या परपक्ष को क्षोभकारी वचनशक्ति के धारक और कायबली=भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी आदि परीषह के सहने में ग्लानि से रहित रहने की कायिक शक्ति के धारक थे। कई ज्ञान बली दर्शनबली और चारित्रबली के धारक थे।

अप्येगइया मणेणं सावाणुग्गह समत्था, वएणं सावाणुग्गह समत्था, काएणं सावाणुग्गह समत्था।

- कई मन से शाप-अपकार और अनुग्रह-उपकार करने में समर्थ थे। कई वचन से शाप और कृपा करने में समर्थ थे और कई काया से शाप और कृपा करने में समर्थ थे।

अप्येगइया खेलोसहि-पत्ता।

- कई खेलौषधि-खेंकार से ही सभी रोगादि मिटाने की शक्ति को पाये हुए थे।

एवं जल्लोसहिपत्ता विप्योसहिपत्ता आमोसहिपत्ता सब्वोसहिपत्ता।

- इसी प्रकार जल्लौषधि-शरीर के मैल से रोग आदि अनर्थ उपशान्त करने की शक्ति, विप्रुडौषधि-मूत्रादि की बूंदों रूप औषधि अथवा वि का अर्थ विष्ठा और प्र का अर्थ प्रश्रवण-मूत्र है, ये दोनों औषधिरूप, आमर्ष-हस्तादि स्पर्श औषधि, सर्वौषधि- केश, नख, रोम, मल आदि सभी का औषधि रूप बन जाना-लब्धि को प्राप्त थे।

अप्येगइया कोट्टुबुद्धी एवं बीयबुद्धी पडबुद्धी।

- कई कोष्ठबुद्धि वाले-कोठार में भरे हुए सुरक्षित धान्य की तरह प्राप्त हुए सूत्रार्थ को धारण करने में समर्थ मति वाले थे। इसी प्रकार बीजबुद्धि वाले-बीज के समान विस्तृत और विविध अर्थ के महावृक्ष को उपजाने वाली बुद्धि के धारक और पटबुद्धि वाले-वस्त्र में संगृहीत पुष्प-फल के समान, विशिष्ट वक्ताओं द्वारा कथित प्रभुत सूत्रार्थ का संग्रह करने में समर्थ बुद्धि वाले थे।

अप्येगइया पयाणुसारी। अप्येगइया संभिण्णसोआ।

- कई पदानुसारी-सूत्र के एक ही पद के ज्ञात होने पर, उस सूत्र के अनुकूल सैकड़ों पदों का स्मरण कर लेने की-जान लेने की शक्ति के स्वामी थे। कई संभिन्न श्रोता=बहुत-से भिन्न-भिन्न जाति के शब्दों को, अलग-अलग रूप से, एक साथ श्रवण करने की शक्ति वाले या सभी इन्द्रियों के द्वारा शब्दादि पांचों विषयों को ग्रहण करने की शक्ति वाले अर्थात् किसी भी एक इन्द्रिय से पांचों विषयों को ग्रहण करने की शक्ति वाले थे।

अप्येगइया खीरासवा। अप्येगइया महुआसवा। अप्येगइया सप्पिआसवा।

अप्येगइया अक्खीण-महाणसिया।

- कई क्षीरास्रव-श्रोताओं के लिये दूध के समान मधुर, कान और मन को सुखकर वचन शक्ति वाले थे। कई मधु-आस्रव-मधु के समान सभी दोषों को मिटाने में निमित्त रूप और प्रसन्नकारक वाचिक शक्ति वाले थे। कई सर्पिराश्रव-घी के समान अपने विषय में श्रोताओं का स्नेह सम्पादित करने की वाचिक शक्ति वाले थे। कई अक्षीणमहानसिक-प्राप्त अन्न को जहाँ तक स्वयं न खा ले, वहाँ तक सैकड़ों-हजारों को देने पर भी वह अन्न समाप्त न हो, ऐसी लब्धि के धारक थे।

एवं उज्जुमई। अप्येगइया विउलमई।

- इसी प्रकार ऋजुमति-मात्र सामान्य रूप से मन की ग्राहिका शक्तिवाले थे। कई विपुलमति-विशेषता सहित चिन्तित द्रव्य को जानने की शक्ति वाले थे।

विवेचन - ये दोनों मनःपर्यायज्ञानी के भेद हैं। ऋजुमति ढाई अंगुल कम मनुष्य क्षेत्र में स्थित संज्ञी जीवों के मन को सामान्य रूप से जानते हैं और विपुलमति सम्पूर्ण मनुष्य क्षेत्र में स्थित संज्ञी

जीवों के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से विशेषता सहित चिन्तक मन को जानते हैं अथवा मनः चिन्तित द्रव्य को विशेषता सहित जानते हैं।

विउव्वणिड्ढिपत्ता चारणा विज्जाहरा आगा-साइवाइणो ।

- कई विकुर्वणऋद्धि—नाना भांति के रूप बनाने की शक्ति से सम्पन्न थे। कई चारण-गति सम्बन्धी ऋद्धिवाले, विद्याधर-प्रज्ञप्ति आदि विद्याओं के धारक, आकाशातिपाती—गगन गामिनी शक्ति वाले थे।

विवेचन - चारण लब्धि दो प्रकार की है—जंघाचारण और विद्याचारण। जंघाचारण-अष्टम=तेला-अष्टम की तपश्चर्या करने वाले मुनि को यह लब्धि उत्पन्न होती है। जिससे जंघा से सम्बन्धित किसी एक व्यापार के द्वारा एक उड़ान में तेरहवें रुचकवर नामक द्वीप तक और मेरु पर्वत पर जा सकते हैं और वहाँ से आने में दो उड़ान लगानी पड़ती है। विद्याचारण लब्धि-षष्ठ=दो दिन के उपवास षष्ठ की तपश्चर्या करने वाले मुनि को पैदा होती है। जिससे श्रुत-विहित ईषत् उपष्टंभ-अवलम्बन से दो उड़ान के द्वारा आठवें नन्दीश्वर द्वीप तक और मेरु पर्वत पर जाने में समर्थ होते हैं और वहाँ से वापिस एक ही उड़ान में आ सकते हैं।

'आगासाइवाइणो' की संस्कृतच्छाया दो तरह से बनती है- 'आकाशातिपातिनः' और 'आकाशादिवादिनः।' आकाशातिपाती-विद्या या पादलेप के प्रभाव से आकाश में गमन करने वाले अथवा आकाश से रजत आदि इष्ट या ओले आदि अनिष्ट वर्षा करने की शक्ति वाले। आकाशादिवादी-आकाश आदि अमूर्त पदार्थों के साधने में समर्थ वादी।

निर्ग्रन्थों का तप

अप्पेगइया कणगावलिं तवोकम्मं पडिवण्णा । एवं एकावलिं ।

भावार्थ - कई कनकावली तप कर्म और इसी प्रकार एकावली तप करने वाले थे।

विवेचन - कनकावली तप - स्वर्ण मणियों के भूषण विशेष के आकार की कल्पना से किया गया तप। इस तप में क्रमशः चतुर्थ-उपवास, षष्ठ-दो दिन के उपवास और अष्टम-तीन दिन के उपवास करते हैं। फिर चार-चार की दो पंक्तियों के रूप में या चार रेखाओं से नव कोष्ठक में बीच के कोष्ठक खाली रखते हुए आठ अष्टम। इसके बाद चतुर्थ से लगाकर दो-दो भक्त की वृद्धि करते हुए क्रमशः चौतीस भक्त—सोलह दिन के उपवास तक चढ़ना। हार के मध्य भाग की कल्पना के रूप में २, ३, ४, ५, ६, ५, ४, ३, २ या आठ और छह रेखाओं से निर्मित पैंतीस कोष्ठकों को, मध्य के कोष्ठक को खाली रखते हुए चौतीस अष्टमों की स्थापना। फिर चौतीस भक्त से क्रमशः दो-दो भक्त कम करते हुए चतुर्थ तक करना। इसके बाद पूर्ववत् आठ अष्टम और क्रमशः अष्टम, षष्ठ और चतुर्थ। यह एक परिपाटी। पूरे तप में ऐसी चार परिपाटी की जाती है।

एक परिपाटी, १ वर्ष, ५ महीने और १२ दिन में पूरी होती है।

चार परिपाटी, ५ वर्ष, ९ महीने और १८ दिन में पूरी होती है।

पहली परिपाटी में पारणे में विकृति-दूध आदि लिये जा सकते हैं। दूसरी में विकृति का त्याग। तीसरी में लेप का त्याग। चौथी में आयंबिल।

एकावली तप - क्रमशः चतुर्थ, षष्ठ और अष्टम। आठ चतुर्थ। चतुर्थ से लगाकर चौतीस भक्त तक क्रमशः चढ़ना। चौतीस चतुर्थ भक्त। चौतीस भक्त से क्रमशः चतुर्थ तक उतरना। आठ चतुर्थ। फिर क्रमशः अष्टम, षष्ठ और चतुर्थ।

एक परिपाटी का काल - १ वर्ष, २ महीने और २ दिन।

चार परिपाटियों का काल - ४ वर्ष, ८ महीने और ८ दिन।

पारणे में पूर्ववत्।

नोट - श्रेणिक राजा की काली, महाकाली, सुकाली आदि महारानियों ने ये कनकावली आदि तप किये थे। इनका विशेष विवरण अन्तगड़ सूत्र में हैं। जिज्ञासुओं को वहाँ देखना चाहिये।

खुडुग-सीह-णिक्कीलियं तवोकम्मं पडिवण्णा। अप्पेगइया महालयं सीह-णिक्कीलियं तवोकम्मं पडिवण्णा।

भावार्थ - कई लघुसिंह निष्क्रीडित तपःकर्म के करने वाले और कई महासिंह निष्क्रीडित तपःकर्म के करने वाले थे।

विवेचन - जिस प्रकार सिंह, गमन करते हुए, पीछे छोड़े हुए प्रदेश को मुड़कर देखता जाता है, उसी प्रकार किये हुए तप को आगे बढ़कर पुनः करना, सिंहनिष्क्रीडित नाम का तपःकर्म कहा जाता है। इसके क्षुल्लक-लघु और महा ये दो भेद हैं।

लघुसिंहनिष्क्रीडित तप - चतुर्थ, षष्ठ-चतुर्थ, अष्टम-षष्ठ, दशम-चार दिन के उपवास-अष्टम, द्वादश-दशम, चतुर्दश-द्वादश, षोडश-चतुर्दश, अष्टादश-षोडश, विंशतितम=९ दिन के उपवास-अष्टादश और विंशतितम। एवं षोडश=७ दिन के उपवास— अष्टादश-आठ दिन के उपवास, चतुर्दश-षोडश, द्वादश-चतुर्दश, दशम-द्वादश, अष्टम-दशम, षष्ठ-अष्टम, चतुर्थ-षष्ठ और चतुर्थ। यह एक परिपाटी। ऐसी चार परिपाटियाँ करने पर यह तप पूरा होता है।

एक परिपाटी का काल-६ महीने और ७ दिन।

चार परिपाटियों का काल-२ वर्ष और २८ दिन।

पहली परिपाटी में पारणे के दिन (विकृति घी, दूध, दही, तेल और मीठा) ले सकते हैं। दूसरी परिपाटी के पारणों में विकृति का त्याग कर देते हैं। तीसरी परिपाटी के पारणों में विकृति के लेप का भी त्याग कर देते हैं और चौथी परिपाटी के पारणों में आयंबिल-रांधा हुआ या भुना हुआ अचित्त अन्न, पानी में भिगोकर, मात्र एक समय खाना-करते हैं।

महासिंहनिष्क्रीडित तप - एक दिन का उपवास, दो दिन और एक दिन का उपवास, इसी प्रकार क्रमशः सोलह दिन और पन्द्रह दिन के उपवास और सोलह दिन के उपवास-चतुस्त्रिंशत्तम एवं तीस भक्त-बत्तीस भक्त—१४ और १५ दिन के उपवास इसी प्रकार क्रमशः चतुर्थ-षष्ठ और चतुर्थ तक उतरना।

एक परिपाटी का काल - १ वर्ष ६ महीने और १८ दिन।

चार परिपाटियों का काल - ६ वर्ष २ महीने और १२ दिन।

पारणक-विधि पूर्ववत्।

भद्रपडिमं महाभद्रपडिमं सव्वओभद्रपडिमं आयंबिलवद्धमाणं तवोकम्मं पडिवण्णा।

भावार्थ - कई अनगार भद्रप्रतिमा, महा भद्रप्रतिमा, सर्वतोभद्रप्रतिमा और आयम्बिल-वद्धमान तप कर्म करने वाले थे।

विवेचन - भद्रप्रतिमा - पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा में मुख रखकर, क्रमशः प्रत्येक दिशा में चार-चार पहर तक ध्यान करना। यह प्रतिमा-अभिग्रह विशेष रूप प्रतिज्ञा दो दिन की है।

महाभद्र प्रतिमा - इसमें क्रमशः प्रत्येक दिशा में एक-एक अहोरात्रि तक, कुल चार अहोरात्रि तक कायोत्सर्ग किया जाता है।

सर्वतोभद्र प्रतिमा - इस प्रतिमा की दो विधियाँ हैं - १. क्रमशः दश दिशाओं में मुख करके, एक-एक अहोरात्रि तक-कुल दश अहोरात्रि तक-कायोत्सर्ग करना २. दूसरी विधि के अनुसार इस प्रतिमा के दो भेद हैं - लघु और महा।

लघुसर्वतोभद्र प्रतिमा - (जिस स्थापना में चारों ओर से अंकों की गिनती करने पर जोड़ बराबर आये उसे सर्वतोभद्र कहते हैं।) इस तप में क्रमशः चतुर्थ से लगाकर द्वादशम-पांच दिन के उपवास तक चढ़ते हैं। फिर मध्य के कोष्ठक में आये हुए अङ्क को आदि में रखकर, शेष चार पंक्तियाँ पूरी की जाती हैं।

एक परिपाटी का कालमान-७५ दिन तपश्चर्या और २५ पारणक। तीन महीने १० दिन।

चार परिपाटियों का कालमान- १ वर्ष, १ महीना और १० दिन।

पारणक विधि पूर्ववत्।

महासर्वतोभद्र प्रतिमा - क्रमशः ७ अङ्क तक की तपश्चर्या। मध्य कोष्ठक गत अङ्क को आदि में रख कर, अगली-अगली पङ्क्तियों का निर्माण।

एक परिपाटी का कालमान - ८ महीने और ५ दिन।

चारों परिपाटियों का कालमान - २ वर्ष, ८ महीने, २० दिन।

आयम्बिल वद्धमान - जिसमें रांधा हुआ या भुना हुआ अचित्त अन्न, पानी में भिगो कर एक बार खाया जाता है, उसे आयम्बिल नामक तप कहा जाता है। इस तप की विधि इस प्रकार है - एक

आयम्बिल इसके बाद एक चतुर्थ-उपवास। दो आयम्बिल, चतुर्थ। इस प्रकार क्रमशः एक-एक आयम्बिल को बढ़ाते हुए सौ आयम्बिल तक पहुँचना। आयम्बिल के बीच उपवास करने से एक सौ उपवास हो जाते हैं। इस प्रकार इस तप में ५०-५० आयम्बिल और १०० उपवास होते हैं। कुल १४ वर्ष, ३ महीने और २० दिन में यह तप पूरा होता है।

मासियं भिक्खुपडिमं, एवं दोमासियं पडिमं, तिमासियं। भिक्खुपडिमं, जाव सत्तमासियं भिक्खु-पडिमं पडिवण्णा ॥

भावार्थ - कई निर्ग्रन्थ मासिकी भिक्षुप्रतिमा (एक महीने की साधु की प्रतिज्ञा विशेष) इसी प्रकार द्विमासिकी, त्रिमासिकी यावत् सप्तमासिकी भिक्षुप्रतिमा के धारक थे। ये सातों प्रतिमायें एक-एक मास की होती हैं। सिर्फ नाम द्विमासिकी, त्रिमासिकी दिया गया है।

विवेचन - मासिकी भिक्षु प्रतिमा - एक महीने तक एक दत्ति आहार और एक दत्ति पानी ग्रहण करने की प्रतिज्ञा।

इसी प्रकार द्विमासिकी से सप्तमासिकी भिक्षुप्रतिमा में क्रमशः २, ३, ४, ५, ६ और ७ दत्ति आहार और ७ दत्ति पानी की ग्रहण करने की प्रतिज्ञा की जाती है। अर्थात् इतनी दत्ति तक आहार पानी लिया जा सकता है। किन्तु इतने दत्ति से कम ले तो कोई बाधा नहीं है।

अप्येगइया पढमं सत्त-राइंदियं भिक्खुपडिमं पडिवण्णा, जाव तच्चं सत्त-राइंदियं भिक्खुपडिमं पडिवण्णा।

भावार्थ - कई निर्ग्रन्थ प्रथम सप्त रात्रिन्दिवा भिक्षुप्रतिमा के धारक थे, यावत् तीसरी सप्त रात्रिन्दिवा भिक्षुप्रतिमा के धारक थे।

विवेचन - आठवीं, नववीं और दसवीं इन तीन प्रतिमाओं का कालमान सात-सात दिन का है। अतः क्रमशः प्रथमा, द्वितीया और तृतीया उनकी नाम संज्ञा दी गई है।

प्रथमा सप्त राइन्दिवा भिक्षु प्रतिमा - सात दिन तक एकान्तर उपवास। उपवास में चारों आहार का त्याग करना और ये तीन प्रकार के आसन करना। यथा उत्तानक-चित्त लेटना या पार्श्वशायी-बगल से लेटना या निषद्योपगत होकर-पालठी लगाकर ग्रामादि से बाहर रहना।

द्वितीया सप्त रात्रिन्दिवा भिक्षु प्रतिमा - सात दिन तक एकान्तर उपवास तप करना और ये तीन प्रकार के आसन करना- उत्कुरुक-दोनों पञ्जों के बल, घुटने खड़े रख कर बैठना या लगण्डशायी-सिर्फ सिर और एडियों का ही पृथ्वी पर स्पर्श हो, इस प्रकार पीठ के बल लेटना या दण्डायत (सीधे डण्डे की तरह लेटना) होकर ग्रामादि से बाहर रहना।

तृतीया सप्त रात्रिन्दिवा भिक्षु प्रतिमा - सात दिन तक एकान्तर उपवास तप करना और ये तीन प्रकार के आसन करना- ग्रामादि से बाहर गोदूहासन-गाय दूहने की स्थिति में बैठना या वीरासन-वीर पुरुष के बैठने के ढंग से बैठना अर्थात् कुर्सी पर बैठे हुए पुरुष के नीचे से कुर्सी निकाल लेने पर जो

स्थिति होती है उस आसन से बैठना या आम्रकुब्जासन (आम्रफल वत् वक्राकार स्थिति में बैठना) से रहना।

अहोराइंदियं (राइंदियं) भिक्खुपडिमं पडिवण्णा, इक्कराइंदियं (एगराइयं) भिक्खु-पडिमं पडिवण्णा ।

भावार्थ - कई निर्ग्रन्थ एक रात और एक दिन की भिक्षु प्रतिमा के धारक थे और कई एक रात की भिक्षु प्रतिमा के धारक थे।

विवेचन - अहोरात्रिकी भिक्षु प्रतिमा - इस प्रतिमा में चौविहार षष्ठोपवास—दो दिन के उपवास किया जाता है। इस प्रतिमा का आराधक गांव के बाहर रहकर इसकी आराधना करता है और प्रलम्बभुज—दोनों हाथों को लटकते हुए स्थिर रखना—अवस्था में स्थित रहता है।

एक रात्रिकी भिक्षु प्रतिमा - इस प्रतिमा की आराधना चौविहार अष्टमभक्त—तीन दिन के उपवास के द्वारा की जाती है। इसका आराधक भी ग्रामादि के बाहर ही रहता है। जिनमुद्रा—दोनों पैरों के बीच चार अंगुल का अन्तर रखते हुए, सम अवस्था में खड़े रहना, प्रलम्बभुज—लटकते हुए स्थिर हाथ, अनिमिषनयन—पलके झपकाने से रहित स्थिति—एक टक, एक पुद्गल निरुद्धदृष्टि—किसी एक पुद्गल पर दृष्टि लगाना और कुछ झुके हुए शरीर से स्थित रहकर एक रात तक इसकी आराधना की जाती है।

विशिष्ट संहनन आदि से युक्त व्यक्ति ही इन प्रतिमाओं की आराधना कर सकता है। कहा है -

पडिवज्जइ एयाओ, संघयणाधिइजुओ महासत्तो।

पडिमाउ भावियप्पा, सम्मं गुरुणा अणुण्णाओ ॥

संहनन - शारीरिक बल और धृति—धैर्य—आत्मिकबल से युक्त महासत्त्वशाली—अतिशय पराक्रमी सम्यक् रूप से भावित आत्मा—संयम के संस्कारों से युक्त या संयम में तल्लीन शुद्ध आत्मा और गुरु के द्वारा अनुज्ञात—जिसे आज्ञा मिल गई हो या जिसे अधिकार प्राप्त हो ऐसा व्यक्ति इन प्रतिमाओं को स्वीकार करता है।

बारह भिक्षु प्रतिमा का विस्तृत वर्णन दशाश्रुतस्कन्ध की सातवीं दशा में है। ये बारह ही प्रतिमाएँ शेष काल के ८ महीनों में पूरी हो जाती हैं। पहली से लेकर सातवीं प्रतिमा तक सात महीने में पूरी हो जाती है, आठवीं पांच प्रतिमाएँ आठवें महीने में पूरी हो जाती हैं। सात-सात दिन की तीन प्रतिमाओं के इक्कीस दिन होते हैं, बाईसवें दिन पूर्व प्रतिमा के उपवास का पारणा कर तेईसवें और चौईसवें दिन बेला की तपस्या कर के ग्यारहवीं प्रतिमा का पालन किया जाता है, पच्चीसवें दिन बेले का पारणा करके छब्बीसवें, सत्ताईसवें और अट्ठाईसवें दिन तेला किया जाता है, उनतीसवें दिन तेले का पारणा करके बारह ही प्रतिमा पूर्ण कर दी जाती है। इस प्रकार मिकसर की एकम से प्रतिमाएँ प्रारम्भ करके आषाढी पूनम के पहले दिन पूर्ण कर दी जाती है और फिर चातुर्मास लग जाता है। चातुर्मास में ये भिक्षु प्रतिमाएँ अंगीकार नहीं की जाती है।

इन प्रतिमाओं को अंगीकार करने की योग्यता इस प्रकार बतलाई गई है यथा - वज्रऋषभ-नाराच संहनन, ऋषभ-नाराच संहनन, नाराच-संहनन ये तीन संहनन, बीस वर्ष की संयम पर्याय, २९ वर्ष की उम्र तथा जघन्य नववें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु का ज्ञान होना आवश्यक है, अनेक प्रकार की साधनाएँ और अभ्यास प्रतिमा धारण करने के पहले किए जाते हैं। उनमें उत्तीर्ण होने पर ही प्रतिमा धारण करने की आज्ञा दी जाती है। गोचरी के नियम भी बड़े कठिन हैं, इसलिए वर्तमान समय में इन भिक्षु प्रतिमाओं का आराधन नहीं किया जा सकता है अतएव अभी इनका विच्छेद माना गया है।

सत्त-सत्तमियं भिक्खुपडिमं, अट्ट-अट्टमियं भिक्खुपडिमं, णव-णवमियं भिक्खुपडिमं, दस-दसमियं भिक्खुपडिमं। खुडियं मोय-पडिमं पडिवण्णा। महल्लियं मोयपडिमं पडिवण्णा। जवमज्झं चंदपडिमं पडिवण्णा। वडूर (वज्ज) मज्झं चंदपडिमं पडिवण्णा।

भावार्थ - कई निर्ग्रन्थ सप्त-सप्तमिका भिक्षु प्रतिमा—सात-सात दिन के सात दिन-समूहों की साधु की प्रतिज्ञा, अष्ट-अष्टमिका—आठ-आठ दिन के आठ दिन समूहों की भिक्षु-प्रतिमा, नवनवमिका भिक्षुप्रतिमा, दशदशमिका भिक्षुप्रतिमा, क्षुल्लक मोक प्रतिमा के धारक, महामोक प्रतिमा के धारक, यव-मध्य-चन्द्र प्रतिमा के धारक और वज्र-मध्य चन्द्र प्रतिमा के धारक थे।

विवेचन - सप्त सप्तमिका भिक्षु प्रतिमा - यह ४९ दिन की प्रतिमा है। सात-सात दिन के सात सप्तक (वर्ग)। पहले सप्तक में पहले दिन एक-एक दत्ति अन्न-पानी एवं क्रमशः सातवें दिन सात-सात दत्ति अन्न-पानी के ग्रहण की प्रतिज्ञा। इसी प्रकार शेष छह सप्तकों में भी। अथवा पहले सप्तक में प्रति दिन एक-एक दत्ति अन्न-पानी एवं क्रमशः सातवें सप्तक में प्रति दिन सात-सात दत्ति अन्न-पानी के ग्रहण की प्रतिज्ञा। दूसरा विधान अन्तगड सूत्र के मूलपाठ के अनुसार है। इसी प्रकार आगे अष्टअष्टमिका, नवनवमिका और दशदशमिका में भी समझ लेना चाहिए।

इसी प्रकार अष्टअष्टमिका, नवनवमिका और दशदशमिका भिक्षु प्रतिमा में क्रमशः ८ अष्टक, ९ नवक और १० दशक में विभाजित ६४, ८१ और १०० दिन होते हैं। आहार-पानी की दत्तियों में पूर्ववत् वृद्धि की जाती है।

दूसरी वांचना में भद्रा, सुभद्रा, महाभद्रा, सर्वतोभद्रा और भद्रोत्तर प्रतिमा ऐसे नाम भी मिलते हैं।

लघुमोक प्रतिमा - प्रस्रवण सम्बन्धी अभिग्रह द्रव्य की अपेक्षा-नियमानुकूल हो तो प्रस्रवण की दिन में अप्रतिष्ठापना, क्षेत्र की अपेक्षा ग्रामादि से बाहर, काल की अपेक्षा-शीत या ग्रीष्म में आहार करके करे तो चतुर्दशभक्त से और आहार किये बिना करे तो षोडशभक्त से पूर्ण होती है और भाव की अपेक्षा-देवता, मनुष्य और तिर्यच सम्बन्धी उपसर्गों को समभाव पूर्वक सहन करना, उपसर्ग सहना।

इसी प्रकार महामोक प्रतिमा भी की जाती है। अन्तर इतना ही है कि यह षोडश भक्त से या अष्टादश भक्त से पूर्ण होती है।

यवमध्यचन्द्र प्रतिमा - शुक्लपक्ष की पडवा से प्रारंभ होकर, चन्द्रकला की वृद्धि-हानि के अनुसार दत्ति की वृद्धि-हानि से यव के मध्यभाग आकार में पूरी होने वाली एक महीने की प्रतिज्ञा। जैसे सुदी पडवा को एक दत्ति, द्वितीया को दो दत्ति, इस प्रकार क्रमशः एक एक दत्ति बढ़ाते हुए पूर्णिमा के दिन पन्द्रह दत्ति। वदी पडवा को चौदह दत्ति फिर एक-एक दत्ति घटाते हुए, चतुर्दशी को एक दत्ति लेना। अमावस्या को उपवास।

व्रजमध्यचन्द्र प्रतिमा - कृष्ण पक्ष की पडवा के दिन प्रारंभ होकर, चन्द्रकला की हानिवृद्धि के अनुसार दत्ति की हानिवृद्धि से व्रजाकृति में पूर्ण होने वाली एक महीने की प्रतिज्ञा। इसके प्रारम्भ में १५ दत्ति, फिर क्रमशः घटाते हुए अमावस्या को एक दत्ति। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को दो, फिर क्रमशः एक-एक बढ़ाते हुए चतुर्दशी को पन्द्रह दत्ति और पूर्णमासी को उपवास।

दूसरी वांचना में इस प्रकार का पाठ भी मिलता है -

१. विवेक प्रतिमा २. व्युत्सर्ग प्रतिमा ३. उपधान प्रतिमा ४. प्रतिसंलीनता प्रतिमा।

संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

भावार्थ - इस प्रकार वे निर्ग्रन्थ संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

स्थविरों के बाह्य-आभ्यन्तर गुण

१६. तेणं कालेणं तेणं समणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे धेरा भगवंतो -

भावार्थ - उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के अन्तेवासी बहुत-से स्थविर-ज्ञान और चारित्र में वृद्धि प्राप्त भगवन्त - उन के साथ थे।

जाइसण्णा कुलसंपण्णा बलसंपण्णा रूव- संपण्णा विणयसंपण्णा णाणसंपण्णा दंसणसंपण्णा चरित्तसंपण्णा लज्जासंपण्णा लाघवसंपण्णा।

भावार्थ - वे स्थविर भगवन्त जाति-मातृपक्ष, कुल-पितृपक्ष, बल, रूप, विनय, ज्ञान, दर्शन-श्रद्धा, चारित्र, लज्जा अपवाद से डरने का भाव और लाघव-वस्त्र आदि अल्प उपधि की और ऋद्धि रस और साता के गौरव से रहित अवस्था से सम्पन्न युक्त थे।

विवेचन - 'जातिसम्पन्न' आदि विशेषणों का यह आशय है कि वे उत्तम जाति, कुलादि से युक्त थे। क्योंकि साधारण पुरुष भी मातृपक्षादि से संपन्न होते हैं। इसमें कोई विशेषता नहीं है। अतः यहाँ इन भावों की उत्तमता को बताने के लिये ही यह विशेषणों का समूह आया है।

जाति और कुल की सम्पन्नता शुभ कर्म के उदय से ही प्राप्त हो सकती है। यदि मातृ-पितृपक्ष निर्दोष हों तो सुन्दर संस्कारों की प्राप्ति सहज ही हो जाती है। जिससे आगे का उत्कर्ष सुगम हो जाता

है। अतः श्रेष्ठ साधनों को सुलभ कर देने में पूर्व के सुकृत का उदय मानना असंगत नहीं है। बल और रूप की सम्पन्नता भी पहले के शुभ कर्म के उदय से ही प्राप्त हो सकती है। बलसम्पन्नता घोरतम कष्टों को सहने में स्थिर बनाती है और रूपसम्पन्नता बाल जीवों को धर्ममार्ग में जोड़ने में निमित्त बन सकती है। ये चारों गुण बाह्य हैं।

विनय, ज्ञान, दर्शन, चारित्र और लाघव की सम्पन्नता, आत्मिक पुरुषार्थ को शुभोदय का सहकार मिलने पर प्राप्त हो सकती है और लज्जा लोक संज्ञा का संस्कृत रूपान्तर है। विनय से धर्म, ज्ञान से समझ, दर्शन से प्रतीति और रुचि एवं संसार के मिथ्या भावों के छेदन, चारित्र से निष्कम्प दशा, लज्जा से संयम में दृढ़ता और लाघव से मुक्तिमार्ग में तीव्र गति की प्राप्ति होती है। ये आन्तरिक गुण हैं।

ओअंसी तेअंसी वच्चंसी जसंसी।

भावार्थ - वे ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी और यशस्वी थे।

विवेचन - ओजस्-मानस-हृदय की स्थिरता। सुसम्बद्ध विचारों के अभ्यास के कारण जो आत्मिक स्थिरता पैदा होती है, जिससे अन्य व्यक्तियों को अपने विचारों से प्रभावित कर देने की जो जोशीली शक्ति पैदा होती है, उसे 'ओजस्' कहा जाता है।

तेजस्-शरीर की प्रभा। साधना करते-करते साधक-शरीर के चारों ओर किरणें -सी निकलने लग जाती हैं, जिससे व्यक्ति दर्शन मात्र से एक मधुर शान्ति का अनुभव करता है, उसे 'तेजस्' कहते हैं।

वचस्-सौभाग्यादि से युक्त वाणी।

अथवा वर्चस्-प्रभाव। क्रिया या आचार में व्याप्त ऐसी शक्ति, जिसका लोहा अन्य भी मानते हैं और जो प्रभाव की जननी है, उसे 'वर्चस्' कहा जाता है।

यशस्-ख्याति। उपर्युक्त तीनों भावों के मिश्रण के द्वारा लोक में उस चुम्बकीय व्यक्तित्व के प्रति जो प्रशंसात्मक दृष्टि बनती है उसकी जो स्तुति होती है, उसे 'यशस्' कहते हैं।

जियकोहा जियमाणा जियमाया जियलोभा जियइंदिया जियणिहा जियपरीसहा।

भावार्थ - वे अनगार भगवन्त क्रोध, मान, माया-छल-कपट और लोभ के हृदय में उदय होने पर, उन्हें विफल कर देते थे-उनके प्रवाह में नहीं बहते थे। इन्द्रियों पर अपना अधिकार रखते थे। निद्रा के वशीभूत नहीं होते थे और परीषहों-अनुकूल या प्रतिकूल बाधाओं को जीत लेते थे।

विवेचन - 'जित' शब्द से यहाँ पर यह भाव लिया गया है कि - आत्म-सत्ता गत कर्मों के उदय-फल देने के लिये प्रवृत्त होने पर, उन पर क्रोधादि का आक्रमण अवश्य होता था, किन्तु आत्मजागृति के द्वारा उन्हें अपने पर हावी नहीं होने देते थे। अतः पुनः वैसे कर्मों का इतना प्रबल सञ्चय आत्मा में नहीं होता था।

जीविआस-मरणभय-विप्पमुक्का।

भावार्थ - वे जीने की आशा और मरने के भय से बिलकुल मुक्त थे।



विवेचन - जीने की आशा और मरने का भय, अनेक आत्मिक दोषों को पैदा करते हैं। जिसने इन दोनों को छोड़ दिया हो, वही क्रोधादि भावों पर सही विजय पा सकते हैं। जीना और मरना तो कर्माधीन है और आयुष्य कर्म पिछले जन्म में ही बांधकर लाया जाता है। अतः जीवन आशा और मरणभय से कुछ विशेष लाभ नहीं हो सकता। किन्तु कर्तव्य में शिथिलता ही पैदा होती है। अतः ज्ञानी पुरुष इन भावों से मुक्त हो जाते हैं।

वयप्पहाणा गुणप्पहाणा करणप्पहाणा चरणप्पहाणा।

भावार्थ - वे उत्तम व्रत—श्रेष्ठतम साधुता के धारक थे। करुणा आदि श्रेष्ठ गुणों के स्वामी थे। आहार शुद्धि आदि श्रेष्ठ क्रिया—करण के पालक थे। महाव्रत आदि श्रेष्ठ आचार-चरण के धनी थे।

विवेचन - मूल और करण शब्द से मूलगुण जो कि पांच महाव्रत आदि करण सत्तर के सित्तर बोल लिये गये हैं तथा गुण प्रधान और चरण प्रधान शब्द से पिण्डविशुद्धि आदि रूप चरणसत्तर के ७० बोल लिये गये हैं।

चरणसत्तर के ७० भेद -

वय-समणधम्म, संजम-वेयावच्चं च बंभगुत्तीओ।

णाणाइतीय तव, कोह-णिग्गहाइ चरणमेयं ॥

अर्थ - ५ महाव्रत, १० यतिधर्म, १७ प्रकार का संयम, १० प्रकार की वैयावच्च, ब्रह्मचर्य की ९ वाड़, ३ रत्न (ज्ञान, दर्शन, चारित्र) १२ प्रकार का तप, ४ कषाय का निग्रह; ये सभी मिला कर चरणसत्तर के ७० भेद हुए।

करणसत्तर के ७० भेद -

पिंडविसोही समिई, भावणा-पडिमा इंदिय-णिग्गहो य।

पडिलेहण-गुत्तीओ, अभिग्गहं चव करणं तु ॥

अर्थ - ४ प्रकार की पिण्ड-विशुद्धि, ५ समिति, १२ भावना, १२ भिक्षु प्रतिमा, ५ इन्द्रियों का निरोध, २५ प्रकार की पडिलेहणा, ३ गुप्ति, ४ अभिग्रह ये सभी मिला कर ७० भेद हुए।

णिग्गहप्पहाणा णिच्छयप्पहाणा अज्जवप्पहाणा मद्दवप्पहाणा लाघवप्पहाणा खंतिप्पहाणा मुत्तिप्पहाणा।

भावार्थ - वे अनाचार को रोकने में कुशल, श्रेष्ठ निश्चयवाले, माया-छल कपट और मान के उदय का निग्रह करने में कुशल, उत्तम लाघव-क्रिया में दक्षता के धारक एवं क्रोध और लोभ के उदय का निग्रह करने में चतुर थे।

विवेचन - स्थविर भगवन्तों के हाथ में ही शासन की बागडोर रहती है। अतः उन्हें अनाचार प्रवृत्ति का निग्रह भी करना पड़ता है। क्रोध आदि को जीत लेने पर निग्रह कैसे संभव हो सकता है ?

वस्तुतः क्रोध से अनाचार की वृद्धि नहीं रोकी जा सकती है। किन्तु ओज आदि गुणों के द्वारा ही साधकों के हृदय को जीत कर उन्हें सदाचार में प्रवृत्त किया जा सकता है। इसमें निश्चयबल-तत्त्वनिर्णय और विहित अनुष्ठानों को करने के लिये योग्य, विशुद्ध एवं दृढ़ सङ्कल्प बल की आवश्यकता रहती है। इसका कथन 'निश्चयप्रधान' विशेषण के द्वारा किया गया है। 'जितक्रोधादि' विशेषणों के द्वारा क्रोधादि के उदय को निष्फल करने का विधान किया है और 'आर्जव-सरलता, मार्दव-कोमलता, विनय, क्षान्ति-क्षमा और मुक्ति-निर्लोभता में प्रधानता' के द्वारा क्रोधादि को जीतने के साधनों के प्रयोग में उनकी कुशलता का वर्णन किया है। 'आर्जवप्रधान' और 'मार्दवप्रधान' के बाद 'लाघवप्रधान' विशेषण रखने का यह रहस्य हो सकता है कि सरलता और विनय से युक्त होने पर ही वास्तविक क्रियाकुशलता की प्राप्ति होती है। पहले आया हुआ 'लाघवसम्पन्न' विशेषण 'द्रव्य और भाव से हलकेपन' का बोधक है और 'लाघवप्रधान' विशेषण 'विहित क्रियाओं अथवा तत्त्वज्ञान की विविध शैलियों की दक्षता-चतुराई' का बोधक है।

विज्ञापहाणा मंतप्यहाणा वेयप्यहाणा बंभप्यहाणा णयप्यहाणा णियमप्यहाणा सच्चप्यहाणा सोयप्यहाणा ।

भावार्थ - वे अनगार भगवन्त प्रज्ञप्ति आदि विद्या के श्रेष्ठ धारक, उत्तम मंत्रज्ञ, श्रेष्ठ ज्ञानी, ब्रह्मचर्य में या कुशलानुष्ठान में स्थित, नय-नीति में प्रधान, उत्तम अभिग्रहों के स्वामी, सत्यप्रधान और शौच-निर्लेपता और दोष से रहित समाचारी के श्रेष्ठ धारक थे।

विवेचन - स्थविरों की विद्या, मंत्र, वेद और ब्रह्म में प्रधानता के कथन से, सूत्रकार यह सूचित करते हैं कि उनको रहस्यमयी लौकिक साधनाओं का ज्ञान था और परसिद्धान्त एवं उसमें से विकसित उत्तरवर्ती मानसिक साधनाओं का भी ज्ञान था तथा वे उन्हें निवृत्ति मार्ग के अनकूल भावों में परिणत करने की शक्ति रखते थे।

चारुवण्णा लज्जा-तवस्सी-जिइंदिया सोही अणियाणा अप्पुस्सुया अबहिल्लेसा अप्पडिल्लेस्सा सुसामण्णरया दंता इणमेव णिगंथं पावयणं पुरओ-काउं विहरंति ।

भावार्थ - उन अनगार भगवन्तों की सब जगह भूरि-भूरि प्रशंसा होती थी। उनके लज्जा प्रधान और जितेन्द्रिय शिष्य थे। वे जीवों के सुहृद्-मित्र थे-किसी के भी प्रति उनके हृदय में कलुषित भावना नहीं थी। तप संयम के बदले में पुण्य फल की इच्छा-याचना नहीं करते थे। उत्सुकता से रहित थे। संयम से बाहर की मनोवृत्तियों से रहित थे। अनुपम अथवा विरोध से रहित वृत्तियों के धारक थे। श्रमण की क्रियाओं में पूर्णतः लीन रहते थे। गुरुओं के द्वारा दमन को ग्रहण करते थे। विनय करने वाले थे और इस निर्ग्रन्थ प्रवचन को ही आगे रख कर विचरण करते थे।

विवेचन - 'चारुवण्णा' - सत्कीर्ति या शरीर का गौर आदि सुन्दर वर्ण या सत्प्रज्ञा। 'लज्जा-तवस्सी-जिइंदिया'-लज्जाप्रधान जितेन्द्रिय शिष्यों के स्वामी या लज्जा और तप की शोभा के द्वारा

इन्द्रियों के जीतने वाले। यद्यपि 'जिड़ंदिया' विशेषण पहले आ चुका है, तथापि लज्जा और तप के विशेष भाव से युक्त होने के कारण पुनरुक्ति नहीं है।

वे स्थविर भगवन्त निर्ग्रन्थ प्रवचन को ही दृष्टि समक्ष रखते थे। क्योंकि वे जानते थे कि छद्मस्थ व्यक्ति कितना ही ज्ञानी और स्थितात्मा क्यों न हो, किन्तु वह निर्ग्रन्थ प्रवचन से निरपेक्ष स्वतंत्र बुद्धि से निर्दोष विचार नहीं कर सकता। वे निर्ग्रन्थप्रवचन की अनुगामिता को बुद्धि की गुलामी नहीं-किन्तु स्वच्छन्द बुद्धि रूपी जंगली घोड़े को वश में करने वाली सुन्दर लगाम मानते थे।

तेसि णं भगवंताणं आयावाया (आयावाइणो) वि विदिता भवंति। परवाया (परवाइणो) विदिता भवंति। आयावायं जमइत्ता-णलवणमिव मत्तमातंगा, अच्छिह-पसिण-वागरणा, रयण-करडंग-समाणा, कुत्तिया-वणभूया (परवाईहिं अणोक्कंता, अण्णउत्थिएहिं अणोद्धंसिज्जमाणा, अप्पेगइया आयारधरा जाव विवागसुयधरा चोहसपुव्वी) पर-वादिय-पमहणा, दुवालसंगिणो समत्त-गणि-पिडग-धरा।

भावार्थ - उन अनगार भगवन्तों को अपने सिद्धान्तों के प्रवाद भी ज्ञात थे और परवाद-दूसरे मत-मतान्तर भी ज्ञात थे। स्व-सिद्धान्त को पुनः पुनः परावर्तन से अच्छी तरह जानकर, कमल वन में-रमण करने वाले मस्त हाथी के समान थे, वे लगातार प्रश्न-उत्तर के करने वाले होकर विचरते थे। वे रत्न के करण्डक के समान और कुत्रिकापण-तीनों लोक की प्राप्त होने योग्य वस्तुओं की देवाधिष्ठित दुकान के तुल्य थे। परवादियों का- उनके मत का मर्दन करने वाले थे। बारह अंगों के ज्ञाता थे। समस्त-अनन्त गम और पर्याय से युक्त गणिपिटक के धारक थे।

विवेचन - गणिपिटक—अर्थपरिच्छेदों का पिटक के तुल्य स्थान या अर्थ-निर्णयों के कोष-निधि—आचार्य का पिटक अर्थात् प्रकीर्णक, श्रुतादेश, श्रुतनिर्युक्ति आदि से युक्त जिनप्रवचन। बारह अंग के धारक होकर भी, प्रकीर्णकादि का ज्ञाता न हो। अतः इस अर्थ का ज्ञान कराने के लिये 'दुवालसंगिणो' के बाद 'समत्त'-विशेषण आया है।

गणिपिटक - गणो गच्छो गुणगणो वाऽस्यास्तीति गणी आचार्यः, तस्य पिटकमिव पिटकम् सर्वस्वमित्यर्थः गणिपिटकम्।

अर्थ - गण अर्थात् गच्छ के स्वामी को अथवा गुण गण के धारक को गणी कहते हैं। अर्थात् आचार्य भगवन्त का दूसरा नाम गणी है। पिटक का अर्थ है - पेटी (सन्दूक)। जिस प्रकार जौहरी के रत्नों की पेटी होती है उसी प्रकार आचारांग आदि बारह अंग जिनके लिये रत्नों की पेटी के समान है उसे गणिपिटक कहते हैं।

कुत्तियावण - कौ पृथिव्यां त्रिजमापणायति व्यवहरति यत्र हट्टेऽसौ कुत्रिजापणः। देवाधिष्ठितत्वेन स्वर्गमर्त्यपाताल-भूत्रिजसंभविवस्तु संपादके आवणे हट्टे।

अर्थ - 'कु' का अर्थ है पृथ्वी। 'त्रि' का अर्थ है तीन लोक और 'कापण' का अर्थ है दुकान। उसका समुदित अर्थ यह हुआ कि-ऐसी दुकान जहाँ तीनों लोक की वस्तुएँ मिलती हैं। यह देवाधिष्ठित होती है।

सव्वक्खर-सण्णवाइणो, सव्व-भासाणुगामिणो, अजिणा जिणसंकासा, जिणा इव अवितहं वागरमाणा संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

भावार्थ - वे अनगार भगवन्त अक्षरों के सभी संयोगों को जानते थे। सर्वभाषा को जानने वाले थे। जिन-सर्वज्ञ नहीं होते हुए भी जिन के समान थे। वे सर्वज्ञ के समान वास्तविक प्रतिपादन करते हुए संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

विवेचन - सर्वाक्षर-सन्निपाती-सभी अक्षरों-उच्चारणध्वनियों के एक-दो आदि विभिन्न संयोगों से, जितने भी शब्द बनते हैं, उन सभी को जानने वाले को 'सर्वाक्षर-सन्निपाती' लब्धि का धारक कहा जाता है।

सर्वभाषानुगामी - आर्य, अनार्य, मनुष्य, तिर्यज्व और देवों की सभी भाषाओं के बोलने वाले अथवा अपनी भाषा में ही बोलते हुए भी अतिशय विशेष से सुनने वाले को अपनी-अपनी भाषा में बोलते हुए प्रतीत हो, ऐसी शक्ति के धारक अथवा संस्कृत, प्राकृत, मागधी आदि भाषाओं में व्याख्यान करने वाले।

अनगारों के गुण

१७- तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी बहवे अणगारा भगवंतो।

भावार्थ - उस काल-उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के बहुत से अन्तेवासी अनगार भगवन्त उनके साथ थे, वे कैसे थे ?

इरियासमिया भासासमिया एसणासमिया आदाण-भंडमत्त-णिक्खेवणासमिया उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-पारिद्वावणिया-समिया मणगुत्ता वयगुत्ता कायगुत्ता।

भावार्थ - वे अनगार भगवन्त हलन-चलनादि क्रिया, भाषा के प्रयोग, आहारादि की याचना, पात्र आदि के उठान-रखने और मल-मूत्र, खेंकार, नाक आदि के मैल को त्यागने में यतनावान् थे। मन, वचन और काया की क्रिया का निरोध करने वाले थे।

विवेचन - संयम के अनुकूल यतनापूर्वक की जाने वाली प्रवृत्ति को समिति कहते हैं और आत्म-रमण के लिये जिन क्रियाओं से निवृत्ति ली जाती है उन्हें गुप्ति कहते हैं। समिति केवल शुभ

प्रवृत्ति रूप ही होती है और अशुभ क्रिया से निवृत्ति एवं शुभक्रिया में प्रवृत्ति रूप तथा अशुभ और शुभ क्रिया से सर्वथा निवृत्ति रूप गुप्ति होती है। इन दोनों को मिला कर 'अष्ट प्रवचन माता' कहा जाता है।

गुप्ता गुप्तिदिया गुत्तबंभयारी (गुत्तागुप्तिदिया)।

भावार्थ - वे अनगार भगवंत गुप्त—अन्तर्मुख—सर्वथा निवृत्त, गुप्तेन्द्रिय—इन्द्रियों को उनके विषयों के व्यापार में लगाने की उत्सुकता से रहित और गुप्त ब्रह्मचारी—नियमोपनियम सहित ब्रह्मचर्य के धारक अर्थात् सुरक्षित ब्रह्मचर्य वाले थे।

विवेचन - शब्दादि में रागादि नहीं करने के कारण 'गुप्त' और आगम-श्रवण, ईर्या समिति आदि में इन्द्रियों को प्रवृत्त करने के कारण 'अगुप्त' अथवा 'गुप्त-अगुप्त-इन्द्रिय' - प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप शुभ उभयपक्ष के धारक थे।

अममा अकिंचणा (अकोहा अमाणा अमाया अलोभा संता पसंता उवसंता परिनिव्वया अणासवा अगंथा छिण्णसोया) छिण्णगंथा छिण्णसोया णिरुवलेवा ।

भावार्थ - वे अनगार भगवन्त अकिञ्चन-द्रव्य से रहित थे। वे ममत्व रहित थे। वे छिन्नग्रन्थ थे अर्थात् संसार से जोड़ने वाले पदार्थों से मुक्त थे। अतः छिन्नस्रोत थे अर्थात् शोक-आर्तता से रहित थे—संसार प्रवाह में नहीं बहते थे तथा निरुपलेप अर्थात् कर्मबन्ध के हेतुओं से रहित थे। वे क्रोध मान माया और लोभ से रहित थे। बाहर तथा आभ्यन्तर से शान्तियुक्त थे। अतएव उपशान्त अर्थात् शीतलीभूत थे। परिनिवृत्त अर्थात् कर्मकृत विकार से रहित होने के कारण शीतल थे। आस्रव रहित थे।

निर्ग्रन्थों की उपमाएँ

संग्रह गाथा

कंसे १ संखे २ जीवे ३ गयणे ४ वाए ५ य सारए सलिले ६ ।

पुक्खरपत्ते ७ कुम्मे ८ विहगे ९ खग्गे य १० भारंडे ११ ॥ १ ॥

कुंजर १२ वसहे १३ सीहे १४ नगराया चेंव १५ सागरऽक्खोहे १६ ।

चंदे १७ सूरे १८ कणगे १९ वसुंधरा चेव २० सुहूयहुए २१ ॥ २ ॥

कंसपाईव मुक्क-तोया १

- कांस्य पात्री के समान स्नेह रूप पानी से मुक्त थे।

विवेचन - कांसे के बर्तन में पानी का लेप नहीं लगता है। यद्यपि वह पानी को धारण करता है, तथापि वह कोरा का कोरा ही रहता है। इसी प्रकार वे अनगार भगवन्त शिष्यों के परिवार से युक्त थे, उपदेश आदि की प्रवृत्ति भी करते थे और व्यवहार में वत्सल भी दिखाई देते थे, किन्तु अन्तरंग में वे स्नेह-रहित थे। क्योंकि स्नेह बन्धन का कारण है।

संख इव गिरंगणा २

भावार्थ - संख के समान नीरंगण-रागादि रञ्जनात्मक भाव से रहित थे।

विवेचन - रंगण अर्थात् जो हमारे सामने जिस भाव से रंग कर आया हो, उसी भाव में स्वयं भी लीन हो जाना। जैसे-क्रोधी से क्रोध करना, द्वेषी से द्वेष करना, प्रेमी से प्रेम करना, अपनी स्तुति करने वाले की प्रशंसा करना, अपनी निन्दा करने वाले की निन्दा करना आदि। जो ऐसे भावों से मुक्त हो वह निरंगण कहलाते हैं।

जीवो विव अप्पडिहयगई ३

भावार्थ - जीव के समान अप्रतिहत-रुकावट से रहित गति वाले थे।

विवेचन - गति अर्थात् अपने लक्ष्य को पाने की क्रिया। जब अपने जीवन-लक्ष्य का सही निर्णय हो जाता है और सही मार्ग की प्राप्ति का निश्चय हो जाता है, तो साधक लाखों विघ्नों से भी न घबराते हुए दृढ़ता के साथ अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता हुआ चला जाता है। गति की शिथिलता उसके विश्वास और मनोबल की कमजोरी की सूचक है। जिस प्रकार जीव को उसके उत्पत्ति-स्थान की ओर जाने से कोई भी नहीं रोक सकता है, उसी प्रकार वे अनगार भगवन्त भी मत-मतान्तर कृत शंका-कुशंका या आकांक्षा आदि रुकावटों से शिथिल गति नहीं होते थे।

जच्च कणगमिव जायरूवा ४

भावार्थ - अन्य कुधातुओं के मिश्रण से रहित सोने के समान जातरूप-प्राप्त हुए निर्मल चारित्र में वैसे ही भाव से स्थित अर्थात् दोष से रहित चारित्र वाले थे।

(आदरिस-फलगा इव पायड भावा)

भावार्थ - दर्पणपट्ट के समान प्रकट भाव वाले थे।

विवेचन - प्रकट भाव अर्थात् शठता से रहित मन के परिणाम। जैसे कि दर्पण में जैसे और जिस स्थिति में नयन, मुख आदि होते हैं, उसी रूप में उनकी प्रतिछाया दिखाई देती है, वैसे ही वे अनगार भगवन्त अन्तर में कपट-रहित थे और बाहरी क्रिया में भी निष्कपट-निश्छल थे।

कुम्मो इव गुत्तिंदिया ५

भावार्थ - कच्छप के समान गुप्तेन्द्रिय थे।

विवेचन - जैसे हमला आक्रमण होने पर कछुआ अपने चारों पैरों और गर्दन इन पांचों अङ्गों को ढाल में संकुचित करके अपने ऊपर होने वाले आघात (चोट) को निष्फल बना देता है और सुरक्षित बन जाता है, वैसे ही वे अनगार भगवन्त विकारों का प्रहार होने पर, इन्द्रियों को विषयों से खींचकर, निवृत्ति भाव की ढाल में संकुचित हो जाते थे-छिप जाते थे और विकारों के प्रहार को निष्फल बना देते थे।

पुष्कर पत्तं व णिरुवलेवा ६

भावार्थ - पुष्कर पत्र अर्थात् कमल पत्र के समान निर्लेप थे।

विवेचन - जल और पङ्क (कीचड़) से उत्पन्न होकर भी कमल उनसे भिन्न रहता है। यदि उसके ऊपर जल गिर भी जाय, तो बिन्दु रूप से वहीं स्थिर हो जाता है। इसी प्रकार वे भगवन्त अपने स्वजनों की आसक्ति से रहित थे। यदि स्वजन उनके पीछे पड़ ही जाते, तो वे अपने स्वभाव से उनकी चञ्चल प्रकृति स्थिर बना देते थे और उनकी स्नेह वृत्तियों के फैलाव का अवकाश ही नहीं देते थे।

गगणमिव णिरालंबणा ७

भावार्थ - आकाश के समान निरवलम्ब थे।

विवेचन - जैसे आकाश अपने आप में ही स्थित रहता है। किसी के भी अवलम्बन की उसकी स्थिति में आवश्यकता नहीं रहती। उसी प्रकार वे अनगार भगवन्त भी ग्राम, नगर, उद्यान आदि में निरपेक्ष रहते हुए अपने आप में लीन रहते थे।

अणिलो इव णिरालया (अपडिबद्धा) ८

भावार्थ - वायु के समान निरालय-स्थान विशेष से रहित अर्थात् अप्रति बद्ध विहारी थे।

चंदो इव सोमलेस्सा ९

भावार्थ - चन्द्र के समान सौम्य लेश्या वाले अर्थात् शुद्ध मन के परिणाम वाले थे।

सुरो इव दित्ततेया १०

भावार्थ - सूर्य के समान दीप्त तेजवाले-शारीरिक और आत्मिक तेज से तेजस्वी थे।

सागरो इव गंभीरा ११

भावार्थ - समुद्र के समान गंभीर थे। अर्थात् हर्ष-शोक आदि के कारण उपस्थित होने पर भी निर्विकार चित्तवाले थे।

विहग इव सव्वओ विप्पमुक्का १२

भावार्थ - पक्षी के समान पूर्णतः विप्रमुक्त थे।

विवेचन - जैसे पक्षी परिवार से या सेवक आदि से धिरे हुए नहीं रहते हैं-उनके वासस्थान नियत नहीं रहते हैं, इसी प्रकार वे अनगार भी सेवकादि और नियत वास से मुक्त थे।

मंदर इव अप्पकंपा १३

भावार्थ - मेरु पर्वत के समान अप्रकम्प (अनुकूल या प्रतिकूल उपसर्गों-कष्टों में अडोल) थे।

सारयसलिलं व सुद्ध-हियया १४

भावार्थ - शरद् ऋतु के जल के समान शुद्ध हृदय वाले थे।

खगिग-विसाणं व एगजाया १५

भावार्थ-गैंडे के सिंग समान एक जात-रागादि के सहायक भावों के अभाव के कारण एकभूत थे।

भारंड पक्खी व अप्पमत्ता १६.

भावार्थ - भारण्डपक्षी के समान अप्रमत्त-सदा जागृत थे।

विवेचन - भारण्डपक्षी के एक शरीर, दो ग्रीवा और तीन पैर होते हैं। उसके दोनों मस्तिष्क भिन्न होते हैं। अतः वह अत्यन्त जागृत रह कर ही जीवन यात्रा का निर्वाह करता है। इसी तरह वे अनगार भगवन्त भी तप और संयम रूपी धर्म में प्रमाद रहित रहते थे।

कुंजरो इव सोंडीरा १७

भावार्थ - हाथी के समान शूर-कषायादि भाव शत्रुओं को जीतने में बलशाली थे।

वसमो इव जायत्थामा १८

भावार्थ - वृषभ के समान जात स्थाम-धैर्यवान् थे।

विवेचन - जैसे वृषभ धीरता के साथ भार वहन करते हैं, वैसे ही वे ली हुई प्रतिज्ञा का भार धैर्य के साथ वहन करते थे।

सीहो इव दुद्धरिसा १९

भावार्थ - सिंह के समान दुर्धर्ष-परीषहादि मृगों से नहीं हारने वाले थे।

वसुंधरा इव सव्व-फास-विसहा २०

भावार्थ - पृथ्वी के समान सभी (शीत-उष्ण आदि) स्पर्शों को सहने वाले थे।

सुहुय-हुयासणो इव तेयसा जलंता २१

भावार्थ - घृत आदि से अच्छी तरह हवन की हुई हुताशन-अग्नि के समान ज्ञान और तप रूप तेज से जाज्वल्यमान थे।

अनगारों का अप्रतिबंध विहार

णत्थि णं तेसिणं भगवंताणं कत्थइ पडिबंधे भवइ।

भावार्थ - उन भगवन्तों के कहीं पर किसी प्रकार का प्रतिबंध—अटकाव, रोक या आसक्ति का कारण नहीं था।

से य पडिबंधे चउव्विहे पण्णत्ते।

भावार्थ - वह प्रतिबंध—आसक्ति चार प्रकार का कहा गया है।

तंजहा-दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ।

भावार्थ - वे चार प्रकार थे हैं—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से।

दव्वओ णं सचित्ताचित्त-मीसिएसु दव्वेसु, खित्तओ गामे वा णयरे वा रण्णे वा खेत्ते

वा खले वा घरे वा अंगणे वा, कालओ समये वा आवलियाए वा आणा-पाणुए वा, थोवे वा, लवे वा, मुहुत्ते वा, अहोरत्ते वा, पक्खे वा, मासे वा अयणे वा अण्णत्ते वा दीह-काल-संजोगे, भावओ कोहे वा माणे वा मायाए वा लोहे वा भए वा हासे वा एवं तेसिं ण भवइ ।

भावार्थ - द्रव्य से सचित्त, अचित्त और मिश्र द्रव्यों में, क्षेत्र से ग्राम, नगर, जंगल, खेत, खला, घर और आंगन में, काल से समय, आवलिका यावत् अयन और अन्य भी दीर्घकालीन संयोग में और भाव से क्रोध, मान, माया, लोभ, भय या हास्य में-उनका ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं था ।

विवेचन - १. काल का अविभाज्य अर्थात् जिसका फिर भाग नहीं किया जा सके ऐसे निर्विभाग अंश को 'समय' कहते हैं । २. **आवलिका** - असंख्यात समय की एक आवलिका होती है । ३. **उच्छ्वास**-संख्यात आवलिका का एक उच्छ्वास होता है । ४. **निःश्वास** - संख्यात आवलिका का एक निःश्वास होता है । ५. **प्राण** - एक उच्छ्वास और निःश्वास का एक प्राण होता है । ६. **स्तोक** - ७ प्राण का एक स्तोक होता है । ७. **लव** - ७ स्तोक का एक लव होता है । ८. **मुहूर्त्त** - ७७ लव या ३७७३ प्राण का एक मुहूर्त्त होता है । ९. **अहोरात्र** - ३० मुहूर्त्त का एक अहोरात्र होता है । १०. **पक्ष** - १५ अहोरात्र का एक पक्ष होता है । ११. **मास**- दो पक्ष का एक मास (महीना) होता है । १२. **ऋतु** - दो मास की एक ऋतु होती है । १३. **अयन** - तीन ऋतुओं का एक अयन होता है । १४. **संवत्सर** - दो अयन का एक संवत्सर होता है । १५. **युग**- पांच संवत्सर का एक युग होता है ।

प्रश्न - कितनी आवलिका का एक मुहूर्त्त होता है ?

उत्तर - १६७७२१६ आवलिका का एक मुहूर्त्त होता है । जैसा कि कहा है -
तीन साता दो आगला, आगल पाछल सोल ।

इतनी आवलिका मिलाय के, एक मुहूर्त्त तू बोल ॥

प्रश्न - ऋतुएं कितनी हैं और वे कौन कौनसी हैं ?

उत्तर - आगम के अनुसार ऋतुएं छह हैं (ठाणाङ्ग ६) इनके नाम इस प्रकार हैं -

१. **प्रावृट्** - आषाढ और श्रावण ।
२. **वर्षा** - भाद्रपद और आश्विन ।
३. **शरद्** - कार्तिक और मार्गशीर्ष (मिगसर) ।
४. **हेमन्त** - पौष और माघ ।
५. **वसन्त** - फाल्गुन और चैत्र ।
६. **ग्रीष्म** - वैशाख और ज्येष्ठ ।

बृहद् होडाचक्र आदि ज्योतिष ग्रन्थों में लोक व्यवहार के नाम इस प्रकार बतलाये हैं -

१. **वसन्त** - चैत्र और वैशाख ।

२. ग्रीष्म - ज्येष्ठ और आषाढ़।
३. वर्षा - श्रावण और भाद्रपद।
४. शरद् - आश्विन और कार्तिक।
५. शीत - मार्गशीर्ष और पौष।
६. हेमन्त - माघ और फाल्गुन।

ते णं भगवंतो वासावासवज्जं अट्ट-गिम्ह-हेमंतियाणि मासाणि गामे एगराइया णयरे पंचराइया।

भावार्थ - वे अनगार भगवन्त, वर्षावास को छोड़कर, ग्रीष्म और शीतकाल के आठ महिनों तक, गांव में एक रात और नगर में पांच रात रहते थे।

विवेचन - 'गांवों में एक रात्रि और नगर में पांच रात्रि' इसमें 'एक रात्रि' का अर्थ रविवार आदि वारों के क्रम से 'एक सप्ताह' और 'पांच रात्रि' का अर्थ 'पांचवें सप्ताह' में विहार (२९ दिन) करते हैं। जो मास कल्प के अनुकूल हैं।

वासी-चंदण-समाण-कप्पा।

भावार्थ - वे वासी चन्दन के समान कल्प वाले थे।

विवेचन - चन्दन अपने काटने वाले वशुले की धार को भी सुगन्धित बना देता है। क्योंकि चन्दन का स्वभाव ही सुगन्ध देना है। इसी प्रकार अपकारी के प्रति भी उपकार बुद्धि रखना अथवा अपने प्रति 'वासी' अर्थात् वशुले के समान बरताव करने वाले अपकारी और चन्दन के समान शीतलता प्रदाता उपकारी के प्रति समान भाव रखना-राग द्वेष नहीं करना अथवा शस्त्र से काटने वाले और चंदन से पूजने वाले के प्रति समभाव रखना 'वासी-चंदण-समाण-कप्पा' (वासी-चंदन-समान-कल्प) कहा जाता है।

सम-लेट्टु-कंचणा, सम-सुह-दुक्खा।

भावार्थ - मिट्टी के ढेले और सोने को एक समान (उपेक्षणीय) समझने वाले तथा सुख और दुःख को समभाव से सहन करने वाले थे।

विवेचन - ढेला और सोना दोनों ही पुद्गल है। मिट्टी सोने में बदल सकती है और सोना मिट्टी बन सकता है। अतः दोनों में एक ही तत्त्व है। आत्मिक भाव वृद्धि में उनसे सहयोग नहीं मिल सकता। अतः उनमें लोभ आदि नहीं करना-समभाव है।

सुख-दुःख कर्म के उदय से ही होता है। दूसरे तो निमित्त मात्र हैं। अतः सुख-दुःख को समभाव से सहन करने से ही कर्म का क्षय हो सकता है। सुख में हर्ष और दुःख में विषाद इस प्रकार विषमता के परिणाम उन अनगार भगवन्तों के नहीं थे।

इहलोग-परलोग-अप्पडिबद्धा, संसार-पारगामी, कम्म-णिग्घायणट्टाए अब्भुट्टिया विहरंति।

भावार्थ - वे इहलोक और परलोक सम्बन्धी आसक्ति से रहित और संसार-पारगामी—चतुर्गति रूप संसार के पार पहुँचने वाले कर्म-नाश के लिये तत्पर हो कर विचरण करते थे।

विवेचन - इस पूरे सूत्र में अनगार का स्वरूप वर्णित है। भगवान् महावीर स्वामी के शिष्यों की संयम यात्रा, निर्लिप्तता, उपमाओं द्वारा स्तुति-प्रशंसा, अप्रतिबद्ध विहार की क्रमबद्धता, समभावना और ऐसी कठोर चर्या के उद्देश्य का वर्णन सुन्दर ढंग से हुआ है।

अगारवास में आसक्त व्यक्ति की हलन चलनादि क्रिया में भाषा-प्रयोग में, आकांक्षा आदि में संयम नहीं रह सकता। उसकी वृत्ति प्रायः बहिर्मुख ही रहती है। उन्हें इहलौकिक स्वार्थ-परार्थ की चिन्ताएँ सताती रहती हैं। जीवनलक्ष्य के प्रति भी उनका सही विचार नहीं बन सकता। अन्तर्-व्यथा और उलझनों से भ्रान्तियाँ बढ़ती ही जाती हैं। जब कि अनगार-अवस्था में आस्थावान् व्यक्ति इन कठिनाइयों से सहज में पार हो जाता है और अपने लक्ष्य की ओर उसका वायुवेग-सी गति हो जाती है। वे घरबार को छोड़कर अनगार बन जाते हैं। अतः घर से सम्बन्धित तमाम आसक्तियाँ छोड़ देते हैं। स्वयं के लिये जिन्हें असार समझकर छोड़ दिया हो, फिर 'अन्य को वे ही वस्तुएँ प्राप्त हो' - ऐसे चिन्तन या ऐसी झञ्झट में वे कैसे पड़ सकते हैं और भविष्य में उन्हीं वस्तुओं की प्राप्ति की कामनाएँ उनके हृदय में कैसे रह सकती हैं ? अतः अनगार सहज ही ऐहिक और पारलौकिक आसक्तियों से मुक्त हो जाते हैं। जो सभी आसक्तियों को छोड़कर, आत्मिक लक्ष्य के अनुकूल जीवन व्यतीत करने की प्रतिज्ञा ग्रहण करता है तो वह अपकारी और उपकारी व्यक्तियों के प्रति, शुभ और अशुभ वस्तुओं के प्रति और अपनी अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों के प्रति समभाव रखने पर ही संसार-पारगामी होकर, कर्मक्षय के लिये तत्पर बन सकता है। अर्थात् स्पष्ट आत्मिक लक्ष्य की सतत स्मृति, बहिर्वृत्ति से मुक्ति, समभावना, अनासक्ति, निर्लिप्तता और क्रिया में यतना के अस्तित्व से ही अनगार जीवन का निर्माण होता है।

अनगारों की तपश्चर्या

**१८ - तेसि णं भगवंताणं एएणं विहारेणं विहरमाणाणं इमे एयारूवे अब्भितर-
बाहिरए तवो-वहाणे होत्था । तं जहा-अब्भितरए छव्विहे, बाहिरए वि छव्विहे ।**

भावार्थ - इस प्रकार के विहार से विचरण करने वाले उन अनगार भगवन्तों का इस प्रकार से बाह्य और आभ्यन्तर तपाचरण था। जैसे कि - आभ्यन्तर तप के छह प्रकार और बाह्य तप के भी छह प्रकार होते हैं।

विवेचन - अन्तर्-साधनों से बहिराचरण को प्रभावित करके, अन्तर्मुख होने या आत्मिक दोषों को त्यागने की आन्तरिक क्रिया को आभ्यन्तर तप कहते हैं और बाहरी साधनों से आत्मक्रिया को प्रभावित करने अर्थात् जिन बाहरी साधनों से आत्मक्रिया दूषित होती हो उन साधनों के त्याग को

बाह्यतप कहते हैं। मोक्षमार्ग में दोनों प्रकार के तप का स्थान है। शास्त्रों में वर्णित महापुरुषों के जीवन चरित्र भी इस बात की पुष्टि करते हैं। मोक्ष भावना से निरपेक्ष दोनों प्रकार के तप अकाम-निर्जरा में ही परिगणित होते हैं। आत्मलक्ष्य और आत्मज्ञान से शून्य निर्जरा—तप पुण्य-बन्ध में ही सहायक होकर रह जाता है। इसके प्रमाण स्वरूप में अभव्य जीव की साधना कही जा सकती है। सम्यग् दृष्टि की साधना की अपेक्षा से ही बाह्य और आभ्यन्तर भेद किये गये हों—ऐसा लगता है, क्योंकि विकलदृष्टि कृत आभ्यन्तर तप भी वस्तुतः बाह्यतप ही है और उस तप की संज्ञा अकामनिर्जरा-आत्मशुद्धि रूप फल की प्राप्ति न हो वैसा तप है। यथा - 'भीतर ही शरीर को तपाने के कारण और सम्यग्दृष्टि के द्वारा ही तप रूप से प्रतीत होने के कारण आभ्यन्तर तप कहलाता है और बाहरी शरीर को ही तपाने के कारण तथा मिथ्यादृष्टि के द्वारा भी तपरूप से प्रतीत होने के कारण तप की बाह्य संज्ञा है।'

शक्ति होते हुए भी आभ्यन्तर तप के बहाने यदि बाह्यतप की उपेक्षा की जाती है तो आत्मा मिथ्या छल में फंसकर, बहिर्मुख बन जाता है और आभ्यन्तर तप की अवहेलना करके, बाह्यतप किया जाता है तो क्रोधादि कषायों की वृद्धि होती है, जिससे पौद्गलिक ऋद्धियों में उलझने की वृत्ति का निर्माण होता है। परस्पर निरपेक्ष दोनों प्रकार के तप केवलप्रज्ञप्त धर्म से भ्रष्ट कर दे-यह भी संभव है। अतः दोनों प्रकार के तप के सामञ्जस्य पूर्ण आराधन में ही सम्यग्दृष्टि और चारित्र्य की सुरक्षा है।

शक्ति के बहाने से भी बाह्यतप की उपेक्षा होती है। किन्तु मनोबल की दृढ़ता के साथ विविध बाह्य तपों का विधि सहित प्रयोग करने पर तपःशक्ति स्वतः ही विकसित हो सकती है और श्रमण अनेक अनिष्टों से बच सकता है। क्योंकि आत्मा के परिस्पन्द से वीर्य पैदा होता है और जब तक आत्मा योग-मन, वचन और काया की क्रिया से युक्त है तब तक वह निःस्पन्द नहीं हो सकता। अतः वीर्य-क्रिया करने का उत्साह पैदा होगा ही। यदि उसका उपयोग नहीं किया जाता है तो आत्मा का अधःपतन होता है—आकुलता बढ़ती है और वृथा क्रियाएँ जन्म लेती हैं। इसलिये उस वीर्य का बाह्य और आभ्यन्तर तप में उपयोग करके, आत्मविकास को पूर्णता के चरम शिखर पर पहुँचाया जा सकता है।

बाह्य तप

१९— से किं तं बाहिरए ? बाहिरए छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा - अणसणे १, अवमोयरिया (ऊणोयरिया) २, भिक्खायरिया ३, रसपरिच्चाए ४, कायकिलेसे ५, पडिसंलीणया ६।

भावार्थ - बाह्य तप किसे कहते हैं ? बाह्य तप छह प्रकार का कहा गया है। जैसे - १. अनशन- नहीं खाना २. अवमोदरिक- कम खाना अथवा द्रव्य-भाव साधनों को कम काम में लेना ३. भिक्षाचर्या - याचना से प्राप्त संयमी जीवन के योग्य साधनों को लेना या वृत्ति-आजीविका के साधनों को घटाना ४. रस-परित्याग-रसास्वाद को छोड़ना ५. कायक्लेश - सुकुमारता त्यागने के लिये

कायिक दमन के योग्य उपायों को स्वीकार करना और ६. प्रतिसंलीनता - अन्तर्बाह्य चेष्टाओं का संवरण करने के लिए किये जाने वाले बाहरी उपाय।

विवेचन - प्रश्न - तप किसे कहते हैं ?

उत्तर - शरीर और कर्मों को तपाना तप है। जैसे अग्नि में तपा हुआ सोना निर्मल होकर शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार तप रूप अग्नि से तपा हुआ आत्मा कर्म मल से रहित होकर शुद्ध स्वरूप हो जाता है। तप दो प्रकार का है-बाह्य तप और आभ्यन्तर तप। बाह्य शरीर से सम्बन्ध रखने वाले को 'बाह्य तप' कहते हैं।

यदि ये बाह्यतप मुक्ति की अभिलाषा से तीव्र आन्तरिक रुचि से किये जाते हैं तो गौण रूप से आभ्यन्तर तप की साधना भी होती है और आत्मिक गुणों का विकास होता ही है। अनशन से मैत्री भावना का पोषण, कामुकता के उद्दीपन का अभाव, अन्नमोह का त्याग, दैहिक ममता पर विजय आदि गुण प्राप्त होते हैं। न्यूनोदरता से इच्छा-निरोध, इन्द्रिय-निरोध, मनोबल की दृढ़ता आदि गुण सधते हैं। भिक्षाचर्या से आवश्यकता की पूर्ति या अपूर्ति की विविध स्थितियों में समभाव की साधना की जा सकती है। रसपरित्याग से अनासक्ति की पुष्टि होती है और असातावेदनीय का क्षय होता है। कायक्लेश से सुकुमारता के परिहार, सुख-शीलियापन के त्याग, ऋतु के अनुकूल शरीर को बनाने, कष्टसहिष्णुता आदि की साधना में सहायता मिलती है और प्रतिसंलीनता से चित्तशान्ति, एकाग्रता आदि की वृद्धि होती है।

से किं तं अणसणे ? अणसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा-इत्तरिए य आवकहिए य।

भावार्थ - अनशन किसे कहते हैं ? - अनशन के दो भेद कहे गये हैं। जैसे - १. इत्वरिक - मर्यादित समय के लिये आहार का त्याग करना और २. यावत्कथिक - जीवन पर्यन्त आहार का त्याग करना।

विवेचन - प्रश्न - उत्कृष्ट इत्वरिक तप कितना होता है ?

उत्तर - अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर के शासन में एक वर्ष, दूसरे से लेकर तेईसवें तीर्थंकर तक आठ महीना और अन्तिम तीर्थंकर के शासन में छह महीना का उत्कृष्ट तप होता है, अर्थात् इस अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के शासन में एक वर्ष, बीच के बाईस तीर्थंकरों के शासन में आठ महीना और श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शासन में छह महीने का उत्कृष्ट तप होता है। तीर्थंकर भगवन्तों का सब तप चौविहार ही होता है, बाकी सब सन्त-सतियों और श्रावक-श्राविका का तप चौविहार या त्रिविहार भी हो सकता है। जिस तीर्थंकर के शासन में जितना उत्कृष्ट तप होता है उतना ही उत्कृष्ट दीक्षा छेद दिया जा सकता है, उससे अधिक नहीं, यही बात तप के विषय में भी समझना चाहिये। इससे अधिक श्रद्धा, प्ररूपणा और फरसना करें तो भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन होता है।

से किं तं इत्तरिए ? - इत्तरिए अणेगविहे पण्णत्ते। तं जहा-चउत्थभत्ते छट्ठभत्ते अट्ठमभत्ते दसमभत्ते बारसभत्ते चउहसभत्ते सोलसभत्ते, अद्धमासिए भत्ते, मासिए भत्ते, दोमासिए भत्ते, तेमासिए भत्ते, चउमासिए भत्ते, पंचमासिए भत्ते, छम्मासिए भत्ते। से तं इत्तरिए।

भावार्थ - इत्वरिक अनशन किये कहते हैं ? - इत्वरिक अनशन के अनेक भेद कहे हैं। जैसे - चतुर्थभक्त-एक दिन रात के लिए आहार त्याग उपवास, षष्ठभक्त-दो दिन के उपवास बेला, अष्टमभक्त-तीन दिन के उपवास तेला, दशमभक्त-चार दिन के उपवास चोला, द्वादशभक्त-पांच दिन के उपवास पंचोला, चतुर्दशभक्त-छह दिन के उपवास, षोडशभक्त-सात दिन के उपवास अर्द्धमासिकभक्त-पंद्रह दिन के उपवास, मासिकभक्त, द्विमासिक-भक्त, त्रैमासिकभक्त, चातुर्मासिकभक्त, पञ्चमासिकभक्त और षण्मासिकभक्त-छह महीने के उपवास। यह ऐसा इत्वरिक तप है।

विवेचन - इत्वरिक अनशन के दूसरी तरह से छह भेद उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन ३० तथा औपपातिक सूत्र तथा ठाणांग ६ में बतलाये गये हैं यथा - १. श्रेणी तप, २. प्रतर तप ३. घन तप ४. वर्ग तप ५. वर्ग-वर्ग तप ६. प्रकीर्ण तप।

इन तपों का विस्तृत विवेचन जिज्ञासुओं को उपरोक्त स्थलों पर देखना चाहिए।

से किं तं आवकहिए ? - आवकहिए दुविहे पण्णत्ते। तं जहा - पाओवगमणे य भत्तपच्चक्खाणे य।

भावार्थ - यावत्कथिक किसे कहते हैं ? - यावत्कथिक के दो भेद कहे गये हैं। जैसे - १. पादपोपगमन - वृक्ष की कटी हुई डाली के समान जीवन पर्यन्त स्थिर शरीर से रहकर आहार को त्याग देना और २. भक्तप्रत्याख्यान - जीवन पर्यन्त आहार का त्याग।

से किं तं पाओवगमणे ? पाओवगमणे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा-वाघाइमे य णिव्वाघाइमे य। णियमा अप्पडिकम्मे। से तं पाओवगमणे।

भावार्थ - पादपोपगमन किसे कहते हैं ? पादपोपगमन के दो भेद कहे गये हैं। जैसे - १. व्याघातिम-सिंह, दावानल आदि उपद्रवों के आने से निःस्पंद-निराहार रहना और २. निर्व्याघातिम- सिंह आदि के उपद्रवों के नहीं होने पर भी मरणकाल को समीप जानकर, स्वेच्छा से जीवनपर्यन्त निःस्पंद-हलन-चलन से रहित निराहार रहना। इस अनशन में प्रतिकर्म-शरीर संस्कार खुजलाना, हलन-चलन आदि करते नहीं हैं। यह ऐसा पादपोपगमन यावत्कथिक अनशन है।

से किं तं भत्तपच्चक्खाणे ? भत्तपच्चक्खाणे दुविहे पण्णत्ते। तं जहा-वाघाइमे य णिव्वाघाइमे य। णियमा सप्पडिकम्मे। से तं भत्तपच्चक्खाणे। से तं अणसणे।

भावार्थ - भक्त प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ? - भक्त प्रत्याख्यान के दो भेद कहे गये हैं। जैसे -

१. व्याघातिम - सिंह आदि के उपद्रवों के आने पर, उन्हें सहते हुए, जीवनभर के लिये तीन या चार आहार का त्याग करना और २. निर्व्याघातिम - उपद्रवों के नहीं आने पर भी जीवनभर के लिये तीन या चार आहार का त्याग करना। भक्तप्रत्याख्यान में प्रतिकर्म—शरीर-शुद्धि, हलन-चलन, गमन आदि इच्छानुसार किया जा सकता है। यह ऐसा भक्तप्रत्याख्यान है। इस प्रकार यह अनशन का स्वरूप कहा गया है।

विवेचन - साधकों के लिये मरण भी महोत्सव बन जाता है। आगे-पीछे देह का त्याग अवश्य करना पड़ता है। यह जानते हुए भी मरण के समय धैर्य रखना बड़ा कठिन हो जाता है। किन्तु साधक प्रतिपल उस काल के लिये तैयार रहते हैं। फिर भी अपनी शारीरिक शक्ति आदि से अपने अन्तकाल को भयभीत जानकर, विशेष प्रकार की तैयारी प्रारंभ कर देते हैं और जीवनपर्यन्त आहारादि को छोड़ देते हैं। जब इस देह से अब संयम-साधना आदि नहीं हो सकती है तब इस में आसक्ति रखने से क्या लाभ? ऐसा विचार करके, जीने-मरने की आकांक्षा को छोड़कर दैहिक भाव से दूर हो जाते हैं और आत्मभाव में तल्लीन बन जाते हैं।

से किं तं ओमोयरिया ? ओमोयरिया दुविहा पण्णत्ता । तं जहा-दव्वोमोयरिया य, भावोमोयरिया य ।

भावार्थ - अवमोदरिका किसे कहते हैं ? अवमोदरिका - पेट को पूरा नहीं भरना-के दो भेद कहे गये हैं - १. द्रव्य-अवमोदरिका - अपने से भिन्न बाहरी साधनों का पेट भरकर उपयोग नहीं करना और भाव अवमोदरिका-आवेशात्मक भावों का सेवन नहीं करना।

से किं तं दव्वोमोयरिया ? दव्वोमोयरिया दुविहा पण्णत्ता । तं जहा - उवगरण-दव्वोमोयरिया, भत्त-पाण-दव्वोमोयरिया य ।

भावार्थ - द्रव्य अवमोदरिका किसे कहते हैं ? द्रव्य अवमोदरिका के दो भेद कहे गये हैं। जैसे- १. उपकरण द्रव्य अवमोदरिका—वस्त्र आदि अल्प रखना और २. भक्तपान अवमोदरिका—आहार-पानी अल्प मात्र में लेना।

से किं तं उवगरण-दव्वोमोयरिया ? उवगरण दव्वोमोयरिया तिविहा पण्णत्ता । तं जहा - एगे वत्थे, एगे पाए, चियत्तोवगरण-साइज्जणया । से तं उवगरण-दव्वोमोयरिया ।

भावार्थ - उपकरण द्रव्य अवमोदरिका किसे कहते हैं ? उपकरण द्रव्य अवमोदरिका के तीन भेद कहे गये हैं - जैसे १. एक वस्त्र २. एक पात्र और ३. प्रीतिकारी, विश्वासकारी और दोष रहित उपकरण रखना। यह ऐसी उपकरण-द्रव्य अवमोदरिका है।

विवेचन - 'चियत्त उवगरण' के विभिन्न अर्थ मिलते हैं - १. दोषों से जो छोड़ दिये गये हों- ऐसे उपकरण २. संयमियों के द्वारा छोड़े गये उपकरण ३. जूने-पुराने वस्त्रादि और ४. प्रतीतिकारी उपकरण।

से किं तं भक्तपाण-दब्बोमोयरिया? भक्तपाण-दब्बोमोयरिया-अणेगविहा पण्णत्ता। तंजहा-अट्ट-कुक्कुडि-अंडगप्पमाण-मेत्ते कवले आहारमाणे अप्पाहारे।

भावार्थ - भक्तपाण द्रव्य अवमोदरिका किसे कहते हैं? भक्तपाण द्रव्य अवमोदरिका के अनेक भेद हैं। जैसे १. मुख में आसानी से समा सके ऐसे आठ कवल प्रमाण मात्र आहार करना अल्पाहार है।

दुवालस-कुक्कुडि-अंडग-प्पमाण-मेत्ते कवले आहारमाणे अवड्ढोमोयरिया।

भावार्थ - २ बारह कवल प्रमाण आहार करना अपार्द्ध आधी से अधिक अवमोदरिका है।

सोलस-कुक्कुडि-अंडग-प्पमाण-मेत्ते कवले आहारमाणे दुभागपत्तो मोयरिया।

भावार्थ - ३ सोलह कवल प्रमाण आहार करना द्विभाग-आधी अवमोदरिका है।

चउव्वीस-कुक्कुडि-अंडग-प्पमाण-मेत्ते कवले आहारमाणे पत्तोमोयरिया।

भावार्थ - ४ चौबीस कवल प्रमाण आहार करना प्राप्त-चौथाई अवमोदरिका है।

एकतीस-कुक्कुडि-अंडग-प्पमाण-मेत्ते कवले आहारमाणे किंचूणोमोयरिया।

भावार्थ - ५ इकतीस कवल प्रमाण आहार करना किञ्चिन्त्यून-कुछ कम अवमोदरिका है।

बत्तीस-कुक्कुडि-अंडग-प्पमाण-मेत्ते कवले आहारमाणे पमाणपत्ता। एत्तो एणेण वि घासेण ऊणयं आहार-माहारेमाणे समणे णिगंथे णो पकाम-रस-भोईत्ति वत्तव्वं सिया। से तं भक्तपाण-दब्बोमोयरिया। से तं दब्बोमोयरिया।

भावार्थ - बत्तीस कवल प्रमाण आहार करने वाला प्रमाण प्राप्त-पूर्ण आहार करने वाला है। बत्तीस कवल से एक ग्रास भी कम खाने वाला श्रमण-निर्ग्रन्थ प्रकाम-रस-भोजी-बहुत अधिक खाने वाला कहे जाने योग्य नहीं है। यह ऐसी भक्तपाण द्रव्य अवमोदरिका है। इस प्रकार यह द्रव्यअवमोदरिका का स्वरूप है।

विवेचन - आहार का प्रमाण बतलाने के लिए मूल पाठ में 'कुक्कुडि-अंडगप्पमाण-मेत्ते' शब्द दिया है। टीकाकार ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है-कुक्कुटी (मुर्गी) के अण्डे प्रमाण का एक कवल समझना चाहिये। किन्तु यहाँ कुक्कुटी का अर्थ मुर्गी करना प्रकरण संगत नहीं है, इसलिए इसका अर्थ इस प्रकार करना चाहिये-कुटी का अर्थ है झोंपड़ी, जीव रूप पक्षी के लिए आश्रय रूप होने से यह शरीर उसके लिए झोंपड़ी रूप है। यह शरीर रूपी कुटी कभी सदा के लिए भरती ही नहीं है, क्योंकि सुबह खाया और शाम को खाली और शाम को खाया सुबह खाली। इसलिए इसको कुक्कुटी कहते हैं अथवा यह शरीर रूपी कुटी अशुचि से उत्पन्न हुई है और इसमें अशुचि भरी हुई है और सदा अशुचि ही झरती रहती है, इसलिए भी इसको कुक्कुटी कहते हैं और 'अंडग' का अर्थ है मुख। जैसा कि भगवती सूत्र शतक ७ उद्देशक १ की टीका में कहा है -

कुटी इव कुटीरकमिव जीवस्याभ्रयत्वात् कुटी शरीरं, कुत्सिता अशुचिप्रायत्वात् कुटी कुक्कुटी,

तस्या अण्डक-मिवाण्डकमुदर-पुरकत्वादाहारः कुकुट्यण्डकं, तस्स प्रमाणतो मात्रा द्वात्रिंशत्तमांशरूपा येषां ते यथा कुकुट्यण्डक प्रमाण मात्राः। अथवा शरीरमेव कुक्कुटी, तन्मुखमण्डकं, तत्राक्षिक-पोलकण्ठादिविकृति-मनापाद्य यः कवलो मुखे प्रविशति तत्प्रमाणम्।

अर्थ - यह शरीर कुक्कुटी है इस कुक्कुटी का उदर पूरक आहार है, इसलिए आहार को कुक्कुटी अंडग कहते हैं। अथवा शरीर कुक्कुटी है। उसके मुख को अंडग कहते हैं। शरीर के अंग, मुख, आँख, कपोल (गाल), कंठ आदि में किसी प्रकार विकृति (फूलाव) आये बिना जो मुख में आसानी से समा जाए और आसानी से गले में उतर जाए उसको एक कवल (कवा, ग्रास) कहते हैं। इस प्रकार बत्तीस कवल प्रमाण पुरुष का आहार कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि जिस पुरुष का जितना आहार होता है उसके बत्तीसवें भाग को कुक्कुटी अंडग प्रमाण कहते हैं। इस व्याख्या के अनुसार यह समझना चाहिये कि यदि कोई पुरुष अपने हाथ से बत्तीस से अधिक यावत् ६४ कवल भी ले और उतने आहार से उसके उदर (पेट) की पूर्ति होती है तो उतना आहार उसके लिए 'प्रमाण प्राप्त' कहलाता है। तात्पर्य यह है कि जिस पुरुष का जितना आहार है अर्थात् जितने आहार से उसकी उदर पूर्ति होती है उस आहार को वह अपने हाथ के द्वारा कितने ही ग्रास (कवल) से मुख में क्यों न रखें किन्तु शास्त्रीय भाषा में वह आहार बत्तीस कवल प्रमाण (प्रमाण-प्राप्त) कहलाता है। उस आहार का चतुर्थ अंश (चौथा हिस्सा) खाना अल्पाहार ऊनोदरी है। बारह कवल प्रमाण आहार करना अढाई भाग ऊनोदरी है, उस आहार का आधा भाग खाना द्विभाग प्राप्त ऊनोदरी है। उस आहार का तीन चौथाई भाग खाना चतुर्थ अंश ऊनोदरी है और जिसकी जितनी खुराक है उतना आहार करना 'प्रमाण प्राप्त' आहार कहलाता है। इससे एक कवल भी कम आहार करने वाला मुनि प्रकाम-रस-भोजी नहीं कहलाता है।

प्रश्न-अवमोदरिका (ऊनोदरी) को तप क्यों कहा गया है?

उत्तर - यद्यपि ऊनोदरी में आहार किया जाता है तथा उसमें भी विगय की मर्यादा का कोई नियम नहीं है फिर इसे तप क्यों कहा गया? यह प्रश्न करना उचित है। इसका उत्तर यह है कि बिलकुल नहीं खाना अर्थात् उपवास करना किसी अपेक्षा से सरल है किन्तु आहार करने के लिए बैठकर पाव पेट अथवा आधा पेट खाकर उठ जाना किसी अपेक्षा कठिन है क्योंकि जो अवमोदरिका तप करता है वह अपनी खाने की इच्छा को रोकता है और इच्छा को रोकना तप है, जैसा कि कहा है-

“इच्छा निरोधस्तपः”

अर्थात् - इच्छा को रोकना तप है, व्यक्ति कुछ भी खाये बिना रह सकता हो तो सर्वोत्तम बात है किन्तु ऐसा संभव नहीं इसलिए खाते हुये भी खाने की इच्छा पर काबू रहे। इस ध्येय की पूर्ति बहुत कुछ इस तप के द्वारा होती है। इसलिए अवमोदरिका को तप कहा गया है।

से किं तं भावोमोयरिया ? भावोमोयरिया अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा - अप्पकोहे अप्पमाणे अप्पमाए अप्पलोहे अप्पसहे अप्पझंझे । से तं भावोमोयरिया । से तं ओमोयरिया ।

भावार्थ - भाव अवमोदरिका किसे कहते हैं ? भाव अवमोदरिका के अनेक भेद हैं । जैसे - अल्प क्रोध, अल्प मान, अल्प माया, अल्प लोभ, अल्प शब्द अर्थात् कलह अर्थात् क्रोध से होने वाली शब्द की प्रवृत्ति की कमी, अल्प झञ्झ—अविद्यमान कलह विशेष । यह ऐसी भाव अवमोदरिका है । इस प्रकार अवमोदरिका का स्वरूप कहा गया है ।

विवेचन - अल्प शब्द - १. कलह नहीं करना या २. वचन का अभाव । यहाँ अल्प शब्द का अर्थ अभाव लिया गया है । इसका यह आशय प्रतीत होता है कि क्रोध आदि का उदय तो हो जाता है, किन्तु उन्हें किन्हीं उपायों से टाल देना या इनके निमित्तों से अलग हट जाना । अल्प शब्द थोड़े अर्थ में भी आता है और अभाव अर्थ में भी आता है ।

से किं तं भिक्षायरिया ? भिक्षायरिया अणेगविहा पण्णत्ता । तं जहा-
दव्वाभिग्गहचरए-

भावार्थ - भिक्षाचर्या किसे कहते हैं ? भिक्षाचर्या के अनेक भेद हैं । जैसे १. द्रव्य - खाने-पीने की वस्तु आदि से सम्बन्धित प्रतिज्ञा को धारण करने वाले ।

विवेचन - द्रव्य अभिग्रह-अमुक वस्तु मिले तो लेने की, द्रव्यों की संख्या आदि की प्रतिज्ञा करना ।

खेत्ताभिग्गहचरए कालाभिग्गहचरए भावाभिग्गह-चरए ।

भावार्थ - २. स्व-पर ग्रामादि से सम्बन्धित प्रतिज्ञा का सेवन करने वाले, ३. पूर्वाहण - पहला पहर आदि काल के विषय का अभिग्रह—प्रतिज्ञा करने वाले, ४. गान-हसन-वार्त्तादि में प्रवृत्त स्त्री-पुरुषादि से सम्बन्धित अभिग्रह करने वाले ।

उक्खित्तचरए णिक्खित्तचरए उक्खित्त-णिक्खित्त-चरए णिक्खित्त-उक्खित्त-
चरए वट्टिज्ज-माण-चरए साहरिज्जमाणचरए ।

भावार्थ - ५. भोजन पकाने के पात्र से गृहस्थ के अपने प्रयोजन के लिये निकाले हुए आहार के प्राप्त होने की प्रतिज्ञा करने वाले, ६. पाक भाजन - भोजन के पात्र से नहीं निकाले हुए आहार को लेने की प्रतिज्ञा करने वाले, ७. पाक भाजन से निकाल कर वहीं या अन्यत्र रखे हुए आहार की अथवा स्व-प्रयोजन के लिये निकाले हुए और नहीं निकाले हुए दोनों तरह के आहार की लेने की प्रतिज्ञा वाले ८. पाक भाजन में रहे हुए भोजन में से गृहस्थ के स्व-प्रयोजन के लिए निकाले जाते हुए अर्थात् एकाध चम्मच निकाला हो और कुछ निकालना बाकी हो ऐसे आहार को लेने की प्रतिज्ञा वाले ९. खाने के लिये परोसे हुए भोजन में से लेने की प्रतिज्ञा वाले १० जो भोजन ठंडा करने के लिये पात्रादि में फैलाया

गया हो और वह पुनः समेट कर पात्रादि में डाला जा रहा हो-ऐसे आहार को लेने की प्रतिज्ञा वाले अनगार भगवन्त थे।

उवणीयचरणे अवणीयचरणे उवणीयावणीयचरणे अवणीयउवणीय-चरणे।

भावार्थ - ११. किसी के द्वारा किसी के लिये भेजी हुई भेंट या उपहार-सामग्री में से लेने की प्रतिज्ञा वाले १२. किसी के लिये दी जाने वाली या एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखी हुई आहार-सामग्री में से लेने की प्रतिज्ञा वाले १३. उपहार-सामग्री जो कि स्थानान्तरित कर दी गई हो, उसमें से लेने की प्रतिज्ञा वाले। अथवा उपनीत और अपनीत दोनों प्रकार का आहार, अथवा दायक के द्वारा पहले गुण और बाद में अवगुण कथन सहित दिये जाने वाले आहार को लेने की प्रतिज्ञा वाले १४. किसी के लिये भेजने के लिये या उपहार देने के लिये अलग रखे हुए आहार अथवा पहले अपनीत और बाद में उपनीत-इस क्रम से दोनों प्रकार का आहार, अथवा दाता के द्वारा प्रथम अवगुण और बाद में गुण कथन सहित दिये जाने वाले आहार को लेने वाले।

संसदुचरणे असंसदुचरणे तज्जायसंसदुचरणे।

भावार्थ - १५. शाक आदि से खरडे हुए हस्तादि से दिये जाने वाले आहार को लेने की प्रतिज्ञा वाले १६ बिना खरडे हुए हस्तादि से दिये जाने वाले आहार को लेने की प्रतिज्ञा वाले १७. दिये जाने वाले पदार्थ से भरे हुए हस्तादि से दिये जाने वाले आहार को लेने वाले।

अण्णायचरणे मोणचरणे दिट्टलाभिए अदिट्टलाभिए पुट्टलाभिए अपुट्टलाभिए भिक्खालाभिए अभिक्ख-लाभिए।

भावार्थ - १८ अज्ञात-जिसके द्वारा अपने प्रति अपनेपन की भावना से रहित आचरण होता हो ऐसे व्यक्ति से भिक्षा लेने की प्रतिज्ञा करने वाले १९. मौन रूप से या मौन दाता से आहार लेने वाले २०. दिखाई देने वाले आहारादि को लेने वाले अथवा पहले देखे हुए दाता के हाथ से आहार-लाभ करने की प्रतिज्ञा वाले, २१ अदृष्ट भक्तादि अथवा पहले से अनुपलब्ध-नहीं देखे हुए दाता के आहार के लाभ की प्रतिज्ञा वाले। २२ 'हे साधु ! तुम्हें क्या दें ?' इस प्रकार पूछकर दिये जाने वाले आहार को लेने वाले। २३. बिना प्रश्न किये ही दिये जाने वाले आहार को लेने वाले। २४. भिक्षा के समान भिक्षा-तुच्छ आहार लेने वाले २५. जो भिक्षा के तुल्य नहीं है ऐसी भिक्षा-सामान्य आहार लेने वाले।

अण्णगिलायए ओवणिहिणिए परिमिय-पिंड-वाइए सुद्धेसणिणिए संखादत्तिए। से तं भिक्खायरिया।

भावार्थ - २६. अन्नगलायक-अभिग्रह विशेष से सुबह में ही रातबासी ठण्डा आहार लेने वाले २७. उपनिहित-भोजन करने को बैठे हुए गृहस्थ के समीप में रखे हुए आहार में से लेने वाले २८. अल्प आहार लेने वाले, २९. शुद्ध आहार-व्यञ्जन से रहित या शङ्कादि दोष से रहित आहार लेने वाले

और ३० दत्ति—पात्र में आहार क्षेपण—डालने की गिनती से आहार लेने वाले थे। यह भिक्षाचर्या का स्वरूप है।

विवेचन - 'अन्नग्लायक' की व्याख्या - 'स चाभिग्रह विशेषात् प्रातरेव दोषान्नभुगिति' की गई है। यहां पर जो 'दोषा' शब्द आया है उसका अर्थ 'रात्रि' होता है। अतः दोषान्न का अर्थ है - रातबासी रहा हुआ भोजन लेने की प्रतिज्ञा वाले साधु।

रात में बासी रही हुई रोटी आदि नहीं लेना चाहिए ऐसी प्ररूपणा करना आगम विरुद्ध है क्योंकि जब अभिग्रह धारी उत्कृष्ट आचारी मुनि भी रात बासी रोटी और कूर आदि धान्य का ओदन लेते हैं तो सामान्य साधु ले इसमें किसी प्रकार की आगम बाधा नहीं आती है। बल्कि रसनेन्द्रिय के द्वारा स्वाद विजय होती है।

से किं तं रस-परिच्चाए ? रस-परिच्चाए अणेगविहे पण्णत्ते । तं जहा-णिच्चिगइए पणीय-रस-परिच्चाई आयंबिलए आयामसिथभोई अरसाहारे विरसाहारे अंताहारे पंताहारे लुहाहारे (तुच्छाहारे) से तं रसपरिच्चाए ।

भावार्थ - रस-परित्याग किसे कहते हैं ? रसपरित्याग के अनेक भेद हैं। जैसे १. विकृति अर्थात् घी, तेल, दूध, दही, गुड़-शक्कर से रहित आहार करने वाले, २. जिसमें से घी दूध चासनी आदि के बिन्दु टपकते हों ऐसे आहार को छोड़ने वाले ३. आयंबिलक (आचामाम्ल)—भिर्च-मसाले से रहित रोटी-भात आदि रूखा-सूखा अन्न या भुना हुआ अन्न, पानी में भिगोकर खाने वाले, ४. ओसामन और उसमें गिरे हुए कण आदि को लेने वाले ५. अरस - हिंग आदि से बिना छौंका हुआ आहार करने वाले ६. विरस - पुराना धान्य जो स्वभाव से ही स्वाद रहित हो गया हो-ऐसा आहार करने वाले ७. अन्त - हलकी जाति का वल्लादि अन्न का - आहार करने वाले ८. प्रान्त - खाने के बाद बचा हुआ वल्लादि अन्न का - आहार करने वाले और ९. रूक्ष - रूखा सूखा, जीभ को अप्रिय लगने वाला - आहार करने वाले अनगार भगवन्त थे। ये रसपरित्याग का स्वरूप है।

से किं तं कायकिलेसे ? कायकिलेसे अणेगविहे पण्णत्ते । तं जहा-ठाणडिइए उक्कुडु-आसणिए पडिमट्टाई वीरासणिए ।

भावार्थ - कायक्लेश किसे कहते हैं ? कायक्लेश के अनेक भेद हैं। जैसे - स्थानस्थितिक - खड़े या बैठे हुए एक आसन से स्थिर रहने वाले २. उत्कुटुकासनिक - पुट्टों को जमीन पर न टिकाते हुए, केवल पैरों पर ही बैठने की स्थिति से रहने वाले ३. मासिकी आदि बारह भिक्षु प्रतिमा को अंगीकार करने वाले ४. वीरासनिक - भूमि पर पैर रखकर, सिंहासन के समान बैठने की स्थिति से रहने वाले। जैसे - कोई पुरुष सिंहासन पर बैठा हुआ हो उसके नीचे से सिंहासन (कुरसी) निकाल लेने पर भी वह वैसी ही स्थिति में स्थिर रहे उस रूप में स्थित रहना। यह आसन बड़ा कठिन है।

णेसज्जिए दंडायए लगडसाई आयावए, अवाउडए, अकंडुयए धुय केस मंसु लोमे अण्डुहए सव्व-गाय-परिकम्म-विभूस-विप्पमुक्के । से तं कायकिलेसे ।

भावार्थ - ५ निषद्या-पुट्टे टिकाकर या पलांठी से बैठने वाले, दण्डायतिक-दण्डे की तरह सीधा लम्बा होकर स्थित रहना । लकुटशायी - टेडी लकड़ी के समान सोना (स्थित रहना अर्थात् मस्तक को तथा दोनों पैरों की एड़ियों को जमीन पर टिकाकर शरीर के मध्य भाग को ऊपर उठाकर सोना ऐसा करने से शरीर टेडी लकड़ी की तरह टेड़ा हो जाता है) ६. आतापना अर्थात् शीतादि से देह को तापित करने वाले ७. शरीर को वस्त्रादि से नहीं ढकने वाले ८. नहीं खुजालने वाले ९. नहीं थूकने वाले और १०. शरीर के सभी संस्कारों और विभूषा से मुक्त रहने वाले भगवान् के शिष्य थे । यह कायक्लेश का स्वरूप है ।

विवेचन - आतापना के तीन भेद हैं - १. उत्कृष्टा अर्थात् निष्पन्न (सोये हुए व्यक्ति की) आतापना २. मध्यमा अर्थात् अनिष्पन्न (बैठे हुए व्यक्ति की) आतापना ३. जघन्या अर्थात् ऊर्ध्वस्थिता (खड़े हुए व्यक्ति की) आतापना । इनके भी तीन-तीन भेद हैं । यथा - निष्पन्न-१. अधोमुखशायिता (आँधे मुख से सोकर ली जाने वाली) और २. पार्श्वशायिता-करवट से सो कर ली जाने वाली और ३. उत्तानशायिता (पीठ के बल-सीधे सोकर ली जाने वाली) आतापना । अनिष्पन्न - १. गोदोहिका (गाय दूहने की स्थिति में बैठकर ली जाने वाली) २. उत्कुटुकासनता (दोनों पैरों पर बैठकर ली जाने वाली) और ३. पर्यङ्कासनता (पलांठी से बैठकर ली जाने वाली) आतापना और ऊर्ध्वस्थिता- १. हस्तिशौण्डिका (दोनों कूल्हों को जमीन पर टिका कर बैठना और फिर एक पैर हाथी की सूंड की तरह ऊंचा रखना) २. एकपादिका (एक पैर से खड़े रहकर ली जाने वाली) और ३. समपादिका (सीधे खड़े रहकर ली जाने वाली) आतापना ।

से किं तं पडिसंलीणया ? पडिसंलीणया चउव्विहा पण्णत्ता । तं जहा-इंदिय-पडिसंलीणया, कसाय-पडिसंलीणया, जोग-पडिसंलीणया, विवित्त-सयणासण-सेवणया ।

भावार्थ - प्रतिसंलीनता किसे कहते हैं ? प्रतिसंलीनता के चार भेद कहे गये हैं । जैसे-१. इन्द्रियप्रतिसंलीनता - इंद्रियों की चेष्टाओं को रोकना २. कषायप्रतिसंलीनता - क्रोधादि कषायों को रोकना ३. योगप्रतिसंलीनता - योगों की प्रवृत्ति को रोकना और ४. विवित्त-शयनासन-सेवनता-स्त्री, पशु, पंडक (नपुंसक) रहित एकान्त स्थान में रहना ।

से किं तं इंदिय-पडिसंलीणया ? इंदिय-पडिसंलीणया पंचविहा पण्णत्ता ।

भावार्थ - इन्द्रियप्रतिसंलीनता किसे कहते हैं ? इन्द्रिय-प्रतिसंलीनता के पांच भेद कहे गये हैं ।

तं जहा-सोइंदिय-विसय-पयार-णिरोहो वा, सोइंदिय-विसयपत्तेसु अत्थेसु राग-दोस-णिग्गहो वा ।

भावार्थ - जैसे-१. श्रोत्रेन्द्रिय-कान के विषय-शब्द में प्रवृत्ति को रोकना अर्थात् शब्दों को नहीं सुनना अथवा श्रोत्रेन्द्रिय को प्राप्त हुए विषय में राग-द्वेष नहीं करना।

विवेचन - कान में शब्द नहीं पड़ने देना यह संभव नहीं है। किन्तु अपने कार्य की तल्लीनता, इन्द्रियों को अपने विषयों में प्रवृत्त होने से बहुत कुछ रोक सकती है। यदि कदाचित् प्रिय या अप्रिय शब्द कान में गिर भी गये हों तो उनके प्रति उदासीनता रखने से राग-द्वेष की प्रवृत्ति रुक सकती है।

चक्खिदिय-विसय-पयार-णिरोहो वा, चक्खिदिय-विसय-पत्तेसु अत्थेसु राग-दोस-णिग्गहो वा।

भावार्थ - २ चक्षु इन्द्रिय-आंख के विषय रूप में प्रवृत्ति को रोकना-अच्छे-बुरे रूप नहीं देखना अथवा चक्षुइन्द्रिय को प्राप्त हुए विषय में राग-द्वेष नहीं करना।

घाणिंदिय-विसय-पयार-णिरोहो वा, घाणिंदिय-विसय-पत्तेसु अत्थेसु राग-दोस-णिग्गहो वा।

भावार्थ - ३. घ्राणइन्द्रिय-नाक के विषय गंध में प्रवृत्ति को रोकना अथवा घ्राणइन्द्रिय को प्राप्त हुए अर्थ-गंध में राग-द्वेष नहीं करना।

जिब्भदिय-विसय-पयार-णिरोहो वा, जिब्भदिय-विसय-पत्तेसु अत्थेसु राग-दोस-णिग्गहो वा।

भावार्थ - ४. जिह्वा इन्द्रिय-जीभ के विषय में प्रवृत्ति को रोकना अथवा जिह्वा इन्द्रिय को प्राप्त हुए अर्थ-रस में राग-द्वेष नहीं करना।

फासिंदिय-विसय-पयार-णिरोहो वा, फासिंदिय-विसय-पत्तेसु अत्थेसु राग-दोस-णिग्गहो वा। से तं इंदिद्य-पडिसंलीणया।

भावार्थ - ५. स्पर्शन इन्द्रिय-त्वचा के विषय स्पर्श में प्रवृत्ति को रोकना अथवा स्पर्शन इन्द्रिय को प्राप्त हुए अर्थ-स्पर्श में राग-द्वेष नहीं करना। यह इन्द्रियप्रतिसंलीनता का स्वरूप है।

विवेचन - इन्द्रियों के अर्थ (शब्दादि) के साथ होने वाले सम्बन्ध को 'विषय' और उन विषयों में होने वाली प्रीति-अप्रीति को 'विकार' कहते हैं। इन्द्रियों को शून्य या स्तब्ध कर देना अथवा उन्हें नष्ट कर देना यह साधना-मार्ग नहीं है। इन्द्रियों की प्रवृत्ति पर अंकुश रखना ही सही साधना मार्ग है। इन्द्रियों को उनके अनुकूल विषयों को अधिक देने से उन पर काबू नहीं पाया जा सकता। इन्द्रियों का स्वच्छंद विचरण वैषयिक प्रवृत्ति है। किन्तु उन्हें आत्महितकर कार्यों में लगाना साधना है। इन्द्रियों का स्वभाव चपल है। अतः वे विषय की ओर दौड़ती रहती है। उस दौड़ को तेज होने से रोकने को ही 'प्रचारनिरोध' कहते हैं। अर्थात् इन्द्रियाँ तो अनायास ही 'विषययुक्त' बन जाती है। किन्तु उन विषयों के साथ आत्मा को नहीं जोड़ना चाहिए। अनुत्सुक भाव से इन्द्रियों को उनसे हटा लेना चाहिए। किन्तु अनायास ही जिन-अर्थों की

प्राप्ति हुई है या लाचारी से अर्थ प्राप्ति करनी पड़ती है, उनमें प्रीति या द्वेष के भाव नहीं करने को ही 'इन्द्रियनिग्रह' कहते हैं। जब 'विकार' का विष निकल जाता है, तब विषय 'अर्थ' मात्र रह जाते हैं। इन्द्रियप्रतिसंलीनता का आशय यही है कि 'अपने-अपने विषयों में दौड़ती हुई इन्द्रियों को खींच लेना' अर्थात् उनकी तल्लीनता के वेग को मोड़कर आत्मस्थ कर देना। अतः इसके मुख्यतः दो भेद हैं-१. विषयों के प्रति अनुत्सुकता और २. प्राप्त अर्थों में उदासीनता।

पांच इन्द्रियों के शब्दादि २३ विषय हैं। यथा-

श्रोत्रेन्द्रिय के ३ विषय-जीव शब्द, अजीव शब्द, मिश्र शब्द ये ३ शुभ और ३ अशुभ इन छह पर राग और छह पर द्वेष इस प्रकार १२ विकार।

चक्षुरिन्द्रिय के पांच विषय-काला, नीला, लाल, पीला और सफेद। ये ५ सचित्त, ५ अचित्त, ५ मिश्र ये १५ शुभ और १५ अशुभ इन ३० पर राग और ३० पर द्वेष। इस प्रकार ६० विकार।

घ्राणेन्द्रिय के दो विषय - सुरभिगन्ध और दुरभिगन्ध। ये २ सचित्त, २ अचित्त, २ मिश्र इन ६ पर राग और ६ पर द्वेष। इस प्रकार १२ विकार।

रसनेन्द्रिय के पांच विषय-तीखा, कड़वा, कषैला, खट्टा और मीठा। ये ५ सचित्त, ५ अचित्त, ५ मिश्र ये १५ शुभ और १५ अशुभ। इन ३० पर राग और ३० पर द्वेष। इस प्रकार ६० विकार।

स्पर्शनेन्द्रिय के आठ विषय-कर्कश (खुरदरा), मृदु (कोमल), लघु (हलका) गुरू (भारी), शीत (ठण्डा), उष्ण (गर्म), रूक्ष (लूखा) और स्निग्ध (चिकना)।

ये ८ सचित्त, ८ अचित्त, ८ मिश्र ये २४ शुभ और २४ अशुभ इन ४८ पर राग और ४८ पर द्वेष। इस प्रकार ९६ विकार।

प्रश्न - विषय किसे कहते हैं ?

उत्तर - इन्द्रियाँ जिसको ग्रहण करती है, उसे विषय कहते हैं।

प्रश्न - शरीर में खुरदरा आदि क्या है ?

उत्तर - शरीर में खुरदरा-पैर की एडी, कोमल-गले का तालु, हलका-केश, भारी-हड्डियाँ, ठंडा-कान की लोल, गर्म-कलेजा, रूक्ष (लूखा)-जीभ, स्निग्ध (चिकनी)-आंख की कीकी।

प्रश्न - विकार किसे कहते हैं ?

उत्तर - विषयों पर राग द्वेष की भावना को विकार कहते हैं।

प्रश्न - इन्द्रियों के विषय से कर्म बन्ध होता है या विकार से ?

उत्तर - इन्द्रियाँ अपने-अपने विषय को ग्रहण करें, यह उनका स्वभाव है, उससे कर्मबन्ध नहीं होता है। किन्तु उनमें राग-द्वेष करने रूप विकार से कर्मबन्ध होता है, उस विषय में आचारांग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध के पन्द्रहवें अध्ययन में कहा है कि -

ण सक्का ण सोउं सहा, सोयविसयमागया।

राग दोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू पडिवज्जा ॥

अर्थ - शब्द कान में न पड़े यह तो संभव नहीं है, क्योंकि शब्दों को सुनना यह श्रोत्रेन्द्रिय का विषय है, इसलिए शब्द तो कान में पड़ेंगे ही इससे कर्मबन्ध का कारण नहीं होता है, किन्तु मनोज्ञ शब्दों पर राग करने से और अमनोज्ञ शब्दों पर द्वेष करने से कर्मबन्ध होता है क्योंकि राग-द्वेष करना कर्मबन्ध का कारण होता है, यही बात दूसरी इन्द्रियों के बारे में भी समझना चाहिए। रूप चक्षु का विषय बनता है। गन्ध घ्राणेन्द्रिय का, रस रसनेन्द्रिय का और स्पर्श स्पर्शनेन्द्रिय का विषय बनता है। इससे कर्मबन्ध नहीं होता किन्तु मनोज्ञ रूप, गन्ध, रस और स्पर्श पर राग भाव करने से तथा अमनोज्ञ रूप, गन्ध, रस और स्पर्श पर द्वेष करने से कर्मबन्ध होता है।

उत्तराध्ययन सूत्र के ३२ वें अध्ययन में भी इसका विस्तृत वर्णन है।

से किं तं कसाय-पडिसंलीणया ? कसाय-पडिसंलीणया चउव्विहा पण्णत्ता ।

भावार्थ - कषाय प्रतिसंलीनता किसे कहते हैं ? कषाय प्रतिसंलीनता के चार भेद कहे गये हैं।

तं जहा-कोहस्सुदय-णिरोहो वा उदय-पत्तस्स वा कोहस्स विफलीकरणं ।

भावार्थ - जैसे-१. क्रोध के उदय को रोकना या उदय में आये हुए क्रोध को निष्फल करना।

माणस्सुदय-णिरोहो वा उदय-पत्तस्स वा माणस्स विफलीकरणं ।

भावार्थ - २. मान के उदय को रोकना या उदय में आये हुए मान को निष्फल करना।

माया-उदय-णिरोहो वा उदय-पत्ताए वा मायाए विफलीकरणं ।

भावार्थ - ३. माया के उदय को रोकना या उदय में आई हुई माया को निष्फल करना।

लोहस्सुदय-णिरोहो वा उदय पत्तस्स वा लोहस्स विफलीकरणं । से तं कसाय-पडिसंलीणया ।

भावार्थ - ४. लोभ के उदय को रोकना या उदय में आये हुए लोभ को निष्फल करना। यह कषाय प्रतिसंलीनता का स्वरूप है।

विवेचन - क्या संसारी और क्या साधक, सभी के जीवन में आवेशों को रोकने का प्रश्न उठता रहता है। क्योंकि आवेश बनते हुए कार्यों को बिगाड़ देते हैं। आवेशों के वशीभूत नहीं होना सहज नहीं है। बड़े-बड़े साधक भी इनके चक्कर में फंस जाते हैं। फिर साधारण मनुष्यों की तो बात ही क्या ? एक तरफ से इन्हें रोका जाता है, तो दूसरी तरफ से दूसरे विविध रूपों में प्रकट होते हैं। किन्तु दृढ़ मनोबली साधक इनसे हारता नहीं है। वह कषायों के विरोधी भावों में स्थिर होने का अभ्यास करता रहता है। उसे ही कषाय प्रतिसंलीनता कहते हैं।

कषाय-प्रतिसंलीनता के साधारणतः दो रूप हैं - १. उदय-निरोध और २ उदय विफलीकरण। क्रोधादि की अनिष्टता के भावों का विचार करना, इन्हें नहीं करने का बार-बार सङ्कल्प करना, अक्रोधादि गुणों से होने वाले लाभों को बार-बार याद करना, क्रोधादि के निमित्तों को सन्मुख नहीं

आने देना, जैसे अपने अधीन व्यक्तियों को दृढ़ता पूर्वक आदेश दिये जाते हैं, वैसे ही अपने-आपको इन्हें नहीं करने का आदेश देना, त्रिकाल महापुरुषों की शरण-ग्रहण पूर्वक इन अध्यात्म-दोषों की निन्दा-भर्त्सना करना और गुणीजनों के गुणों की प्रशंसा करते हुए उन गुणों की प्राप्ति की कामना करना आदि को 'उदयनिरोध' कहते हैं। क्रोधादि का उदय होने पर उन भावों से योगों को हटा लेना, उन भावों से विपरीत भावों को धारण करना, जैसे-क्रोध आने पर, क्षमा के-मैत्री के भाव धारण करना, इसी तरह मान के विरोधी मार्दव-नम्रता विनय भाव, माया के विरोधी ऋजुता-सरलता भाव और लोभ के विरोधी संतोष भाव से युक्त योगों को धारण करना आदि से 'उदय विफलिकरण' होता है।

से किं तं जोग-पडिसंलीणया ? जोग-पडिसंलीणया तित्रिहा पण्णत्ता । तं जहा-मण-जोगपडिसंलीणया, वय-जोगपडिसंलीणया, काय-जोगपडिसंलीणया ।

भावार्थ - योग प्रतिसंलीनता किसे कहते हैं ? - योग प्रतिसंलीनता के तीन भेद कहे गये हैं। जैसे - १. मनोयोग-प्रतिसंलीनता, २. वचन योग प्रतिसंलीनता और ३. काय योग प्रतिसंलीनता।

से किं तं मण-जोगपडिसंलीणया ? मण-जोगपडिसंलीणया अकुसल-मणणिरोहो वा, कुसल-मण-उदीरणं वा । से तं मण-जोगपडिसंलीणया ।

भावार्थ - मनोयोग प्रतिसंलीनता किसे कहते हैं ? - अकुशल मन का निरोध-बुरे विचारों को नहीं आने देना या कुशल मन की उदीरणा करना-शुभ विचारों का अभ्यास करना, यह मनोयोग प्रतिसंलीनता-मन की एकाग्रता का अभ्यास है।

से किं तं वय-जोगपडिसंलीणया ? वय-जोगपडिसंलीणया अकुसल-वयणिरोहो वा, कुसल-वय-उदीरणं वा । से तं वय-जोगपडिसंलीणया ।

भावार्थ - वचन योग प्रतिसंलीनता किसे कहते हैं ? अकुशल- अशुभ वचन का निरोध करना, अशुभ वचन की प्रवृत्ति को रोकना या कुशल वचन की उदीरणा करना, शुभ वचन का अभ्यास करना, यह वचन योग प्रतिसंलीनता-वाणी एक रूपता की साधना है।

से किं तं काय-जोगपडिसंलीणया ? कायजोग-पडिसंलीणया जण्णं सुसमाहिय-पाणिपाए कुम्पो इव गुत्तिंदिए सव्व-गाय-पडिसंलीणे चिट्ठइ । से तं काय जोगपडिसंलीणया । (से तं जोगपडिसंलीणया) ।

भावार्थ - काय योग प्रतिसंलीनता किसे कहते हैं ? हाथ पैर को स्थिर करके कछुए के समान इन्द्रियों को गुप्त करके, सारे शरीर के अंगों को संवृत्त करके बैठना काय योग प्रतिसंलीनता- कायिक एकाग्रता की साधना है।

विवेचन - दैनिक कार्यों में प्रायः योगों की प्रवृत्ति अस्त-व्यस्त और बिखरी हुई रहती है और कभी-कभी मनुष्य अनिद्रा आदि रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं। क्योंकि गलत और वृथा प्रवृत्ति के कारण

मन आदि को विश्रान्ति नहीं मिलती है। वैषयिकता के कारण योगों में तनाव बना रहता है। जिससे मनुष्य चिड़चिड़ा उतावला और बावला बन जाता है। तब वह अपने सांसारिक कार्यों को भी ठीक से नहीं कर पाता-साधना की तो बात ही दूर रही। जीव अनादि काल से योग-प्रवृत्ति करता रहता है। प्रवृत्ति की अतिशयता में आत्मानुभव होना सहज नहीं है। अतः योगों के प्रवृत्ति-जनित तनाव को दूर करने के लिये-उनकी क्रिया व्यवस्थिता और शक्ति शालिनी बनाने के लिये-उन्हें शिथिल करना पड़ता है। यह कार्य 'योग-प्रतिसंलीनता' से सम्पादित होता है। 'काययोग प्रतिसंलीनता' के साथ-साथ जब मन योग प्रतिसंलीनता और वचन योग प्रतिसंलीनता का अभ्यास दृढ़ होकर सहज बनने लगता है, तब अनुपम शान्ति का अनुभव होता है और प्रवृत्ति व्यवस्थित बनती जाती है। बड़े-बड़े रोगों का भी शमन हो सकता है। आधुनिक मानस शास्त्रियों का 'शिथिलीकरण' इससे साम्य रखता है।

से किं तं विवित्त-सयणासण-सेवणया ? विवित्त-सयणासण सेवणयाए जं णं आरामेसु उज्जाणेसु देवकुलेसु सभासु पवासु पणियगिहेसु पणियसालासु-इत्थी-पसु-पंडग-संसत्त-विरहियासु वसहीसु फासु-एसणिज्ज-पीढ फलग-सेज्जा-संथारगं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ। से तं पडिसंलीणया। से तं बाहिरए तवे।

भावार्थ - विवित्त-शयनासन-सेवनता किसे कहते हैं? आराम-पुष्प प्रधानवन फूलवाडी, उद्यान-फूल-फलादि से युक्त महावृक्षों का समुदाय-बगीचा, देवकुल-छतरियाँ या मन्दिर-सभागृह लोगों के बैठने का स्थान, प्रपा-जलदान स्थान-प्याउएँ, पणितगृह- बर्तन आदि रखने के घर-गोदाम, पणितशाला, बहुत-से ग्राहक खरीददार और दायक-व्यापारी जनों के योग्य घर विशेष-जो कि स्त्री, पशु, पंडग-नपुंसक की संसक्तता अर्थात् युक्तता से रहित हो, ऐसे स्थानों में निर्दोष और निर्जीव अर्थात् संयमी जीवन में ग्रहण करने योग्य पीठ, फलक-पट्टिये, शय्या-चैर फैलाकर सो सके ऐसा बिछौना, संस्तारक, शय्या से छोटा तृणादि का बिछौना को प्राप्त करके विचरने को विवित्त-शयनासन-सेवनता कहते हैं। यह प्रतिसंलीनता का स्वरूप है। यह बाह्य तप का स्वरूप पूर्ण हुआ।

आभ्यन्तर-तप

२०- से किं तं अर्ब्भितरए तवे ? अर्ब्भितरए तवे छव्विहे पण्णत्ते। तं जहा - पायच्छित्तं, विणओ, वेयावच्चं, सज्झाओ, ज्ञाणं, विउस्सग्गो।

भावार्थ - आभ्यन्तर तप किसे कहते हैं ? आभ्यन्तर तप के छह भेद कहे गये हैं। जैसे
 १. प्रायश्चित्त - अतिचार आदि की विशुद्धि २. विनय - कर्म दूर हटाने के लिये नम्रता युक्त प्रवृत्ति
 ३. वैयावृत्य - आहारादि से संयमियों की सेवा ४. स्वाध्याय - शुद्ध ज्ञान का मर्यादा से युक्त पठन-पाठन ५. ध्यान - एकाग्र शुभ चिन्तन या चित्तवृत्ति-निरोध और ६. व्युत्सर्ग - हेय का त्याग।

विवेचन - साधक के जागृत रहते हुए भी साधना में किसी न किसी प्रकार के दूषण लग ही जाते हैं। उन दोषों के कारण उसके हृदय में पश्चात्ताप होता है। उनकी शुद्धि करना चाहता है। अतः वह गुरुजनों के समक्ष नतमस्तक होकर, शुद्धि के उपायों को पूछता है। इस प्रकार दो आभ्यन्तर तपों का क्रम बनता है। पहला प्रायश्चित्त और दूसरा विनय। जो विनयवान् होता है, वैयावृत्य कर सकता है। वैयावृत्य से इतर समय में स्वाध्याय की जाती है। स्वाध्याय करते हुए एकाग्र-चिन्तन होता है-ध्यान-दशा की प्राप्ति होती है। शुभ ध्यान से ही हेय का त्याग-व्युत्सर्ग होता है। यह आभ्यन्तर-तप के क्रम-विधान का रहस्य है।

से किं तं पायच्छित्ते ? पायच्छित्ते दसविहे पण्णत्ते ।

भावार्थ - प्रायश्चित्त किसे कहते हैं ? प्रायश्चित्त के दस भेद कहे गये हैं।

तं जहा-आलोयणारिहे १

भावार्थ - जैसे-१. आलोचनार्ह - दोषों को प्रकट करने से होने वाला प्रायश्चित्त अर्थात् विशुद्धि के लिये गुरु से निवेदन करना।

विवेचन - भिक्षा, स्थंडिल, गमनागमन, प्रतिलेखना आदि दैनिक कृत्यों में लगने वाले दोषों के विषय में यह प्रायश्चित्त किया जाता है। गुरु या रत्नाधिक के समीप में अपने दोषों को निष्कपट भाव से प्रकट किया जाता है। इसीलिए इससे होने वाली विशुद्धि को भी 'आलोचनार्ह' कहा है।

पडिक्कमणारिहे २,

भावार्थ - प्रतिक्रमण - पाप से पीछे लौटने से होने वाला प्रायश्चित्त प्रतिक्रमणार्ह है।

विवेचन - पांच समिति, तीन गुप्ति के सम्बन्ध में सहसाकार आदि से लगने वाले दोषों के विषय में यह प्रायश्चित्त है। इसमें 'मिच्छा मि दुक्कडं' दिया जाता है अर्थात् 'मेरा दुष्कृत पाप मिथ्या हो-निष्फल हो। आदि चिन्तन पूर्वक दोषों के विषय में पश्चात्ताप होता है।

तदुभयारिहे ३,

भावार्थ - आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों से होने वाला प्रायश्चित्त तदुभयार्ह होता है।

विवेचन - निद्रावस्था में साधारण दुःस्वप्न से महाव्रतों में दोष लगे हैं-ऐसी शङ्का आदि दोषों के विषय में यह प्रायश्चित्त है। जिसमें गुरु के समक्ष आलोचना पूर्व 'मिथ्यादुष्कृत' दिया जाता है।

विवेगारिहे ४,

भावार्थ - परठना रूप त्याग के द्वारा होने वाला प्रायश्चित्त विवेकार्ह कहलाता है।

विवेचन - अनजान में आधाकर्म आदि दोष से युक्त आहारदि आ जाय और यह बात विदित हो जाय, तब उसे उपभोग में न लेकर परठ देने से यह प्रायश्चित्त होता है।

विउस्सगारिहे ५,

भावार्थ - कायोत्सर्ग के द्वारा होने वाला प्रायश्चित्त व्युत्सर्गाह कहलाता है।

विवेचन - उच्चार आदि के परिष्ठापन में, नदी उतरने आदि में विवशतावश लगे हुए दोषों की शुद्धि के लिये यह प्रायश्चित्त है। जिसमें विभिन्न दोषों के लिये, विभिन्न प्रमाण युक्त श्वास-उच्छ्वास के कायोत्सर्ग विहित हैं। जैसे स्वप्नादि में लगे हुए दोषों के लिए १०० या १०८ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग-शरीर को निश्चल रखना।

तवारिहे ६,

भावार्थ - तप के द्वारा होने योग्य विशुद्धि तपाह कहलाता है।

विवेचन - सचित्त वस्तु के स्पर्श से, आवश्यकी आदि समाचारी को नहीं करने से, प्रतिलेखना-प्रमार्जना आदि नहीं करने से लगे हुए दोषों की विशुद्धि के लिये बाह्यतप अनशनादि रूप प्रायश्चित्त होता है।

छेदारिहे ७,

भावार्थ - छेद-दीक्षापर्याय को कम करने से होने वाली विशुद्धि छेदाह कहलाती है।

विवेचन - सचित्त पृथ्वी आदि की विराधना और प्रतिक्रमण नहीं करने आदि से लगे हुए दोषों की शुद्धि के हेतु छेद-दीक्षाकाल को घटा देना-दिया जाता है।

मूलारिहे ८,

भावार्थ - महाव्रतों की फिर स्थापना के द्वारा होने वाला प्रायश्चित्त मूलाह कहलाता है।

विवेचन - तीन बार प्रायश्चित्त स्थान के सेवन, हस्तकर्म, मैथुन, रात्रिभोजन आदि के द्वारा चारित्र-भंग और किसी भी महाव्रत का जानबूझ कर भंग करने पर, जो पुनः नई दीक्षा दी जाती है, उसे 'मूलाह' प्रायश्चित्त कहते हैं।

अणवट्टुप्पारिहे ९,

भावार्थ - प्रायश्चित्त रूप में दिये हुए अमुक प्रकार के विशिष्ट तप को जब तक न करले तब तक उसका सम्बन्धविच्छेद रखना और गृहस्थभूत बनाकर वापिस दीक्षा भी नहीं देना-अनवस्थाप्याह प्रायश्चित्त कहलाता है।

विवेचन - इस प्रायश्चित्त के आने के तीन बड़े कारण हैं जो कि ठाणांग सूत्र के तीसरे ठाणे में और बृहत्कल्प के चौथे उद्देशे में बताये हैं।

पारंचियारिहे १०। से तं पायच्छित्ते।

भावार्थ - सम्बन्ध विच्छेद करके तप विशेष कराने के बाद गृहस्थभूत बना कर महाव्रत स्थापना के द्वारा होने वाला प्रायश्चित्त-पारञ्चित्ताह कहलाता है। यह प्रायश्चित्त का स्वरूप है।

विवेचन - इसके तीन कारण भी ठाणांग सूत्र के तीसरे ठाणे में और बृहत्कल्प के चौथे उद्देशे में बतलाये गये हैं।

से किं तं विणए ? विणए सत्तविहे पणत्ते । तं जहा-णाणविणए, दंसणविणए, चरित्तविणए, मणविणए, वइविणए, कायविणए, लोगोवयारविणए ।

भावार्थ - विनय किसे कहते हैं ? विनय के सात भेद कहे गये हैं । जैसे-१. ज्ञानविनय २. दर्शनविनय ३. चरित्रविनय, ४. मनोविनय ५. वचनविनय ६. कायविनय और ७. लोकोपचार विनय—लोकव्यवहार से सम्बन्धित आत्मगुण-पोषक नम्र आचरण ।

से किं तं णाणविणए ? णाणविणए पंचविहे पणत्ते । तं जहा-आभिणिबोहियणाणविणए, सुय-णाणविणए, ओहिणाणविणए, मणपज्जव-णाण-विणए, केवलणाणविणए । से तं णाणविणए ।

भावार्थ - ज्ञानविनय किसे कहते हैं ? ज्ञानविनय के पांच भेद कहे गये हैं । जैसे-१. आभिनिबोधिक ज्ञान-मतिज्ञान विनय, २. श्रुतज्ञान विनय ३. अवधिज्ञान विनय ४. मनःपर्यदज्ञान विनय और ५. केवलज्ञान विनय । इन ज्ञानों को यथार्थ मानते हुए इनके लिए यथा शक्ति पुरुषार्थ करना ज्ञान विनय कहलाता है ।

से किं तं दंसणविणए ? दंसणविणए दुविहे पणत्ते । तं जहा-सुस्सुसणाविणए, अणच्चासायणा-विणए ।

भावार्थ - दर्शन विनय किसे कहते हैं ? दर्शन विनय के दो भेद कहे गये हैं । जैसे-१. शुश्रूषणाविनय और २. अनत्याशातना विनय ।

से किं तं सुस्सुसणाविणए ? सुस्सुसणाविणए अणीगविहे पणत्ते । तं जहा-अब्भुट्टाणे इ वा, आसणाभिग्गहे इ वा, आसणप्पदाणे इ वा ।

भावार्थ - शुश्रूषणा विनय - सम्यक् श्रद्धा युक्त का अविरुधी सेवा रूप विनम्र आचरण-किसे कहते हैं ? शुश्रूषणा विनय के अनेक भेद कहे गये हैं । जैसे-१. गुरुजन या गुणाधिक के अपने समीप आने पर, उन्हें आदर देने के लिये खड़े होना २. जहाँ जहाँ गुरुजन की बैठने की इच्छा हो, वहाँ वहाँ आसन ले जाना और ३. उन्हें आसन देना ।

सक्कारे इ वा, सम्माणे इ वा किइकम्मे इ वा, अंजलिपग्गहे इ वा ।

भावार्थ - ४. सत्कार देना-वस्त्रादि से निमन्त्रित करना ५. सन्मान-बड़प्पन देना ६. विधि सहित वन्दना-नमस्कार करना ७. स्वीकृति या अस्वीकृति करते समय हाथ जोड़ना ।

एंतस्स अणुगच्छणया, ठियस्स पज्जुवासणया, गच्छंतस्स पडिसंसाहणया । से तं सुस्सुसणाविणए ।

भावार्थ - आते हुए गुरुजन के सामने जाना, ९. बैठे हुए की पर्युणसना और १०. जाते हुए को पहुँचाने जाना । यह शुश्रूषणा विनय है ।

से किं तं अणच्चासायणा विणए ? अणच्चासायणा विणए पणतालीसविहे पणणत्ते । तं जहा-अरिहंताणं अणच्चसायणया, अरिहंतपणणत्तस्स धम्मस्स अणच्चासायणया ।

भावार्थ - अनत्याशातना विनय किसे कहते हैं ? अनत्याशातना विनय के पैंतालीस भेद कहे गये हैं । १. अरिहन्त की आशातना नहीं करना अर्थात् तीर्थकर भगवान् का अवर्णवाद नहीं बोलना २. अरिहन्त भगवान् के द्वारा कहे गये धर्म की आशातना नहीं करना अर्थात् अवर्णवाद नहीं बोलना ।

आयरियाणं अणच्चासायणया, एवं उवज्झायाणं थेराणं कुलस्स गगस्स संघस्स किरियाणं संभोगियस्स ।

भावार्थ - ३. आचार्यों की आशातना नहीं करना, इसी प्रकार ४ उपाध्यायों की ५. स्थविरों - ज्ञानचारित्रवय वृद्धों की ६. कुल की ७. गण की ८. संघ - साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध संघ की ९. क्रियावान् की १०. सांभोगिक- जिसके साथ वन्दना आदि व्यवहार किया जाता हो, उस गच्छ के साधु या एक समाचारी वाले की आशातना नहीं करना ।

आभिणिबोहियणाणस्स सुयणाणस्स ओहि-णाणस्स मणपज्जवणाणस्स केवलणाणस्स ।

भावार्थ - ११ मतिज्ञान की १२. श्रुतज्ञान की १३. अवधिज्ञान की १४. मनःपर्यवज्ञान की और १५. केवलज्ञान की आशातना नहीं करना ।

एएसिं चेव भत्ति-बहुमाणे, एएसिं चेव वण्णसंजलणया । से तं अणच्चासायणा-विणए ।

भावार्थ - १६ से ३० इन पन्द्रह की भक्ति-सेवा विनय बहुमान गुणानुराग का ऐसा तीव्र भावावेश-जिसमें पूज्य के प्रति सर्वस्व समर्पण कर देने की भावना रहती है करना और ३१ से ४५ इन पन्द्रह के यश को प्रकाशित करना-फैलाना । यह अनत्याशातना या अनाशातना विनय का स्वरूप है ।

से किं तं चरित्तविणए ? चरित्तविणए पंचविहे पणणत्ते ।

भावार्थ - चारित्र विनय किसे कहते हैं ? चारित्र विनय के पांच भेद कहे गये हैं ।

तं जहा-सामाइय-चरित्तविणए, छेओवट्ठावणिय-चरित्तविणए, परिहारविसुद्धि-चरित्तविणए, सुहुम-संपराय-चरित्तविणए, अहक्खाय-चरित्तविणए । से तं चरित्तविणए ।

भावार्थ- जैसे-१. सामायिक चारित्र विनय २. छेदोपस्थापनीय चारित्र विनय ३. परिहार-विशुद्धि चारित्र विनय ४. सूक्ष्म सम्पराय चारित्र विनय और ५. यथाख्यात चारित्र विनय । यह चारित्र विनय है ।

से किं तं मणविणए ? मणविणए दुविहे पणणत्ते । तं जहा-पसत्थमणविणए, अपसत्थमणविणए ।



भावार्थ - मनोविनय किसे कहते हैं ? मनोविनय के दो भेद कहे गये हैं। जैसे - १. प्रशस्त - अच्छा मनोविनय और २. अप्रशस्त - बुरा मनोविनय।

से किं तं अपसत्थमणविणए ? अपसत्थमणविणए जे य मणे सावज्जे सकिरिए सकक्कसे कडुए णिडुरे फरुसे अण्हयकरे छेयकरे भेयकरे परितावणकरे उह्वणकरे भूओवघाइए, तहप्पगारं मणो णो पहारेज्जा। से तं अपसत्थ मणोविणए।

भावार्थ - अप्रशस्त मनोविनय किसे कहते हैं ? जो मन १. सावद्य - पापमय २. सक्रिय - कायिकी आदि क्रियायुक्त ३. सकर्कश ४. कटुक ५. निष्ठुर - कठोर ६. परुष - स्नेहरहित ७. आस्रवकारी - अशुभ कर्म को ग्रहण करने वाला ८. छेदकर- अंगादि को काटने के भाव करने वाला ९. भेदकर - अंगादि को बिंधने के भाव करने वाला, १०. परितापनकर - प्राणियों को संतापित करने के भाव वाला, ११. उद्रवणकर - मारणान्तिक वेदनाकारी या धन हरणादि उपद्रवकारी और १२. भूतोपघातिक- जीवों के घात की भावना वाला हो-ऐसे मन को धारण नहीं करना, अप्रशस्त मनोविनय है। यह अप्रशस्त मनोविनय है।

से किं तं पसत्थमणोविणए ? पसत्थमणोविणए तं चेव पसत्थं णोयव्वं। एवं चेव वइविणओ वि एएहिं पएहिं चेव णोअव्वो। से तं वइविणए।

भावार्थ - प्रशस्त मनोविनय किसे कहते हैं ? इसी प्रकार प्रशस्त मनोविनय का स्वरूप भी समझना चाहिए। इसी प्रकार वचन-विनय भी इन्हीं पदों के द्वारा समझ लेना चाहिए। यह वचन-विनय है। अर्थात् मन और वचन की शुभ प्रवृत्ति करना।

विवेचन - प्रशस्त मनोविनय, अप्रशस्त से विपरीत स्वरूप वाला है। अर्थात् १. असावद्य २. निष्क्रिय ३. अकर्कश ४. अकटुक - मधुर ५. अनिष्ठुर - कोमल ६. अपरुष-करुणामय ७. अनास्रवकारी ८. अछेदकर ९. अभेदकर १०. अपरितापनकर ११. दयार्द्र और १२ जीवों के प्रति साताकारी मन को धारण करना-प्रशस्त मनो-विनय है। मन-विनय की तरह वचन-विनय के भी भेद समझ लेना चाहिए अर्थात् सावद्यादि वचन छोड़ना और असावद्यादि वचन बोलना।

से किं तं कायविणए ? कायविणए दुविहे पण्णत्ते। तंजहा-पसत्थकायविणए अपसत्थकायविणए।

भावार्थ - कायविनय किसे कहते हैं ? कायविनय के दो भेद कहे गये हैं। जैसे-१. प्रशस्त कायविनय और २. अप्रशस्त कायविनय।

से किं तं अपसत्थकायविणए ? अपसत्थकायविणए सत्तविहे पण्णत्ते।

भावार्थ - अप्रशस्त कायविनय किसे कहते हैं ? अप्रशस्त कायविनय के सातभेद कहे गये हैं।

तं जहा-अणाउत्तं गमणे, अणाउत्तं ठाणे, अणाउत्तं णिसीयणे, अणाउत्तं तुयट्टणे,

प्रसन्न रहते हैं। ज्ञानादि के लिये सेवाभक्ति करने पर, गुरुजनों को और स्वयं को चित्त-प्रसाद होता है। जिससे ज्ञानादि की प्राप्ति सुगम बनती है। दुःखी साधु पुरुषों से सुख-दुःख की बात पूछने पर, उन्हें असह्यपन की अनुभूति नहीं होती है और स्वयं को भी, उनके दुःख में हिस्सा बंटाने से, मधुर शान्ति का अनुभव होता है। देश-कालज्ञता और सर्वार्थ में अप्रतिलोमता से स्व-पर का कल्याण सहज में साधा जा सकता है।

से किं तं वेयावच्चे ? - वेयावच्चे दसविहे पणत्ते ।

भावार्थ - वैयावृत्य—भात-पानी आदि से सेवा करना किसे कहते हैं ? - वैयावृत्य के दस भेद कहे गये हैं।

तं जहा-आयरियवेयावच्चे १, उवज्जायवेयावच्चे २, सेहवेयावच्चे ३, गिलाणवेयावच्चे ४, तवस्सिवेयावच्चे ५, थेरवेयावच्चे ६, साहम्मियवेयावच्चे ७, कुलवेयावच्चे ८, गणवेयावच्चे ९, संघवेयावच्चे १०, से तं वेयावच्चे ।

भावार्थ - जैसे-१. आचार्य की वैयावृत्य २. उपाध्याय की ३ शैक्ष - नवदीक्षित की ४. ग्लान - पीडित की ५. तपस्वी - अष्टम आदि करने वाले की ६ स्थविर - वय आदि से वृद्ध की ७ साधर्मिक साधु या साध्वी की ८ कुल - गच्छों के समुदाय की ९. गण - कुलों के समुदाय की और १०. संघ - गणों के समुदाय की वैयावृत्य - सेवा। यह वैयावृत्य का स्वरूप है।

विवेचन - भगवती सूत्र आदि में बतलाया गया है कि एक आचार्य के या एक गुरु के शिष्यों को कुल कहते हैं और कुलों के समुदाय को गण और गणों के समुदाय को संघ कहते हैं।

से किं तं सज्जाए ? सज्जाए पंचविहे पणत्ते ।

तं जहा-वायणा १, पडिपुच्छणा २, परियट्टणा ३, अणुप्पेहा ४, धम्मकहा ५ ।
से तं सज्जाए ।

भावार्थ - स्वाध्याय किसे कहते हैं ? स्वाध्याय के पांच भेद कहे गये हैं। जैसे-१. वाचना - सूत्रों का पढ़ना-पढ़ाना २. प्रतिपृच्छना - शंका-समाधान ३. परिवर्तना - सीखे हुए ज्ञान की पुनरावृत्ति करना ४. अनुप्रेक्षा - सूत्र के अवलम्बन से युक्त चिन्तन-मनन करना और ५. धर्मकथा करना अर्थात् धर्मोपदेश देना। यह स्वाध्याय का स्वरूप है।

से किं तं ज्ञाणे ? ज्ञाणे चउत्तिहे पणत्ते । तं जहा-अट्टज्जाणे १, रुद्धज्जाणे २, धम्मज्जाणे ३, सुक्क-ज्जाणे ४ ।

भावार्थ - ध्यान - एकाग्रचिन्तन किसे कहते हैं ? ध्यान चार तरह का कहा गया है। जैसे-१. आर्त्त - रागादि भावना से युक्त ध्यान २. रौद्र - हिंसा आदि भावना से युक्त ध्यान ३. धर्म- धर्मभावना से युक्त ध्यान और ४. शुक्ल - निरञ्जन-शुद्ध ध्यान।

अट्टञ्जाणे चउव्विहे पण्णत्ते । तंजहा-अमणुण्ण-संपओगसंपउत्ते, तस्स विप्पओग-स्सइ-समण्णागए यावि भवइ १, मणुण्ण-संपओग-संपउत्ते, तस्स अविप्पओग-स्सइ-समण्णागए यावि भवइ २ ।

भावार्थ - आर्त्तध्यान के चार भेद कहे गये हैं। जैसे १. अमनोज्ञ - मन को नहीं भाने वाले साधनों के प्राप्त होने पर उनके वियोग की स्मृति-दूर हटाने के लिए लगातार चिन्तन करना २. मनोज्ञ-मन को प्रिय लगाने वाले साधनों के प्राप्त होने पर, उनके अवियोग की स्मृति-सदा अपने पास सुरक्षित बने रहने का लगातार चिन्तन करना।

आयंक-संपओग-संपउत्ते, तस्स विप्पओग-स्सइ-समण्णागए यावि भवइ ३, परि-जूसिय-काम-भोग संपओग-संपउत्ते, तस्स अविप्पओग-स्सइ-समण्णागए यावि भवइ ४ ।

भावार्थ - ३ आतङ्क - रोगों के आने पर उनके वियोग की स्मृति से युक्त होना और ४ सेवित और प्रीतिकर काम भोगों की प्राप्ति होने पर उनके अवियोग की स्मृति से युक्त होना।

अट्टस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता । तंजहा-कंदणया १, सोयणया २, तिप्पणया ३, विलवणया ४ ।

भावार्थ - आर्त्तध्यान के चार लक्षण कहे गये हैं। जैसे - १. क्रन्दनता - जोरों से रोना २. शोचनता - दीनता ३. तेपनता- आंसू गिरना और ४. विलपनता - बिलखना, चित्त को बलेश पहुँचाने वाले वचन बारम्बार बोलना अर्थात् विलाप करना।

रुह्ज्जाणे चउव्विहे पण्णत्ते । तंजहा-हिंसाणुबंधी १, मोसाणुबंधी २, तेणाणुबंधी ३, सारक्खणाणुबंधी ४

भावार्थ - रौद्रध्यान के चार भेद कहे गये हैं। जैसे - १. हिंसानुबन्धी - हिंसा से सम्बन्धित एकाग्र चिन्तन २. मृषानुबन्धी- असत्य से सम्बन्धित एकाग्र चिन्तन ३. स्तेनानुबन्धी - चौर्य कर्म से सम्बन्धित एकाग्र चिन्तन और ४. संरक्षणानुबन्धी - धनादि के रक्षण के सम्बन्धित भयङ्कर चिन्तन या किसी को कैदखाना आदि में डलवाने सम्बन्धी चिन्तन।

रुह्स्स झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता । तंजहा-उसण्णदोसे १, बहुदोसे २, अण्णाणदोसे ३, आमरणंतदोसे ४ ।

भावार्थ - रौद्रध्यान के चार लक्षण कहे गये हैं। यथा- १. ओसन्न दोष - हिंसा आदि दोषों में से किसी भी दोष में, अधिकता से लगातार लगे रहना-उनसे जरा भी अप्रीति नहीं होना २. बहुदोष - हिंसादि बहुत-से या सभी दोषों में प्रवृत्ति करना ३. अज्ञानदोष - कुशास्त्र के संस्कार से, अधर्म स्वरूप

हिंसादि में, धर्मबुद्धि से प्रवृत्ति करना ४. आमरणान्तदोष - मरण पर्यंत दोषों के प्रति अनुताप नहीं होना।

विवेचन - आर्त और रौद्र ध्यान-अशुभ ध्यान है। यहाँ भगवान् के श्रमणों के विशेषणों के रूप में तप का वर्णन हो रहा है। अतः इन ध्यानों के वर्णन से यह आशय लेना चाहिए कि - 'इन अशुभ ध्यानों को छोड़कर धर्म-शुक्ल रूप प्रशस्त ध्यान के ध्याता थे।' इसी प्रकार अशुभ विनय के विषय में यही समझना चाहिए। तपोवर्णन में अप्रशस्त का वर्णन इसीलिए है कि इनका स्वरूप समझ कर, प्रशस्त ध्यान को अप्रशस्त ध्यान होने से रोका जा सके। क्योंकि जरा-से लक्ष्य-भेद से क्रिया-भेद उपस्थित हो जाता है। अतः अप्रशस्त को छोड़ना और प्रशस्त को स्वीकार करना, ये दोनों ही निर्जरा है।

धम्मज्झाणे चउव्विहे चउप्पडोयारे पण्णत्ते ।

भावार्थ - चार भेदों में समवतरित होने वाला धर्मध्यान चार प्रकार का कहा गया है।

तं जहा-आणाविजए १, अवायविजए २, विवागविजए ३. संठाणविजए ४ ।

भावार्थ - धर्मध्यान के चार भेद हैं। जैसे - १. आज्ञाविचय- चिन्तन के द्वारा-सूत्रज्ञान के द्वारा तीर्थंकर भगवान् की सूत्रधर्म और चारित्रधर्म सम्बन्धी आज्ञा का विचार करना २. अपायविचय- चिन्तनादि के द्वारा राग-द्वेषादि से होने वाले अनर्थों का विचार करना ३. विपाकविचय - चिंतन आदि के द्वारा कर्मफल का विचार करना और ४. संस्थान विचय - लोक-द्वीप आदि पदार्थों की आकृतियों का चिन्तन करना।

विवेचन - धर्मध्यान के चार भेद, चार लक्षण, चार लिंग और चार अवलम्बन हैं। इन चार भेदों में धर्मध्यान का समावेश होता है, इसलिए मूल में 'चउप्पडोयारे' (चतुष्प्रत्यवतार) कहा है। थोकड़े वाले तो ऐसा बोलते हैं कि 'धर्मध्यान के चार भेद और चार पाये।' मूल पाठ में आज्ञा विजय आदि शब्द दिये हैं। विजय शब्द का पर्याय वाची विचय शब्द भी है। इसलिए ठाणांग सूत्र के चौथे ठाणे में "आज्ञाविचय आदि शब्द दिए हैं।" संस्थान विचय में लोक के स्वरूप का चिंतन करते हुए लोक में जीव के परिभ्रमण करने का चिन्तन करना चाहिये जैसा कि बारह भावनाओं में कहा है। यथा-

चौदह राजु उत्तंग नभ, लोक पुरुष संठान ।

तामे जीव अनादिते, भ्रमत है बिन ज्ञान ॥

अर्थ - लोक चौदह राजु परिमाण ऊँचा है और कमर पर हाथ धर कर नाचते हुए भोपे रूप पुरुष के आकार वाला है, उसमें मिथ्यात्व रूपी अज्ञान के कारण जीव अनादि काल से परिभ्रमण कर रहा है।

धम्मस्स णं ज्ञाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता । तंजहा-आणारुई १, णिसग्गरुई २, उवएसरुई ३, सुत्त-रुई ४ ।

भावार्थ - धर्मध्यान के चार लक्षण कहे गये हैं। जैसे- १. आज्ञारुचि - वीतराग की आज्ञा में

श्रद्धा-रुचि २. निसर्गरुचि- स्वभावतः ही धर्म में रुचि होना ३. उपदेशरुचि - साधु आदि के उपदेश से धर्म में रुचि होना या धर्म-उपदेश सुनने में रुचि और ४ सूत्ररुचि - आगमों से तत्त्वरुचि होना या आगमों में श्रद्धा होना।

धम्मस्स णं ज्ञाणस्स चत्तारि आलंबणा पण्णत्ता । तं जहा- वायणा १, पुच्छणा २, परियट्टणा ३, धम्मकहा ४ ।

भावार्थ - धर्मध्यान के चार आलम्बन-धर्मध्यान के शिखर पर चढ़ने के लिये सहायता लेने योग्य साधन कहे गये हैं। यथा-१. वाचना - जीव-अजीव के वास्तविक स्वरूप को बताने वाले आगम, ग्रन्थ, शास्त्रादि को पढना २. पृच्छना - शंका-समाधान या पढ़े हुए-जाने हुए विषय के सम्बन्ध में विविध प्रश्न उठाना और स्वतः ही समाधान करना या दूसरों से उत्तर प्राप्त करके, जिज्ञासावृत्ति का संस्कार करना अथवा अपने आपके विषय में अपने आपसे, पूर्ण जिज्ञासा के साथ उत्तर की राह देखते हुए, प्रश्न करना ३. परिवर्तना - सीखे हुए ज्ञान की पुनरावृत्ति करना-घुमा-फिराकर बार-बार एक ही विषय पर योगों-मन, वचन और काया की क्रिया को लगाना और ४. धर्मकथा - उपदेश देना, आप्तपुरुषों की जीवनियों, उपदेशप्रद गाथाओं के द्वारा आत्मानुशासन करना-अपने आपको आदेश देना।

धम्मस्स णं ज्ञाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ । तंजहा-अणिच्चाणुप्पेहा १, असरणाणुप्पेहा २, एगत्ताणुप्पेहा ३, संसाराणुप्पेहा ४ ।

भावार्थ - धर्मध्यान की चार अनुप्रेक्षाएँ-भावनाएँ-ध्यान साधने के लिये विचारों के अभ्यास कही गई हैं। यथा- १. अनित्यानुप्रेक्षा—इष्टजन-सातादि के संयोग, ऋद्धि, विषयसुख, सम्पद् आरोग्य, देह, यौवन और जीवन अर्थात् जितने भी इन्द्रिय-गम्य पदार्थ हैं वे सभी अनित्य हैं-ऐसे विचारों का चिन्तन करना २. अशरणानुप्रेक्षा—जन्म, जरा और मरणादि के भय में-व्याधि और वेदना में-जिनेवर के वचन के सिवाय, लोक में कहीं पर कोई भी शरण नहीं है अथवा 'हे आत्मन् ! बाहरी पदार्थों से रक्षित होने की तेरी आशा व्यर्थ है। कोई किसी को कर्मभोग से बचा सके-ऐसा वस्तु स्वरूप ही नहीं है। तू अपने-आपमें पूर्ण है। निजबल के विकास के द्वारा ही कष्टसागर से पार पहुँच सकता है। अतः हे आत्मन् ! तू अपने-आपमें स्थित हो जा। वीतराग-वचन मार्ग-प्रदर्शन कर रहे हैं'.....आदि विचारों का चिन्तन करना। ३. एकत्वानुप्रेक्षा-जन्म-मरण में और शुभ अशुभ भवरूपी भंवर में अकेले का ही गमन होता है। अतः अकेले से ही आत्मा का हित करना योग्य है अथवा हे आत्मन् ! तू अपनी वृत्तियों को अनेकधा क्यों बना रहा है ! तू अकेला है-एक है, अतः इन वृत्तियों को अपने से बाहर मत जाने दे। आत्मा ही कर्ता है। आत्मा ही भोक्ता है। जीव अकेला ही जन्मता और अकेला ही मरता है।

“आयो अकेलो जासी अकेलो मन मे बात विचारो जी।”

आप अकेलो अवतरे, मरे अकेलो होय।

यों कब हूं या जीव को, साथी सगो न कोय ॥

आदि अकेलेपन के आत्मावलम्बी विचारों का चिन्तन करना और ४ संसारानुप्रेक्षा-जीव ने सभी जीवों के साथ सभी तरह के सम्बन्ध किये हैं। जीव माता होकर पुत्री, पत्नी होकर बहिन, पुत्र होकर पिता और पिता होकर पुत्र-इस संसार में हो जाता है.....आदि संसार के स्वरूप सम्बन्धी विचारों का चिन्तन करना।

सुक्कञ्जाणे चउव्विहे चउप्पडोयारे पण्णत्ते । तंजहा-पुहुत्तवियक्के सवियारी १, एगत्तवियक्के अवियारी २, सुहुमकिरिए अप्पडिवाई ३, समुच्छिण्ण-किरिए अणियट्ठी ४ ।

भावार्थ - शुक्लध्यान चार-चार भेदों से युक्त चार समवतार वाला कहा गया है। यथा - शुक्लध्यान के चार प्रकार - १. पृथक्त्व-वितर्क-सविचारी - अर्थादि में योगों के विचरण से युक्त भेद सहित वितर्क-विकल्प अर्थात् ऐसा ध्यान जिसमें एक द्रव्य के आश्रित उत्पाद आदि पर्यायों के भेद से युक्त, पूर्वगत श्रुत के आलम्बन से विविध नयों का अनुसरण करने वाला विकल्प हो और अर्थ से व्यंजन में और व्यंजन से अर्थ में तथा मन आदि योगों का एक से दूसरे में विचरण हो, ऐसा चिन्तन करना। २. एकत्व-वितर्क अविचारी - शब्दार्थ और योगों के निज-संक्रमण से रहित अभेद-विकल्प अर्थात् ऐसा ध्यान जिसमें किसी भी एक योग में स्थित ध्याता का, भेद से रहित-द्रव्य के एक पर्याय का अनुसरण करने वाला-पूर्वगत शब्द या अर्थ रूप विकल्प हो, ऐसा चिन्तन करना ३. सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाती-निर्वाण काल के समय योग-निरोध करते हुए, अर्द्धनिरुद्ध काययोग की स्थिति में, उन्नति की गतिशील ऊर्ध्वमुखी अवस्था का होना रूप ध्यान और ४ समुच्छिन्नक्रिया अनिवर्ती-तीनों योगों के निरुद्ध हो जाने पर शैलेश (मेरु पर्वत की तरह) निष्कम्प-निष्क्रिय स्थिति अर्थात् शैलेशी अवस्था को प्राप्त करना, मुक्ति प्राप्त किये बिना पीछे नहीं हटना। अर्थात् मोक्ष प्राप्ति के पहले की अवस्था जहाँ से फिर लौटना नहीं होता है।

सुक्कस्स णं ज्ञाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता । तंजहा-विवेगे १, विउसग्गे २, अव्वहे ३, असम्मोहे ४ ।

भावार्थ - शुक्लध्यान के चार लक्षण कहे गये हैं। यथा-१. विवेक - देह से आत्मा का और आत्मा से सभी संयोगिक पदार्थों का बुद्धि से पृथक्करण २. व्युत्सर्ग - निःसंगता से देह और उपधि का त्याग ३. अव्यथा - देवादि के उपसर्ग से चलित नहीं होना-पीड़ा का आत्मा पर असर नहीं होने देना और ४. असंमोह- देवादिकृत माया और जिनप्रणीत सूक्ष्म पदार्थों के विषयों में मुग्ध नहीं होना अर्थात् भ्रान्त नहीं होना।

सुक्कस्स णं ज्ञाणस्स चत्तारि आलंबणा पण्णत्तां तंजहा-खंती १, मुत्ती २, अज्जवे ३, मह्वे ४ ।

भावार्थ - द्रव्यव्युत्सर्ग-आत्मा से भिन्न द्रव्यों का त्याग किसे कहते हैं ? द्रव्यव्युत्सर्ग के चार भेद कहे गये हैं। जैसे-१. शरीरव्युत्सर्ग - शरीर (देह) की ममता के वर्धक साधनों का त्याग करना २. गणव्युत्सर्ग - गण का और गण के मिथ्याभिमान-वर्धक साधनों का त्याग करना ३. उपधिव्युत्सर्ग - साधन-सामग्रियों का और उनको मोहक बनाने के साधन आदि का त्याग करना और ४. भक्तपानव्युत्सर्ग-आहार-पानी का और उनकी आसक्ति का त्याग करना। यह द्रव्यव्युत्सर्ग का स्वरूप है।

से किं तं भाव-विउत्सग्गे ? भाव-विउत्सग्गे तिविहे पण्णत्ते। तंजहा-कसायविउत्सग्गे १, संसारविउत्सग्गे २, कम्मविउत्सग्गे ३।

भावार्थ - भावव्युत्सर्ग-आत्मभाव से भिन्न भावों का त्याग करना किसे कहते हैं ? भावव्युत्सर्ग के तीन भेद कहे गये हैं। जैसे-१. कषायव्युत्सर्ग २. संसारव्युत्सर्ग और ३. कर्मव्युत्सर्ग।

से किं तं कसायविउत्सग्गे ? कसायविउत्सग्गे चउव्विहे पण्णत्ते। तं जहा-कोह-कसाय-विउत्सग्गे १, माण-कसाय-विउत्सग्गे २, माया-कसाय-विउत्सग्गे ३, लोह-कसायविउत्सग्गे ४। से तं कसाय-विउत्सग्गे।

भावार्थ - कषायव्युत्सर्ग किसे कहते हैं ? कषायव्युत्सर्ग- आत्मभाव से भिन्न आवेशात्मक भावों के त्याग के चार भेद कहे गये हैं। यथा-१. क्रोध कषाय व्युत्सर्ग २. मान कषाय व्युत्सर्ग ३. माया छल कपट कषाय व्युत्सर्ग और ४ लोभ कषाय व्युत्सर्ग। यह कषायव्युत्सर्ग का स्वरूप है।

से किं तं संसारविउत्सग्गे ? संसारविउत्सग्गे चउव्विहे पण्णत्ते। तंजहा-णेरइय-संसार-विउत्सग्गे १, तिरिय-संसार-विउत्सग्गे २, मणुय-संसार-विउत्सग्गे ३, देव-संसारविउत्सग्गे ४। से तं संसारविउत्सग्गे।

भावार्थ - संसारव्युत्सर्ग-आत्म दशा से विपरीत परिणति का त्याग किसे कहते हैं ? संसारव्युत्सर्ग के चार भेद कहे गये हैं। यथा- १. नैरयिक संसार व्युत्सर्ग - नरकगति के बन्ध के कारणों का त्याग २. तिर्यञ्च संसार व्युत्सर्ग - आत्मा के तिर्यञ्च अवस्था में परिणत होने के कारणादि का त्याग ३. मनुष्य संसार व्युत्सर्ग- मनुष्यगति के बन्ध के कारणों का त्याग और ४. देव संसार व्युत्सर्ग - देवगति के बंध के कारणों का त्याग। यह संसारव्युत्सर्ग का स्वरूप है।

से किं तं कम्मविउत्सग्गे ? कम्मविउत्सग्गे अट्ठविहे पण्णत्ते तंजहा-णाणावरणिज्ज कम्मविउत्सग्गे १, दरिसणावरणिज्ज कम्मविउत्सग्गे २, वेयणीय कम्म-विउत्सग्गे ३, मोहणीय कम्मविउत्सग्गे ४, आऊयकम्म विउत्सग्गे ५, णामकम्म विउत्सग्गे ६, गोयकम्म विउत्सग्गे ७. अंतराय कम्म विउत्सग्गे ८। से तं कम्म विउत्सग्गे। से तं विउत्सग्गे।

भावार्थ - कर्मव्युत्सर्ग—आत्मा के बन्धक भावों का त्याग किसे कहते हैं ? कर्मव्युत्सर्ग के आठ भेद कहे गये हैं। जैसे - १. ज्ञानावरणीय कर्म व्युत्सर्ग - ज्ञान गुण के आवरण रूप में कर्मपुद्गलों का जीव प्रदेशों के साथ सम्बन्धित हो जाने के कारणों का त्याग २. दर्शनावरणीयकर्म व्युत्सर्ग - सामान्य ज्ञान गुण के आवरण रूप में, कर्मपुद्गलों का जीव प्रदेशों के साथ बंध जाने के कारणों का त्याग ३. वेदनीय कर्म व्युत्सर्ग - साता और असाता की वेदना के कारण रूप कर्मपुद्गलों का आत्मा के साथ बद्ध होने के हेतुओं का और साता और असाता से आत्म-अभेदता की प्रतीति का त्याग ४. मोहनीय कर्म व्युत्सर्ग - स्व-प्रतीति और स्वभाव-रमण में बाधक कर्म-पुद्गलों का जीव के साथ बद्ध होने के हेतुओं का त्याग ५. आयुष्य कर्म व्युत्सर्ग - जीव की अमरत्व शक्ति के बाधक कर्म पुद्गलों का जीव के साथ बद्ध होने के हेतुओं का और उस कर्म के उदय से होने वाली अवस्थाओं में अपनेपन के भान का त्याग ६. नाम कर्म व्युत्सर्ग - आत्मा के अमूर्तता-गुण को विकृत करने वाले कर्म पुद्गलों का जीव से बद्ध होने के कारणों का और उस कर्म के उदय से होने वाली दशाओं में अपनेपन की भ्रान्ति का त्याग ७. गोत्र-कर्म-व्युत्सर्ग - जीव के अगुरुलघु-न हलकापन और न भारीपन रूपगुण को विकृत करने वाले कर्म पुद्गलों के जीव के साथ बद्ध होने के कारणों का और उस कर्म के उदय से होने वाली दशाओं में अपनेपन की भ्रान्ति का त्याग और ८ अंतरायकर्म व्युत्सर्ग - जीव के अनन्त शक्ति गुण को सीमित करने वाले कर्मपुद्गलों का जीव से बद्ध होने के कारणों का त्याग। यह कर्मव्युत्सर्ग है। यह भावव्युत्सर्ग का स्वरूप है।

विवेचन - यहाँ पर बाह्य और आभ्यन्तर तप का वर्णन किया गया है उसका आशय यह है कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शिष्य इन दोनों प्रकार के तपों का आचरण करने वाले थे। उनका जीवन उपरोक्त तपों से सुवासित (सुगन्धित) था।

अनगारों की सक्रियता

२१ - तेणं कालेणं तेणं समणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे अणगारा भगवंतो -

भावार्थ - उस काल और उस समय में (जब चम्पा नगरी में पधारे थे तब) श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के साथ बहुत से अनगार भगवन्त थे।

अप्पेगइया आयारधरा जाव विवागसुयधरा (तत्थ तत्थ तहिं तहिं देसे देसे गच्छागच्छि गुम्मागुम्मि फड्डाफड्डिं च)।

भावार्थ - उनमें कई आचारश्रुत के धारक यावत् विपाकश्रुत के धारक थे। अर्थात् आचारांग सूत्र से लेकर विपाकश्रुत तक ग्यारह अंगों के धारक थे। (वे उसी बगीचे में भिन्न-भिन्न जगह पर गच्छ-

गच्छ रूप में विभक्त होकर तथा गच्छ के एक-एक भाग में विभक्त होकर एवं फुटकर फुटकर रूप में विभक्त होकर विराजते थे।)

अप्येगइया वायंति। अप्येगइया पडिपुच्छंति। अप्येगइया परियट्टंति। अप्येगइया अणुप्येहंति।

भावार्थ - ऐसे उन अनगारों में से, वहाँ कई वाचना करते थे। कई प्रतिपृच्छा—प्रश्नोत्तर—शंका समाधान करते थे। कई पुनरावृत्ति करते थे और कई अनुप्रेक्षा करते थे।

अप्येगइया अक्खेवणीओ विक्खेवणीओ संवेयणीओ णिव्वेयणीओ चउव्विहाओ कहाओ कहंति।

भावार्थ - कई अनगार भगवन्त आक्षेपणी—मोह से हटाकर, तत्त्व की ओर आकर्षित करने वाली, विक्षेपणी—कुमार्ग से विमुख बनाने वाली, संवेगनी—मोक्षसुख की अभिलाषा उत्पन्न करने वाली और निर्वेदनी—संसार से उदासीन बनाने वाली, ये चार प्रकार की धर्म कथाएँ कहते थे।

अप्येगइया उड्डं जाणू अहोसिरा झाणकोट्टोवगया संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

भावार्थ - कई अनगार भगवन्त ऊँचे घुटने और नीचा शिर रखकर, ध्यान रूप कोष्ठ—कोठे में प्रविष्ट होकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते थे।

संसार-सागर से तिर कर पार होना

संसार-भउव्विग्गा भीया।

भावार्थ - वे अनगार भगवन्त संसार के भय से उद्विग्न और डरे हुए थे।

जम्मण-जर-मरण-करण-गंभीर-दुक्ख-पक्खुब्भिय-पउर-सलिलं।

भावार्थ - संसार-सागर जन्म, जरा और मरण के द्वारा उत्पन्न हुए गंभीर दुःख रूप क्षुभित अपार जल से भरा हुआ है।

संजोग-विओग-विची-चिंता-पसंग-पसरिय-वह-बंध-महल्ल-विउल-कल्लोल-कलुण-विलविय-लोभ-कलकलंत-बोल-बहुलं।

भावार्थ - उस दुःख रूप जल में संयोग-वियोग रूप लहरें पैदा होती हैं। वे तरंगें चिन्ता-प्रसंगों से फैलती हैं। वध और बन्धन रूप बड़ी मोटी कल्लोलें हैं, जो कि करुण विलाप और लोभ रूप कलकलायमान ध्वनि की अधिकता से युक्त हैं।

अवमाणण-फेण-तिव्व-खिंसण-पुलंपुल-प्पभूय-रोग-वेयण-परिभव-

भावार्थ - जिनवर-राग द्वेष से रहित व्यक्तियों में श्रेष्ठ-के वचनों से उपदिष्ट मार्ग के द्वारा, वे श्रेष्ठ श्रमण सार्थवाह सिद्धि रूप महापट्टण-बड़े बन्दरगाह की ओर मुख रखकर सीधी गति से संयम पोत के द्वारा जा रहे थे।

सुसुइ-सुसंभास-सुपणह-सासा।

भावार्थ - वे सम्यक्श्रुत-सत्सिद्धान्त ग्रन्थ, सुसंभाषण, सुप्रश्न और शोभन आशावाले थे अथवा सम्यक्श्रुत, सुसंभाषण और सुप्रश्न के द्वारा शिक्षा के दाता थे।

गामे गामे एगरायं, नगरे नगरे पंचरायं दूइज्जंता जिइंदिया णिब्भया गयभया, सचित्ताचित्त-मीसिएसु दब्बेसु विरागयं गया संजया (संचयाओ) विरया मुत्ता लहुया णिरवकंखा साहु णिहुया चरंति धम्मं।

भावार्थ - वे अनगर, गांवों में एक रात्रि और नगरों में पांच रात्रि तक निवास करते हुए, जितेन्द्रिय-इन्द्रियों को जीतने वाले, निर्भय-भय मोहनीय के उदय को रोकने वाले, गत भय-भय के उदय को निष्फल करने वाले होकर, सचित्त-जीव सहित, अचित्त- निर्जीव और मिश्र-सजीव और निर्जीव अंश वाले द्रव्यों में वैराग्यवान् संयत-सम्यक् यत्न वाले, विरत-हिंसादि से निवृत्त, मुक्त-ग्रन्थि रहित-अनासक्त, लघुक-हलके, अल्प उपधिवाले निरवकांक्ष-अप्राप्त पदार्थ की आकांक्षा से रहित साधु-मोक्ष के साधक और निभृत- प्रशान्त वृत्तिवाले होकर धर्म का आचरण करते थे।

विवेचन - इस सूत्र में संसार सागर का और उसे तैरने का सांगोपांग वर्णन किया गया है। पहले सूत्रों में जितेन्द्रियादि विशेषण आ चुके हैं। पुनः इस सूत्र में भी ये विशेषण आये हैं। किन्तु इसे पुनरुक्ति दोष नहीं समझना चाहिए। क्योंकि यह अनगर के गुणों का कीर्तन है। गुणवर्णन या स्तुति आदि में पुनःपुनः गुणवर्णन दोष नहीं माना जाता है। जैसा कि टीका में कहा है -

सञ्जाय-ज्ञाण-तव-ओसहेसु, उवएसु थुइ-पयाणेसु।

संत-गुण-कित्तणासु य, ण हुंति पुनरुत्त दोसा उ॥

- दूसरी बात कहीं श्रमणत्व गुण के व्याख्यान में तो कहीं स्थविरों के लक्षणों के कथन में ये विशेषण आये हैं। अतः थोड़ा बहुत अर्थ में अन्तर अवश्य रहता है और भिन्न व्यक्तित्वों के विषय में कथन होने से भी पुनरुक्ति दोष नहीं माना जा सकता है।

देवों का आगमन

२२- तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे असुरकुमारा देवा अंतियं पाउब्भवित्था।

भावार्थ - उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीप बहुत से असुरकुमार देव प्रकट हुए।

देवों का शरीर और शृङ्गार

क्राल-महाणील-सरिस-णील-गुलिय-गवल-अयसि-कुसुमप्यगासा ।

भावार्थ - उनका वर्ण-काली महानील मणि के समान था और नीलमणि, गुलिका, भैंसे के सींग और अलसी के फूल के समान दीप्ति थी ।

वियसिय-सयपत्तमिव पत्तल-णिम्मल-ईसिं-सितरत्त-तंब णयणा गरुलायत-उज्जु-तुंग-णासा ।

भावार्थ - विकसित शतपत्र-कमल के समान निर्मल पक्ष्मल- बरौनीवाले कुछ-कुछ सफेद, लाल और ताप्रवर्ण वाले उनके नयन थे । उनकी नासिका गरुड़ की नाक-सी लम्बी, सीधी और ऊँची थी ।

उअचिय-सिल-प्यवाल-बिंबफल-सणिण-भाहरोट्टा ।

भावार्थ - संस्कारित शिला-प्रवाल और बिम्बफल के समान लाल अधरोष्ठ थे ।

पंडुर-ससि-सकल-विमल-णिम्मल संख गोव्खीर-फेण-दगरय मुमालिया-धवल-दंत सेढी ।

भावार्थ - उनके दांतों की पंक्ति निष्कलङ्क चन्द्र के टुकड़े, निर्मल शंख, गाय के दूध, फेन, जलकण और कमलनाल के समान सफेद थी ।

हुयवह णिद्धंत-धोय-तत्त-तवणिज्ज-रत्त-तल-तालु-जीहा अंजण घण-कसिण-रुयग-रमणिज्ज-णिद्धकेसा

भावार्थ - उनके हाथ-पैर के तलवे, तालु और जीभ, अग्नि से निर्मल बने हुए तपे हुए स्वर्ण के समान लाल थे । अञ्जन और मेघ के समान काले और रुचक मणि के समान रमणीय और स्निग्ध बाल थे ।

वामेग कुंडलधरा अद्दचंदणाणुलित्त गत्ता ।

भावार्थ - उनके बायें कान में एक-एक कुण्डल था । उनके शरीर पर चन्दन का गीला लेप लगा हुआ था ।

ईसिं-सिलिंध-पुप्फ-प्यगासाइं सुहुमाइं असंकिलि-ट्टाइं वत्थाइं पवर-परिहिया ।

भावार्थ - वे शिलिंध्र पुष्प के समान दीप्ति वाले कोमल-पतले और दूषण रहित वस्त्रों को उत्तम ढंग से पहने हुए थे ।

विवेचन - यहाँ मूल में 'सिलिंध' शब्द है । जिसका अर्थ टीकाकार ने 'ईषत् सित्' अर्थात् 'कुछ सफेद' किया है और मतान्तर में 'असुरेसु होंति रत्ता' 'ऐसा दिया है सो यह पाठ पत्रवणा सूत्र के दूसरे पद का है जिसका अर्थ टीकाकार ने 'इषत् रक्तानि' अर्थात् 'साधारण लाल' बताया है । यह लाल वस्त्र अर्थ ठीक मालूम पड़ता है ।

वयं च पढमं समइवकंता, बितियं च वयं असंपत्ता, भहे जोव्वणे वट्टमाणा ।

भावार्थ - वे पहली वय-बाल अवस्था से पार पहुँचते हुए और दूसरी वय-यौवन अवस्था को नहीं पाये हुए-भद्र-यौवन- कुमार अवस्था में स्थित थे ।

विवेचन - वय के विषय में टीकाकार ने निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है -

आषोडशाद्भवेद्बालो, यावत् क्षीरान्ननिवर्तकः ।

मध्यमः सप्ततिं यावत्, परतो वृद्ध उच्यते ॥

अर्थात् १६ वर्ष की वय तक बाल, ७० वर्ष की वय तक मध्यम और इसके बाद वृद्ध अवस्था कही जाती है ।

तलभंगय-तुडीय-पवर-भूसण-णिम्मल-मणि-रयण-मंडियभुया (दस-मुद्दा मंडियग्ग-हत्था) ।

- उनकी भुजाएँ मणिरत्नों से बने हुए अति श्रेष्ठ तल भंगक- बाहु के आभरण, त्रुटिका-बाहु रक्षिका या तोड़े और निर्मल भूषणों से सुशोभित थी। दसों अंगुलियों में पहनी हुई अंगुठियों से उनके हाथ सुशोभित थे ।

चूलामणि चिंधगया

भावार्थ - उनके चूडामणि-शिरोमणि रूप में चिह्न थे अर्थात् उनके मुकुट में चूडामणि का चिह्न था ।

सुरूवा महिड्डिया महज्जुइया महब्बला महायसा महासोक्खा महाणुभागा ।

भावार्थ - वे सुरूप, महर्द्धिक-विशिष्ट भवन परिवारादि वाले, महती द्युति के धनी, महाबली, महासौख्य के स्वामी और महानुभाग-अचिन्त्य शक्ति से सम्पन्न थे ।

हार विराइय वच्छा, कडग-तुडिय थंभिय-भुया अंगय-कुंडल-मट्ट-गंडतल-कण्ण-पीठ-धारी विचित्तवत्थाभरणा, विचित्त-माला-मउलि-मउडा, कल्लाण-कय-पवर-वत्थ-परिहिया, कल्लाण-कय-पवर-मल्लाणुलेवणा, भासुरबोदी, पलंब वण मालधरा ।

भावार्थ - उनके वक्षस्थल हार से सुशोभित थे। उनकी भुजाएँ कंकणों और बाहुरक्षिका से स्तंभित-स्थिर बन रही थीं। वे भुजबंध, कुण्डल, सुन्दर स्वच्छ कपोल या कस्तुरी से चित्रित गण्डस्थल वाले और कर्णपीठ-कान के आभूषण के धारक थे। उनके वस्त्राभरण या हस्ताभरण विचित्र थे। उनके मस्तकों पर विचित्र पुष्पमालाओं से युक्त मुकुट थे। वे कल्याणकारी श्रेष्ठ फूलों और विलेपनों से युक्त, झूलती हुई मालाओं और सभी ऋतुओं के पुष्पों से बनी हुई घुटनों तक लटकती हुई मालाओं से विभूषित प्रकाशमान देह वाले थे ।

दिव्वेणं वण्णेणं, दिव्वेणं गंधेणं, दिव्वेणं रूवेणं, दिव्वेणं फासेणं, दिव्वेणं

संघाएणं, दिव्वेणं संठाणेणं, दिव्वाए इड्डिए, दिव्वाए जुत्तिए, दिव्वाए पभाए, दिव्वाए छायाए, दिव्वाए अच्चिए, दिव्वेणं तेएणं, दिव्वाए लेसाए, दस दिसाओ उज्जोवेमाणा, पभासेमाणा, समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं आगम्मागम्म, रत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ।

भावार्थ - वे देव दिव्य वर्ण, दिव्य गन्ध, दिव्य रूप, दिव्य स्पर्श, दिव्य संहनन-शारीरिक गठन, दिव्य संस्थान-आकार, दिव्य ऋद्धि, दिव्य द्युति, दिव्य प्रभा, दिव्य छाया-कान्ति, दिव्य अर्चि- शरीरस्थ रत्नादि की तेजोज्वाला, दिव्य तेज और दिव्य लेश्या- शारीरिक वर्ण से दशों दिशाएँ प्रकाशित करते हुए-शोभायमान करते हुए, भगवान् महावीर के समीप में बारम्बार आ-आ कर अनुराग सहित श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा करते थे।

विवेचन - यहाँ देवों में 'दिव्य संहनन' कहा है, उसका आशय यहाँ पर यह है-हड्डियों की रचना विशेष को संहनन कहते हैं। यह औदारिक शरीर की अपेक्षा समझना चाहिये। देवों का शरीर वैक्रिय होने से उसमें हड्डियाँ नहीं होती हैं। अतः यहाँ हड्डियों की रचना रूप संहनन नहीं समझना चाहिए, किन्तु उनकी शक्ति विशेष की अपेक्षा शरीर की दृढ़ता होने से संहनन की तरह दिखाई देने से 'दिव्य संहनन' बतलाया है। टीकाकार ने 'वज्र ऋषभनाराच' अर्थ किया है, इसका यही अर्थ समझना चाहिए कि वज्रऋषभनाराच की तरह दृढ़।

करेत्ता वंदंति णमंसंति। वंदित्ता णमंसित्ता साइं साइं णाम गोयाइं साविंति णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणा णमंसमाणा अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा पज्जुवासंति।

वन्दना नमस्कार करते थे और अपना-अपना नाम और गोत्र बतलाते थे। फिर न अधिक नजदीक न अधिक दूर स्थित रहकर भगवान् की ओर मुख रख कर, विनय सहित दोनों हाथ जोड़ कर पर्युपासना कर रहे थे।

भवनपति देवों का वर्णन

२३- तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे असुरिंदवज्जिया भवणवासी देवा अंतियं पाउब्भवित्था-णागपइणो सुवण्णा, विज्जू अग्गीया दीवा उदही दिसाकुमारा य पवणथणिया य भवणवासी। णागफडा-गरुल-वयर-पुण्णकलस-सीह हयवर, गयंक मयरंक वरमउड वद्धमाण-णिजुत्त-विचित्त-चिंधगया सुरूवा महिड्डिया सेसं तं चेव जाव पज्जुवासंति।

भावार्थ - उस काल और उस समय में, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीप, असुरेन्द्र को छोड़कर, अन्य बहुत से नागकुमार, सुवर्णकुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, द्वीपकुमार, उदधिकुमार,

दिशाकुमार, पवनकुमार और स्तनितकुमार जाति के भवनवासी देव प्रकट हुए। उनके यथा स्थान से विचित्र-विविध चिह्न नियुक्त थे यथा - १. नागफण २. गरुड ३. वज्र ४. पुण्यकलश ५. सिंह ६. अश्व ७. हाथी ८. मगर और ९. वर्द्धमानक- शराव चिह्न से अङ्कित मुकुट थे। वे सुरूप महर्द्धिक आदि असुरकुमार देवों के वर्णन के समान है, यहाँ तक "पर्युपासना कर रहे थे।"

विवेचन - नागकुमार देवों के मुकुट में नाग की फना का चिह्न होता है, सुवर्णकुमार के मुकुट में गरुड का, विद्युतकुमार के मुकुट में वज्र का अग्निकुमारों के पूर्ण कलश का, द्वीपकुमारों के सिंह का, उदधिकुमारों के घोड़े का, दिशाकुमारों के हाथी का, पवनकुमारों के मगर का और स्तनितकुमारों के वर्द्धमान स्वस्तिक का चिह्न होता है। ये सब चिह्न इन देवों के मुकुटों में होते हैं।

"यहाँ असुरेन्द्र को छोड़कर" कहा है। इसका आशय यह है कि असुरकुमार जाति के देवों का वर्णन पहले आ चुका है।

वाणव्यंतर देवों का वर्णन

२४- तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स बहवे वाणमंतरा देवा अंतियं पाउब्भवित्था।

भावार्थ - उस काल और उस समय में, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीप, बहुत से वाणव्यन्तर देव प्रकट हुए।

पिसाया १, भूया य २, जक्ख ३, रक्खस ४, किंनर ५, किंपुरिस ६, भुयगवइणो य महाकाया ७, गंधव्वणिकायगणा (गंधव्व पइ गणा) णिउण गंधव्व गीयरइणो ८, अणपणिय ९, पणपणिय १०, इसिवाइय ११, भूयवाइय १२, कंदिय १३, महाकंदिया य १४, कुहंड १५, पयए य १६, देवा।

भावार्थ - वाणव्यन्तर देव निम्नलिखित जाति के थे - १. पिशाच, २. भूत, ३. यक्ष, ४. राक्षस, ५. किन्नर, ६. किंपुरुष, ७. महाकाय महोरग, ८. अति ललित गंधर्व-नाट्य गीत और गीत- नाट्य वर्जित गेयगीत या संगीत में रति-आसक्ति-प्रीति रखने वाले गंधर्वनिकाय-गंधर्व जाति के गण, ९. अणपणिय, १०. पणपणिय, ११. ऋषिवादिक, १२. भूतवादिक, १३. क्रंदित, १४. महाक्रन्दित, १५. कुष्माण्ड और १६. प्रयत देव।

चंचल-चवल-चित्त-कीलण-दव-प्पिया गंभीर-हसिय-भणिय-पीय-गीय-णच्चण-रइं।

भावार्थ - वे देव चञ्चल-चपल-अति चञ्चल चित्तवाले, क्रीड़ा और परिहास प्रिय थे। उन्हें गंभीर हास्य और वाणी का प्रयोग प्रिय था। वे गीत और नृत्य में रतिवाले-आसक्त थे।

वणमाला मेल-मउड-कुंडल-सच्छंद-विउव्विया-भरण-चारू-विभूसण-धरा

सव्वोउय-सुरभि-कुसुम-सुरइय-पलंब-सोहंत-कंत-वियसंत-चित्त-वणमाल-रइय-वच्छा कामगमी कामरूवधारी ।

भावार्थ - वे वनमाला, फूलों का सेहरा-आमेलक, मुकुट, कुण्डल, अपनी इच्छा के अनुसार विकुर्वित-विविध रूप बनाने की शक्ति से निर्मित, अलंकार और सुन्दर आभूषणों को पहने हुए थे। सभी ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले सुगन्धित फूलों से सुन्दर ढंग से बनी हुई लम्बी मालाओं और शोभित, कान्त, विकसित एवं विचित्र वनमालाओं से उनके वक्षस्थल सुशोभित थे। वे इच्छागामी- जहां जाने का हो, वहां जाने की इच्छा करते ही उस स्थान पर पहुँच जाने वाले या इच्छित स्थान पर जाने वाले और काम रूपधारी-इच्छा होते ही रूप को पलटने की शक्तिवाले या इच्छित रूप के धारक थे।

णाणाविह-वण्ण-राग-वर-वत्थ-चित्त-चिल्लिय-णियंसणाविविह-देसी-णेवत्थ-ग्गहिय-वेसा ।

भावार्थ - वे नाना भाँति के वर्ण-रंगवाले, श्रेष्ठ वस्त्र और विविध भङ्गीले परिधान-पहनावा के धारक थे। विविध देशारूढ़ वेश-भूषाएँ, उन्हींने ग्रहण कर रखी थी।

पमुइय-कंदप्प-कलह-केलि-कोलाहल-प्पिया हास-बोल (केलि) बहुला ।

भावार्थ - वे प्रमुदित कन्दर्प-काम प्रधान क्रीड़ा, कलह राटी-रार, केलि-क्रीड़ा और कोलाहल में प्रीति रखने वाले थे। वे बहुत हँसने वाले और अधिक बोलने वाले थे।

अणेग-मणि-रयण-विविह-णिजुत्त-विचित्त-चिंधगया सुरूवा महिड्डिया जाव पज्जुवासंति ।

भावार्थ - उन वाणव्यन्तर देवों के अनेक मणि-रत्नमय नियुक्त विविध एवं विचित्र चिह्न थे। वे सुरूप, महर्द्धिक थे-यावत् पर्युपासना करने लगे।

विवेचन - पिशाच जाति के देवों के मुकुट के चिह्न कदम्बध्वज, भूत जाति के सुलस और यक्ष जाति के वट (बड़), राक्षस जाति के खट्वांग (मांचा), किन्नर जाति के अशोक वृक्ष, किंपुरुष जाति के चम्पक वृक्ष, महाकाल जाति के नाग और गन्धर्व जाति के तुम्बरी (फलविशेष) के चिह्न होते हैं।

ज्योतिषी देवों का वर्णन

२५ - तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जोइसिया देवा अंतियं पाउब्भवित्था, विहस्सई चंद सूर सुक्क सणिच्चरा राहू धूमकेऊ बुहाय अंगारका य तत्त तवणिज्ज-कणग-वण्णा जे गहा जोइसंमि चारं चरंति ।

भावार्थ - उस काल और उस समय में भगवान् महावीर स्वामी के समीप ज्योतिष्क देव प्रकट हुए। यथा-बृहस्पति, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, शनिश्चर, राहू, धूमकेतु, बुद्ध और अंगारक-मंगल-जो कि तपे हुए स्वर्णाबिन्दु के समान वर्ण वाले हैं-एवं वे ग्रह, जो ज्योतिष्चक्र में भ्रमण करते हैं वे भगवान् महावीर स्वामी के सेवा में आये।

विवेचन - 'जे य गहा...' इस सूत्र में 'य' पद से बृहस्पति आदि नवग्रहों के सिवाय अन्य ग्रहों को ग्रहण किया गया है। क्योंकि मनुष्य लोक में और मनुष्य लोक के बाहर एक एक चन्द्र सूर्य रूप युगल के ८८-८८ ग्रह होते हैं।

केऊ य गइरइया। अट्टावीसविहा य णक्खत्त-देवगणा। णाणासंठाण-संठियाओ पंचवण्णाओ ताराओ। ठियलेस्सा चारिणो य अविस्साम-मंडल गई। पत्तेयं णामंक-पागडिय-चिंध-मउडा। महिड्डिया जाव पज्जुवासंति।

भावार्थ - गतिशैल केतु अथवा नाना प्रकार वाले अट्टाईस प्रकार के नक्षत्र देवगण और पांचों वर्ण के तारा जाति के देव सेवा में आये। उनमें स्थित—गति रहित रह कर प्रकाश करने वाले और निरन्तर—अविश्राम मण्डलाकार गति से चलने वाले दोनों तरह के ज्योतिष्क देव थे। प्रत्येक ने स्वनामाङ्कित विमान के चिह्न से मुकुट धारण किये थे। वे महर्द्धिक थे... यावत् पर्युपासना करने लगे।

विवेचन - 'धूमकेतु' के अतिरिक्त 'जलकेतु' आदि केतुओं का 'केऊ य गइरइया' पदों के द्वारा उल्लेख किया गया है। 'गइरइया' (गति में आनन्दानुभव करने वाले) विशेषण लोक की अपेक्षा से दिया गया है। नक्षत्रों के लिये 'देवगण' विशेषण प्रयोग हुआ है। क्योंकि कई नक्षत्र अनेक ताराओं के समूह के रूप में हैं। अतः वे नाना संस्थान वाले हैं। यह बात पत्रवणा के दूसरे स्थानपद से भी स्पष्ट होती है।

वैमानिक देवों का वर्णन

२६ - तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स वेमाणिया देवा अंतियं पाउब्भवित्था। सोहम्मीसाण-सणंकुमार-माहिंद-बंध-लंतक-महासुक्क-सहस्साराणय-पाणयारण-अच्युवई पहिड्डा देवा। जिण-दंसणुस्सगागमण-जणियहासा।

भावार्थ - उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की सेवा में सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लांतक, महाशुक्र, सहस्रार आणत, प्राणत, आरण और अच्युत देव लोकों के पति इन्द्र आये। वे सब देव अत्यन्त प्रसन्न थे। वे जिन-रागद्वेष विजेता तीर्थङ्कर भगवान् के दर्शन पाने को उत्सुक और आगमन से उत्पन्न हुए हर्ष से युक्त थे।

पालक-पुप्फक-सोमणस-सिरिवच्छ-णंदियावत्त-कामगम-पीडुगम-मणोगम-विमल-सव्वओभद-णामधिज्जेहिं विमाणेहिं ओइण्णा वंदका जिणिंदं।

भावार्थ - वे जिनेन्द्र के वन्दक-वन्दना करने वाले देव १. पालक २. पुष्पक ३. सौमनस ४. श्रीवत्स ५. नन्दावर्त ६. कामगम ७. प्रीतिगम ८. मनोगम ९. विमल और १०. सर्वतोभद्र नाम के विमानों द्वारा स्वर्ग से उतरकर इस तिरछा लोक की पृथ्वी पर आये।

विवेचन - बारह देवलोक के दस इन्द्र माने गये हैं। पालक आदि जो दस विमानों के नाम ऊपर

बताये गये हैं, वे इन दस इन्द्रों के क्रमशः यान विमान हैं, जिनका अर्थ है जाने आने के लिए काम में आने वाले विमान।

मिग-महिस-वराह-छगल-दहुर-हय-गयवड़-भुयग-खगग-उस-भंक-विडिम-पागडिय-चिंध-मउडा पसिठिल-वर-मउड-तिरीड धारी कुंडल-उज्जोवियाणणा मउड-दित्त-सिरया।

भावार्थ - वे इन्द्र १. मृग २. महिष (भैंसा) ३. वराह (सूअर) ४. छगल (बकरा) ५. मेंढक ६. घोडा ७. गजपति (श्रेष्ठ हाथी) ८. भुजंग (सर्प) ९. खगग (गेंडा) और १०. वृषभ (सांड) के चिह्नों से चिह्नित मुकुटों को पहने हुए थे। वे मुकुट ढीले बन्धन वाले थे। कानों के कुण्डलों की प्रभा से उनके मुख उद्योत से युक्त हो रहे थे और मुकुटों से उनके शिर दीप्त थे।

रत्ताभा पउमपम्हगोरा सेया सुभ-वण्ण-गंध-पासा-उत्तम-विउव्विणो विविहवत्थगंधमल्लधरा महिड्डिया महज्जुइया जाव पंजलिउडा पज्जुवासंति।

भावार्थ - वे लाल वर्ण वाले कमलगर्भ के समान पीले वर्ण वाले-पद्मगौर और सफेद वर्णवाले थे। वे उत्तम वैक्रिय करने की शक्ति वाले थे। विविध वस्त्र, गन्ध और माल्य के धारक, महर्षिक, महातेजस्वी.....यावत् हाथ जोड़कर पर्युपासना करने लगे।

विवेचन - वैमानिक देवों के शरीर के तीन रंग होते हैं। पहले और दूसरे स्वर्ग के देवों के शरीर का रंग लाल, तीसरे चौथे और पांचवें स्वर्ग के देवों के शरीर का वर्ण पीला और आगे के स्वर्गों के देवों के शरीर का सफेद वर्ण होता है।

चम्पा नगरी में लोकवार्त्ता

२७- तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपाए णयरीए सिंघाडग तिग चउक्क चच्चर चउम्मुह महापहपहेसु बहुजणसहे इ वा। महया जणसहे इ वा, जणवूहे इ वा, जणबोले इ वा, जण कलकले इ वा, जणुम्मी इ वा, जणुक्कलिया इ वा, जणसण्णिवाए इ वा।

भावार्थ - उस काल उस समय में चम्पा नगरी के सिंघाटकों में—सिंगाड़े के से आकारवाले त्रिकोण स्थानों में, त्रिकों—जहां तीन मार्ग मिलते हैं ऐसे स्थानों में, चतुष्कों—चौक, चार रास्ते मिलते हैं ऐसे स्थानों में, चत्वरों—बहुत से मार्ग मिलते हैं ऐसे स्थानों में, चतुर्मुखों—चौमुखे देवकुलों में, महापथ-राजमार्ग में और पथों— बाजार और गलियों में मनुष्यों का आपसी बातचीत से बहुत ही शब्द हो रहा था। वहां बहुत जनवृन्द था अथवा आपस में विचार-विमर्श हो रहा था। फुसफुसाहट की आवाज (अव्यक्त ध्वनि) आ रही थी। जनता में कलकल ध्वनि हो रही थी। लोग (जन) समुदाय उमड़ रहा था। छोटे छोटे झुण्ड के रूप में जन घूम रहे थे और एक स्थान से हटकर, दूसरे स्थान पर इकट्ठे हो रहे थे।

बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ, एवं भासइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ-
 'एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे, आइगरे तित्थयेरे सयंसंबुद्धे, पुरिसुत्तमे
 जाव संपाविउकामे, पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे, सुहं सुहमेणं
 विहरमाणे, इहमागए, इह संपत्ते, इह समोसडे; इहेव चंपाए णयरीए बाहिं पुण्णभदे
 चेइए अहापडिरूवं उगहं उगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ'

भावार्थ - उनमें बहुत से मनुष्य एक दूसरे को इस प्रकार सामान्य रूप से कहते थे,....विशेष रूप से कहते थे,....प्रकट रूप से एक ही आशय को भिन्न भिन्न शब्दों के द्वारा प्रकट करते थे, इस प्रकार कार्य-कारण की व्याख्या सहित-तर्क युक्त कथन करते थे-'हे देवानुप्रिय! बात ऐसी है कि - श्रमण भगवान् महावीर स्वामी जो कि स्वयं सम्बुद्ध आदिकर्ता और तीर्थंकर हैं, पुरुषोत्तम हैं....यावत् सिद्धि गति रूप स्थान की प्राप्ति के लिये प्रवृत्ति करने वाले हैं-वे क्रमशः विचरण करते हुए एक गाँव से दूसरे गाँव को पावन करते हुए और सुखपूर्वक अर्थात् संयम और शरीर को खेद न हो इस प्रकार विहार करते हुए यहां पधारे हैं, यहां ठहरे हैं, यहां विराजमान हैं। इसी चम्पा नगरी के बाहर, पूर्णभद्र उद्यान में, संयमियों के योग्य स्थान को ग्रहण करके, संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए यहाँ विराजमान है।

तं महप्फलं खलु भो देवाणुप्पिया ! तहारूवाणं अरिहंताणं भगवंताणं णामगोयस्स वि सवणयाए; किमंग पुण अभिगमण वंदण णमंसण पडिपुच्छण पज्जुवासणयाए ?

भावार्थ - 'हे देवानुप्रिय ! तथारूप-महाफल की प्राप्ति कराने रूप स्वभाववाले अर्थात् अरिहन्त के गुणों से युक्त अरिहन्त भगवान् के नाम गोत्र को भी सुनने से महाफल की प्राप्ति होती है, तो फिर पास में जाने से, स्तुति करने से, नमस्कार करने से, संयम यात्रादि की समाधिपृच्छा करने से और उनकी सेवा करने से होने वाले फल की तो बात ही क्या ?' अर्थात् निश्चय ही महाफल की प्राप्ति होती है।

'एगस्स वि आयरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अत्थस्स गहणयाए ?

भावार्थ - उनके एक भी आर्य-श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त कराने वाले और धार्मिक-निज स्वरूप को प्राप्त कराने वाले मार्ग के लक्ष्य वाले उत्तम वचन को सुनने से और विपुल अर्थ के ग्रहण करने से होने वाले फल की तो बात ही क्या है ?

'तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं, वंदामो णमंसामो सक्कारेमो सम्माणेमो, कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासामो ।

भावार्थ - 'इसलिए हे देवानुप्रिय ! चलो हम सब-श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की सेवा में चलें। उनकी स्तुति करें। उन्हें नमस्कार करें। उनका सत्कार करें। सन्मान करें। उन कल्याण के हेतु

रूप, दुरितशमन-पापनाश के हेतुरूप, दिव्य स्वरूप अथवा दिव्य स्वरूप की प्राप्ति में हेतुरूप और ज्ञान स्वरूप अथवा ज्ञान प्राप्ति के हेतुरूप या निज स्वरूप की स्मृति के हेतुरूप की विनय से पर्युपासना-सेवा करें'।

एयं णो पेच्चभवे इहभवे य परभवे य हियाए सुहाए खमाए णिस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ'-

भावार्थ - 'वह हमारे द्वारा की गई भगवद् वंदना आदि परभव में और इस भव में पथ्य के समान हित के लिये, सुख के लिये, परिस्थितियों को साधना के अनुकूल बना लेने के लिये और मोक्ष के लिये या भव-परम्परा में मोक्षमार्ग में बाधक नहीं होने वाले सुखलाभ के लिये, हमें कारण रूप बनेंगी।

भगवान् के पास जनसमूह का गमन

त्ति कट्टु बहवे उग्गा उग्गपुत्ता, भोगा भोगपुत्ता- एवं दुपडोयारेणं राइण्णा, खत्तिया, माहणा, भडा, जोहा, पसत्थारो, मल्लई, लेच्छई, लेच्छईपुत्ता, अण्णे य बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्टि-सेणावइ-सत्थवाह-पभिइओ, अप्पेगइया वंदणवत्तियं, अप्पेगइया पूयणवत्तियं-एवं सक्कार-वत्तियं सम्माणवत्तियं दंसणवत्तियं कोऊहलवत्तियं।

भावार्थ - इस कारण बहुत से उग्र-ऋषभदेव के द्वारा स्थापित आरक्ष के वंशज, उग्रपुत्र-कुमार अवस्था वाले उग्रवंशी, भोग-ऋषभदेव के द्वारा गुरु रूप से स्थापित व्यक्तियों के वंशज अर्थात् पुरोहित, भोगपुत्र, राजन्य-ऋषभदेव के वयस्यों के अर्थात् समान उग्र वाले मित्रों के वंशज, राजन्यपुत्र, क्षत्रिय-सामान्य राजकुलीन, क्षत्रियपुत्र, ब्राह्मण, ब्राह्मणपुत्र, भट-शूर, भटपुत्र, योद्धा, योद्धापुत्र, प्रशास्ता-धर्मशास्त्र पाठक, प्रशास्तृपुत्र, मल्लकी- राजविशेष, मल्लकिपुत्र, लिच्छवी, लिच्छवीपुत्र और भी बहुत से माण्डलिक राजा, युवराज, तलवर-पट्टबंध-विभूषित राजस्थानीय पुरुष, माडम्बिक-एक जाति के नगर के अधिपति, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठि-श्री देवता' अंकित सुवर्णपट्ट-विभूषित धनपति, सेनापति, सार्थवाह आदि में से कई वन्दना करने के लिये, कई पूजा करने के लिये, कई सत्कार-सन्मान करने के लिये, कई दर्शन करने के लिये, तो कई कुतूहलवश भगवान् के पास जाने को तैयार हुए।

अप्पेगइया अट्टुविणिच्छय हेउं-अस्सुयाइं सुणे-स्सामो, सुयाइं णिस्संकियाइं करिस्सामो; अप्पेगइया अट्टाइं हेऊइं कारणाइं वागरणाइं पुच्छिस्सामो।

भावार्थ - कई लोग अर्थ निर्णय के लिये- 'नहीं सुने हुए भाव सुनेंगे, सुने हुए भावों को संशय-रहित बनाएँगे', कई-जीवादि अर्थ, पदार्थों में रहे हुए धर्म और नहीं रहे हुए धर्म से सम्बन्धित-

अन्वय-व्यतिरेक हेतु, कारण—तर्क संगत या युक्तियुक्त व्याख्या और व्याकरण-दूसरों के द्वारा पूछे गये अर्थों के उत्तर पूछेंगे'-

अप्येगइया सव्वओ समंता मुंडे भवित्ता, अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामो, पंचाणुवइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहि धम्मं पडिवज्जिस्सामो, अप्येगइया जिण भत्तिरागेणं, अप्येगइया जीयमेयं, त्ति कट्टु णहाया कयबलिकम्मा कयकोऊय-मंगलपायच्छित्ता, सिरसा-कंठेमालकडा आविद्ध-मणिसुवण्णा कप्पियहारऽद्धहार-तिसरय-पालंब-पलंबमाणकडिसुत्तय-सुकय-सोहाभरणा पवरवत्थपरिहिया चंदणोलित्तगायसीरा।

भावार्थ - कई-‘सभी से अपने सब भांति के सम्बन्धों का विच्छेद करके, गृहवास से निकलकर, अनगारधर्म को स्वीकार करेंगे’ या पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप गृहिधर्म-श्रावक धर्म को स्वीकार करेंगे, कई जिनभक्ति के राग से और कई-‘यह जीत व्यवहार-दर्शन करने को जाना-हमारी वंश-परंपरा का व्यवहार है’- इस प्रकार विचार करके स्नान किया, बलिकर्म (अर्थात् तेल मालिश, उबटन आदि स्नान सम्बन्धी सारा कार्य) कौतुक और मंगल रूप प्रायश्चित्त करके, सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित हुए। उन्होंने शिर पर और कण्ठ में मालाएँ धारण की। मणि-सुवर्ण जडित अलंकार पहनें। सुन्दर हार, अर्द्धहार, तीन लडियों वाले हार, कटिसूत्र और अन्य भी शोभा बढ़ाने वाले आभरण धारण किये। देह के अवयवों पर चन्दन का लेप लगाया।

अप्येगइया ह्यगया, एवं गयगया रहगया जाण-गया जुग्गया गिल्लिगया थिल्लिगया पवहणगया सिवियागया संदमाणियागया, अप्येगइया पायविहारचारिणो पुरिसवग्गुरापरिक्खित्ता महया उक्किट्टु-सीहणायबोल-कलकलरवेणं पक्खुब्भिय-महासमुहरवभूयंपिव करेमाणा पायददहेणं भूमिं कंपे-माणा अंबरतलमिव फोडेमाणा एगदिसिं एगाभिमुहा।

भावार्थ - कई घोड़े पर बैठे। इसी प्रकार हाथी, रथ, यान अर्थात् गाड़ी पर बैठे हुए, युग्य अर्थात् गोल्लदेश में प्रसिद्ध पालखी जो कि दो हाथ प्रमाण चार कोने वाली वेदिका से सुशोभित, गिल्लि अर्थात् हाथी पर रखे हुए अम्बाड़ी के समान सवारी, थिल्लि अर्थात् लाट देश में प्रसिद्ध पालखी विशेष, प्रवहन अर्थात् वेगसर नाम की सवारी शिविका-कूटाकार ढँकी हुई पालखी और स्यंदमाणिका—पुरुष प्रमाण लम्बी पालखी पर सवार हुए, तो कई पैदल ही चारों ओर पुरुषों से घिरे हुए, आनन्द-महाध्वनि, सिंहनाद, बोल और कलकल महान् शब्द से सारी नगरी को, घोष से युक्त क्षुभित महासमुद्र के तुल्य-सी करते हुए एवं पैरों से धरती को कम्पित करते हुए तथा आकाश को स्फुटित करते हुए जिधर भगवान् विराजते थे उस दिशा की तरफ मुख करके चले।

चंपाए णयरीए मञ्जमञ्जेणं णिगच्छंति। णिगच्छित्ता जेणेव पुण्णभदे चेइए, तेणेव उवागच्छंति।

भावार्थ - चम्पा नगरी के मध्य से होकर निकले। फिर जहां पूर्णभद्र उद्यान था वहां आये।

उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्ताइए तित्थयराइसेसे पासंति।

भावार्थ - कुछ नजदीक आने पर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के, तीर्थकर रूप से परिचय देने वाले छत्राति छत्र आदि अतिशय देखें।

पासित्ता जाण वाहणाइं ठावइंति। ठावइत्ता जाणवाहणेहिंतो पच्चोरुहंति। पच्चोरुहित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छंति।

भावार्थ - अतिशयों को देखकर, यान, गाड़ी, रथ आदि और वाहन बैल, अश्व आदि को ठहराये और उनसे नीचे उतरे। फिर जहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे वहां आये।

उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करंति। करित्ता वंदंति णमंसंति।

भावार्थ - वहां आकर, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की; स्तुति की और उन्हें नमस्कार किया।

वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणा णमंसमाणा अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा पज्जुवासंति।

भावार्थ - स्तुति-नमस्कार करके, भगवान् की ओर मुख रखकर, विनय से दोनों हाथ जोड़कर, न अधिक नजदीक और न अधिक दूर ऐसे स्थान पर स्थित होकर, नमस्कार मुद्रा से श्रवण करते हुए, पधुंपासना-सेवा करने लगे।

कोणिक को भगवान् की दिन चर्या का निवेदन

२८- तएणं से पवित्तिवाउए इमीसे कहाए लद्धेइए समाणे हट्टुइए जाव हियए। पहाए जाव अप्पमहग्घा-भरणालंकियसरीरे, सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ।

भावार्थ - तब भगवान् महावीर स्वामी के आगमन की बात विदित होने पर वह प्रवृत्तिव्यापृत-भगवान् की विहारचर्या की खबर रखने वाला मुख्य अधिकारी-इस बात को जानकर, बहुत खुश हुआ...यावत् विकसित हृदय हुआ। उसने स्नान किया....अल्प भारवाले किन्तु मूल्यवान् आभरणों से शरीर को अलंकृत किया, फिर वह अपने घर से बाहर निकला।

सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमित्ता चंपा णयरि मज्झंमज्झेणं जेणेव बाहिरिया.....सव्वेव हेट्टिल्ला वत्तव्वया जाव णिसीयइ ।

भावार्थ - वह चम्पा नगरी के मध्य बाजार से होता हुआ जहां कोणिक राजा की बाहरी राजसभा थी....(इसके बाद का सभी वर्णन-जो कि पहले कहा जा चुका है-यहां तक कहना चाहिए, कि - 'कोणिक राजा भगवान् महावीर स्वामी को वंदना-नमस्कार करके, सिंहासन पर बैठा') ।

णिसीइत्ता तस्स पवित्तिवाउयस्स अद्धतेरस-सयसहस्साइं पीइदाणं दलयइ ।
दलयित्ता सक्कारेइ सम्माणेइ । सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ ।

भावार्थ - कोणिक राजा ने सिंहासन पर बैठकर, उस प्रवृत्तिव्यापृत को साढ़े बारह लाख स्वर्ण की मुद्राओं का प्रीतिदान दिया; सत्कार-सन्मान किया और उसे विसर्जित किया ।

विवेचन - इस मूल सूत्र में तो चाँदी या स्वर्ण के सिक्कों का उल्लेख नहीं है । किन्तु ग्रन्थान्तर में चक्रवर्ती आदि के प्रीतिदान का उल्लेख है । यथा -

विन्ती उ सुवण्णस्सा बारस अद्धं च सय सहस्साइं ।

तावइय चिय कोडी पीइदाणं तु चक्कस्स ॥

एयं चेव पमाणं नवरं रययं तु केसवा दिंति ।

मंडलियाण सहस्सा, पीइदाणं सयसहस्सा ॥

इसके अनुसार ही यहां 'स्वर्ण के सिक्के' अर्थ किया है । सुना जाता है कि - सवा सोलह मासे की एक मुद्रा होती है । कोई कोई 'चाँदी की मुद्रा'-रूप अर्थ भी करते हैं ।

कोणिक राजा का आदेश

२९- तएणं से कोणिए राया भंभसारपुत्ते बलवाउयं । आमंतेत्ता एवं वयासी-

भावार्थ - तब भंभसार के पुत्र कोणिक राजा ने बलवाउय- बल व्यापृत=सैन्यव्यापार में कुशल या सैन्य कर्मचारी-को बुलाया और वह उससे इस प्रकार बोला-

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेहि ।
हयगयरहपवरजोहकलियं च चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेहि ।

भावार्थ - हे देवानुप्रिय ! आभिषेक्य (अभिषेक के योग्य अथवा विधिपूर्वक प्रधानपद पर स्थापित) हस्तिरत्न-श्रेष्ठ हाथी को सजाकर तैयार करो । घोड़े, हाथी, रथ और प्रवर योद्धाओं सहित चार अंगोंवाली सेना को तैयार करो-सजाओ ।

सुभद्दापमुहाण य देवीणं बाहिरिया उवट्टाण-सालाए पाडिएक्कपाडिएक्काइं
जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं उवट्टवेह ।

सचावसर पहरणावरणभरियजुद्धसज्जं सच्छत्तं सज्जयं सघटं सपडागं
पंचामेलअपरिमंडियाभिरामं ।

भावार्थ - अस्त्र, कवच आदि युद्धसज्जा से युक्त किया। छत्र, ध्वज और घण्टा को यथास्थान योजित किये। फिर उसे पांच कलंगियों-आमेलक-चूडा से विभूषित करके, रम्य बनाया।

ओसारियजमलजुयलघटं, विज्जुपणद्धं व काल-मेहं, उप्पाइयपव्वयं व चंकमंतं,
मत्तं गुलगुलंतं महा-मेहंमिव मणपवणजइणवेगं, भीमं संगामिया योग्गं, आभिसेक्कं
हत्थिरयणं पडिकप्पइ ।

भावार्थ - उसके दोनों तरफ समरूप से दो घण्टाएँ लटकाईं। शस्त्र, अस्त्रादि की उज्वल दीप्ति से युक्त होने से वह बिजली सहित काले मेघ के समान दिखाई दे रहा था। उसका देह इतना विशाल था कि मानो वह अपने स्थान से ऊँचा उठा हुआ कोई चलता-फिरता हुआ पर्वत हो। इस प्रकार मन और पवन की गति को भी मात करने वाले वेग से युक्त, मत्त और गुलगुल शब्द करते हुए उस प्रधान हस्तिरत्न को, संग्राम की सभी सामग्रियों से युक्त बनाकर तैयार किया।

पडिकप्पेत्ता ह्यगयरहपवरजोहकलियं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेइ । सण्णाहित्ता
जेणेव बलवाउए तेणेव उवागच्छइ । उवागच्छित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ ।

भावार्थ - महावत ने हस्तिरत्न को तैयार करके, अश्व, गज, रथ और श्रेष्ठ योद्धाओं वाली चतुरंगिनी सेना को सजाई। फिर वह 'हत्थिवाउय' - महावत 'बलवाउय'-सेना नायक के पास गया और आज्ञा-पालन की सूचना दी।

तए णं से बलवाउए जाणसालियं सहावेइ । सहावित्ता एवं वयासी - 'खिप्पामेव
भो देवाणुप्पिया ! सुभद्दापमुहाणं देवीणं बाहिरियाए उवट्टाणसालाए पाडिएक्कपाडि-
एक्काइं जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं उवट्टवेह । उवट्टवित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि ।

भावार्थ - तब सेना नायक ने यानशालिक-रथादि यान और वाहनों का संरक्षक-को बुलाया और उससे इस प्रकार कहा- 'हे देवानुप्रिय ! जल्दी ही सुभद्रा आदि देवियों के लिये प्रत्येक के अलग-अलग गमन करने को उद्यत-जुते हुए यानों को बाहरी सभाभवन में उपस्थित करो और आज्ञा पालन की सूचना दो।'

दिवेचन - इस वर्णन-क्रम से ऐसा प्रतीत होता है कि-हस्तिरत्न और सेना की सजावट की सूचना मिलने के बाद यानशालिक को आज्ञा दी गई। किन्तु इसे वर्णनशैलीगत भास मात्र ही मानना चाहिए। क्योंकि एक-एक कार्य के पूरा होने के बाद यदि आज्ञा प्रदान होता रहे तो समय बहुत ही अधिक बीत जाता है। अतः यहाँ 'तएणं' पद से 'कोणिक राजा के आज्ञा देने के बाद' - यह आशय लेना चाहिए।

तएणं से जाणसालिए बलवाउयस्स एयमटुं आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ। पडिसुणित्ता जेणेव जाणसाला तेणेव उवागच्छइ।

भावार्थ - तब यानशालिक ने सेनानायक की आज्ञा के वचन विनय से सुने। इसके बाद जहाँ यानशाला थी वहाँ आया।

तेणेव उवागच्छित्ता जाणाइं पच्चुवेक्खइ। पच्चुवेक्खित्ता जाणाइं संपमज्जेइ। संपमज्जेत्ता जाणाइं णीणेइ। (जाणाइं संवट्टेइ संवट्टेइत्ता) जाणाइं णीणेत्ता जाणाइं संवट्टेइ। जाणाइं संवट्टेत्ता जाणाणं दूसे पवीणेइ।

भावार्थ - उसने यानशाला में आकर यानों का निरीक्षण किया। उनके ऊपर की धूलि पोंछी। यानों को बाहर निकाले। योग्य स्थान पर इकट्ठे किये। उनके ऊपर के ढंके हुए वस्त्रों-दूष्यों को अलग हटाए। अथवा उन्हें झूल से ढंके।

पवीणेत्ता जाणाइं समलंकरेइ समलंकरेत्ता जाणाइं वरभंडगमंडियाइं करेइ।

भावार्थ - यानों को यंत्र आदि से अलंकृत किये उन्हें श्रेष्ठ भूषणों से भूषित किये।

करेत्ता जेणेव वाहणसाला तेणेव उवागच्छइ। तेणेव उवागच्छित्ता वाहणाइं पच्चुवेक्खइ।

भावार्थ - वह जहाँ वाहनशाला थी वहाँ गया। उसने वाहनों का निरीक्षण किया।

पच्चुवेक्खित्ता वाहणाइं संपमज्जेइ। संपमज्जेत्ता वाहणाइं णीणेइ। णीणेत्ता वाहणाइं अप्फालेइ। अप्फालेत्ता दूसे पवीणेइ। पवीणेत्ता वाहणाइं समलंकरेइ। समलंकरेत्ता वरभंडगमंडियाइं करेइ।

भावार्थ - वाहनों का संप्रमार्जन किया। उन्हें बाहर निकाले। हाथ से थपथपाये। मच्छर आदि से रक्षा के लिये उन पर ढंके हुए वस्त्र अलग हटाये अथवा उन्हें वस्त्र से ढंके। उन्हें अलंकृत किये। श्रेष्ठ आभरणों से सजाए।

करेत्ता वाहणाइं जाणाइं जोएइ। जोएत्ता पओयलट्टिं पओयधरे य समं आडहइ।

भावार्थ - वाहनों-बैल आदि को यानों-गाड़ी, रथ आदि में जोड़े। पयोयलट्टि-वाहनों को हांकने की लकड़ी आदि अथवा चाबुक और पयोयधरों-गाड़ी खेड़ने वाले या गाड़ीवान् को साथ में नियुक्त किये।

आडहित्ता वटुं वट्टमगं गाहेइ। गाहेत्ता जेणेव बलवाउए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता बलवाउयस्स एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ।

भावार्थ - उन जुते हुए यानों को मार्ग पर खड़े किये। फिर वह जहाँ सेनानायक था वहाँ आया और उनकी आज्ञा के पालन की सूचना दी।

तएणं से बलवाउए णयरगुत्तिए आमंतेइ। आमंतेत्ता एवं वयासी-‘खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चंपं णयरिं सत्थिभतरबाहिरियं आसित्त जाव कारवेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि।’

भावार्थ - तब सेनानायक ने नगरपाल-नगरगुप्तिक-नागरिक स्वच्छता के तंत्र संचालक या नगर रक्षक-को बुलाया और इस प्रकार कहा-‘जल्दी ही हे देवानुप्रिय ! चम्पानगरी को बाहर और भीतर से स्वच्छ, जलसिञ्चित कराओ यावत् ऐसा करवा कर मुझे आज्ञापालन की सूचना दो।

तएणं णयरगुत्तिए बलवाउयस्स एयमट्ठं आणाए विणएणं पडिसुणेइ। पडिसुणित्ता चंपं णयरिं सत्थिभतरबाहिरियं आसित्त जाव कारवेत्ता जेणेव बलवाउए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ।

भावार्थ - तब नगरपाल ने ‘बलवाउय’-सेनानायक की इस आशय की आज्ञा विनय से सुनी। वह चम्पानगरी को भीतर और बाहर से सिञ्चित, स्वच्छ आदि करवा कर सेनानायक के पास आया और आज्ञा पालन की सूचना दी।

तए णं से बलवाउए कोणियस्स रण्णे भंभसारपुत्तस्स आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पियं पासइ। हयगय जाव सण्णाहियं पासइ। सुभद्दापमुहाणं देवीणं पडिजाणाइं उवट्टुवियाइं पासइ। चंपं णयरिं सत्थिभतर जाव गंधवट्ठिभूयं कयं पासइ।

भावार्थ - इसके बाद सेना नायक ने भंभसारपुत्र कोणिक राजा के आभिषेक्य हस्तिरत्न को सजा हुआ देखा। घोड़े, हाथी आदि सेना को सजी हुई देखी। सुभद्रा आदि देवियों के जुते हुए यान-देखे और बाहर-भीतर से स्वच्छ यावत् सुगन्धित से महकती हुई चम्पानगरी को देखी।

पासित्ता हट्टुत्तुच्चित्तमाणंदिए पीयमणे जाव हियए जेणेव कोणिए राया भंभसारपुत्ते, तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता करयल जाव एवं वयासी।

भावार्थ - देखकर, वह हृष्ट-तुष्ट चित्तवाला, आनंदित, प्रीतियुक्त मन वाला यावत् विकसित हृदय वाला हुआ और जहाँ भंभसारपुत्र कोणिक राजा था वहाँ उसके पास आया। फिर हाथ जोड़कर यावत् इस प्रकार बोला-

कप्पिए णं देवाणुप्पियाणं आभिसेक्के हत्थिरयणे, हयगयरहपवरजोहकलिया य चाउरंगिणी सेणा सण्णाहिया सुभद्दापमुहाणं च देवीणं बाहिरियाए य उवट्टाणसालाए पाडिएक्कपाडिएक्काइं जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं उवट्टावियाइं, चंपा णयरी सत्थिभ-तरबाहिरिया आसित्त जाव गंधवट्ठिभूया कया। तं णिज्जंतु णं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं अभिवंदउं।

लणकरणगुणणिम्माएहिं अट्टिसुहाए मंससुहाए तथा-सुहाए रोमसुहाए चउव्विहाए संवाहणाए संवाहिए समाणे;

भावार्थ - तैलचर्म-आसन विशेष पर स्थित होकर हाथ-पैर के अत्यन्त कोमल तले वाले पुरुषों के द्वारा अस्थिसुखा-हड्डियों के लिए सुखकर, मांससुखा, त्वक्सुखा—चमड़ी के लिये सुख कर और रोमसुखा—इन चार प्रकार की सम्बाधना-चंपी से सम्बाधित (चंपी की गई है, जिनकी ऐसे) हुए। वे चंपी करने वाले पुरुष छेक निपुण, दक्ष, चतुर, प्राप्तार्थ-उस विषय के आचार्य से उस कला को सीखे हुए, कुशल-सम्बाधना कर्म में श्रेष्ठ या साधक, मेधावी-अपूर्व विज्ञान को ग्रहण करने की शक्ति वाले, अंगमर्दन आदि सूक्ष्म कलाओं के ज्ञाता और अभ्यंगन-तैलादि मर्दन, परिमर्दन- तैलादि को अंगों में पहुँचाने के लिये किये जाने वाले मर्दन विशेष और उद्वलन-उलटे रोएँ से किया जाने वाला मर्दन या मर्दन के बाद मल उतारने की क्रिया विशेष के करने में जो गुण हैं उनको निपजाने की शक्ति वाले थे।

विवेचन - इस सूत्र में अभ्यंगनकला और सम्बाधनाकला का संक्षेप में वर्णन हैं। इन कलाओं की भी शिक्षा ली जाती थी और उसके शिक्षण में भी पात्र-अपात्र का विचार किया जाता था।

तैलचर्म-तैलमर्दन के बाद जिस पर स्थित रह कर चंपी करवाई जाती है, उसे तैलचर्म कहते हैं।

अवगयखेयपरिस्समे अट्टणसालाउ पडिणिक्खमइ।

भावार्थ - कोणिक राजा इस प्रकार खेद-दीनता या अनुत्साह और परिश्रम (व्यायाम-जनित शरीर की अस्वस्थता विशेष) के दूर हो जाने पर व्यायामशाला से बाहर निकला।

पडिणिक्खमित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ। तेणेव उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ।

भावार्थ-जहाँ स्नान घर-था वहाँ आया उसमें प्रवेश किया।

अणुपविसित्ता समत्तजालाउलाभिरामे विचित्त-मणि-रयणकुट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि णाणामणिरयण-भत्तिचित्तंसि ण्हाणपीढंसि सुहणिसण्णे, सुहोदएहिं गंधोदएहिं पुष्पोदएहिं सुद्धोदएहिं पुणो पुणो कल्लाणगपवरमज्जणविहीए मज्जिए।

भावार्थ - स्नान घर में प्रवेश करके, चारों ओर जाली अथवा मुक्ताजाली से व्याप्त अभिराम और विचित्र मणिरत्नों से बने हुए रमणीय आंगन वाले तथा नाना मणि-रत्नों से चित्रमय बनी हुई भित्ति वाले स्नानमण्डप में स्नानपीठ-स्नान के लिये बैठने की चौकी - पर सुख से बैठा। फिर तीर्थ आदि के जल अथवा सुखोदक-जिसका स्पर्श सुखकर बनाया गया हो ऐसा जल, गन्धोदक-श्रीखण्ड-चन्दन आदि रस से मिश्रित जल, पुष्पोदक- पुष्परस मिश्रित जल और शुद्धोदक-स्वाभाविक जल से कल्याणक- आनंदकारी और अतिश्रेष्ठ स्नान की विधि से स्नान किया।

तत्थ कोउयसएहिं बहुविहेहिं कल्लाणगपवरमज्जणावसाणे यम्ल-सुकुमालगंधकासाइयलूहियंगे सरससुरहिगोसीसचंदणाणुलित्तगत्ते।

भावार्थ - वहाँ बहुत प्रकार से रक्षादि की सैकड़ों कौतुक विधियों के द्वारा श्रेष्ठ कल्याणक मज्जन को समाप्त करने के बाद रोएंदार, सुकोमल, सुगन्धित और काषायित-हरड़े, बहेड़ा आदि कसीली औषधियों से रञ्जित अथवा काषाय-लाल वस्त्र से अंग पोंछा। फिर सरस सुरभित गोरोचन और चंदन से गात्र को लिप्त किया।

अहयसुमहग्घदूसरयणसुसंवुए सुइमालावण्णग-विलेवणेआविद्धमणिसुवण्णे कप्पियहारद्धहारतिस-रयपालंबपलंब माणकडिसुत्तसुकयसोभे।

भावार्थ - मल-मूषिकादि से अदूषित-अहत और बहुमूल्य दूष्यरत्न-प्रधानवस्त्र को उत्तम ढंग से पहना। पवित्र पुष्पमाला धारण की। कुंकुमादि के शोभनीय विलेपन किये। मणिजटित सुवर्णालङ्कार पहने। गठित हार, अर्द्धहार-नवलड़ी का हार, त्रिसरक- तीन लड़िया हार, लम्बी लटकती हुई फूलमाला और कटिसूत्र- कंदोरा से शोभा की सुन्दरता से वृद्धि की।

पिणद्धगेविज्जगअंगुलिज्जगललियंगयललिय-कयाभरणेवरकडगतुडियथंभियभुए।

भावार्थ - कण्ठले बांधे। अंगुठियाँ पहनी। इस प्रकार सुन्दर शरीर पर सुन्दर आभूषणों को धारण किये अथवा 'ललितांग' नामक देव के समान कोणिक राजा के केश और आभरण ललित थे। श्रेष्ठ कङ्कणों और तोड़ों से भुजाएँ स्तंभित हो गई थी।

अहियरूवसस्सिरीए महिया पिंगलंगुलिए कुंडलउज्जोवियाणणे मउडदित्तिसिए हारोत्थय-सुकयरइयवच्छे।

भावार्थ - इस प्रकार वह बहुत अधिक शोभा से युक्त हो गया। कुण्डलों की प्रभा से मुख दमकने लगा। मुकुट की कान्ति से शिर दीप्त हो रहा था। हार के आच्छादन से वक्षस्थल रुचिर बना हुआ था।

पालंबपलंबमाणपडसुकयउत्तरिज्जे णाणा-मणि-कणग-रयण-विमल-महरिह-णिउणोवियमिसिमिसंत-विरइय-सुसिलिट्ट-विसिट्ट-लट्ट-आविद्ध-वीरवलाए।

भावार्थ - लम्बे लटकते हुए या झुम्बमान वस्त्र के उत्तरीय- ऊपर का वस्त्र को सुन्दर ढंग से धारण किया। श्रेष्ठ शिल्पी के द्वारा निर्मल और बहुमूल्य विविध मणि, स्वर्ण और रत्नों से चतुराई से परिकर्मित-कलात्मक बनाये गये, सुश्लिष्ट-जहाँ मजबूत जोड़ चाहिए वहाँ मजबूत जोड़ वाले, विशिष्ट मनोहर और देदीप्यमान वीर वलय-वीरत्व सूचक कड़े पहने।

विवेचन - 'यदि अन्य कोई भी सुभट वीर है, तो वह इन वलयों का मोचन करके मुझको हराये'-इस प्रकार स्पर्धा करते हुए जिन कड़ों को पहना जाता है उन्हें 'वीर वलय' कहते हैं।

किं बहुणा ? कप्परुक्खए चेव अलंकियविभूसिए णरवई सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं चउचामरवाल-वीजियंगे मंगलजयसहकयालोए मज्जणघराओ पडिणिक्खमइ।

भावार्थ - अधिक क्या ? कल्पवृक्ष के समान अलंकृत और विभूषित होकर, जब नरपति मज्जनगृह से बाहर निकले उस समय कोरंट पुष्प की मालाओं से युक्त छत्र धारण किये हुए थे और आजुबाजु चार चामर डुलाये जा रहे थे। मनुष्यों को उसके दर्शन होने पर उन्होंने मंगल के लिए जयध्वनि की।

मज्जणघराउ पडिणिक्खमित्ता अणेग-गण-णायगदंडणायग-राईसर-तलवर-मांडंबिय-कोडुंबिय-इब्भसेट्टि-सेणावइ-सत्थवाह-दूय-संधिवाल-सद्धि-संपरिवुडे धवल-महामेह-णिग्गए इव गहगण-दिप्पंतरिक्ख-तारागणाण मज्जे ससिच्च पियदंसणे णरवई जेणेव बाहिरिया उवट्टाणसाला जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ।

भावार्थ - मज्जनगृह से निकल कर अनेक गणनायक, दंडनायक, राजा, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, दूत और संधिपाल से घिरे हुए, सफेद महामेघ से निकले हुए-से ग्रहगण, नक्षत्र और तारागण के मध्य में चन्द्र के समान प्रिय दर्शन वाला, नरपति-राजा जहाँ बाहरी सभाभवन था, जहाँ आभिषेक्य-प्रधान श्रेष्ठ हस्ति था वहाँ आया।

अभिवन्दना के लिए प्रस्थान

उवागच्छित्ता अंजणगिरिकूडसण्णिभं गयवइं णरवई दूरूढे।

भावार्थ - वहाँ आकर, अञ्जनगिरि-काजल के पर्वत के शिखर के समान गजपति पर नरपति सवार हुआ।

तएणं तस्स कोणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स आभिसिक्कं हत्थिरयणं दुरूढस्स समाणस्स तप्पढमयाए इमे अट्टुमंगलया पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टिया।

भावार्थ - उस भंभसारपुत्र कोणिक राजा के आभिषेक्य हस्तिरत्न पर सवार हो जाने पर सर्व प्रथम ये आठ मंगल क्रमशः खाना किये गये।

तं जहा-सोवत्थिय १, सिरिवच्छ २, णंदियावत्त ३, वद्धमाणक ४, भद्दासण ५, कलस ६, मच्छ ७, दप्पण ८।

भावार्थ - वे इस प्रकार हैं-१. स्वस्तिक २. श्रीवत्स ३. नन्द्यावर्त ४. वर्द्धमानक ५. भद्रासन ६. कलश ७. मत्स्य और ८. दर्पण।

तथाऽणंतरं च णं पुण्ण-कलस-भिंंगारं, दिव्वा य छत्तपडागा सचामरा दंसणरइयआलोयदरिसण्णिजा वाउद्धय-विजयवेजयंती उस्सिया गगणतलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टिया।

भावार्थ - इसके बाद जल से परिपूर्ण कलश एवं झारी और दिव्य छत्र पताका—जो कि चामर से युक्त, राजा के दृष्टिपथ में स्थित वायु से फहराती हुई विजय सूचक 'वैजयन्ती' नामक लघुपताकाओं से युक्त और ऊँची उठाई हुई थी, वह—गगन तल को स्पर्श करती हुई—सी आगे रवाना हुई।

तयाऽणंतरं च णं वेरुलियभिसंतविमलदंडं पलंबकोरंटमल्लदामोवसोभियं चंदमंडलणिभं समूसियविमलं आयवत्त-पवरं सीहासणं वरमणिरयणपादपीढं सपाउयाजोयसमाउत्तं बहुकिंकरकम्मकरपुरिसपायत्तपरिक्खत्तं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टियं।

भावार्थ - इसके बाद वैदूर्य—लहसुनिया रत्न के दैदीप्यमान विमल दण्डवाला, कोरण्ट पुष्प की लम्बी लटकती हुई मालाओं से सुशोभित, चन्द्रमण्डल के समान ऊँचा तना हुआ श्रेष्ठ आतपत्र— धूप से रक्षा करने वाला—छत्र, सिंहासन और श्रेष्ठ मणिरत्नों का पादपीठ—पैर रखने की चौकी—जिस पर राजा की पादुका की जोड़ रखी हुई थी और जो अनेक किङ्करो—प्रत्येक कार्य पृच्छापूर्वक करने वाले सेवक या किसी खास कार्य—विभाग में नियुक्त वैतनिक सेवक और पदातियों—पैदल सैनिकों से घिरा हुआ था—आगे आगे क्रमशः रवाना किया गया।

तयाऽणंतरं बहवे लट्टिग्गाहा कुंतग्गाहा चावग्गाहा चामरग्गाहा पासग्गाहा पोत्थयग्गाहा फलगग्गाहा पीढग्गाहा वीणग्गाहा कूवग्गाहा हडप्फग्गाहा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टिया।

भावार्थ - इसके बाद बहुत—से लट्टधारी, कुंत—भाला विशेष धारी, धनुर्धारी, चामरधारी, पाशा—छूत सामग्री धारी, पुस्तक—आय के ज्ञान के लिए रखी जाने वाली नोंध या पण्डित के उपकरण—धारी, फलकधारी, पीठ—आसन विशेष धारी, वीणाधारी, कुतुप— पक्व तैलादि के भाजन या सुगंधित तैल के शीशे धारी और हडप्फ—द्रम्मादि सिक्के के भाजन या सुगन्धित चूर्ण—ताम्बूल आदि के लिए सुपारी आदि के डिब्बे—धारी पुरुषों को रवाना किये।

तयाऽणंतरं बहवे डंडिणो मुंडिणो सिंहडिणो जडिणो पिच्छिणो हासकरा डमरकरा दवकरा चाटुकरा वादकरा कंदप्पकरा कोक्कुइया किट्टिकरा वायंता गायंता हसंता णच्चंता भासंता सार्वंता

(असिलट्टिकुंतचावे, चामरपासे य फलगपात्थे य।

वीणकूयग्गाहे, तत्तो य हडप्फग्गाहे य॥ १॥

दंडी, मुंडी, सिंहंडी, पिच्छी जडिणो य हासकिड्डा य।

दवकारा चाटुकारा, कंदप्पिय कोक्कुइयग्गाहा॥ २॥

गायंता वायंता, णच्चंता तह हसंत हासिंता।

सार्वंता सार्वंता, आलोय जयं पउजंता॥ ३॥)

रक्खंता आलोयं च करेमाणा, जयजयसहं पउंजमाणा, पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टिया।

भावार्थ - फिर बहुत से दण्डी, मुण्डी-मुण्डे हुए शिरवाले, शिखण्डी-शिखाधारी, जटी-जटाधारी, मयूरपिच्छ आदि के धारक, हास्यकर-विदूषक, डमरकर-हुल्लड़बाज चाटुकर-खुशामदिये या प्रियवादी, दक्कर-मजाकिये, वादकर-विवादी, कन्दर्पकर-काम प्रधान क्रीड़ा करने वाले या शृंगारिक चेष्टाएँ करने वाले, कौत्कुचिक- भांड और कीर्तिकर-भाट बजाते हुए, गाते हुए, हँसते हुए, नाचते हुए, बोलते हुए, शिक्षा देते हुए, रक्षा करते हुए, राजादि का अवलोकन करते हुए और ध्वनि करते हुए क्रमशः आगे रवाना हुए।

तयाऽणंतरं जच्चाणं तरमल्लिहायणाणं हरिमेला-मउल मल्लियच्चाणं चंचुच्चियललियपुलियचलचवल-चंचलगईणं लंघणवग्गणधावणधोरणातिवई-जइणसिक्खियगईणं ललंत-लागगललायवरभूसणाणं मुहभंडग-ओचूलगथासग-मिलाण चमरीगंडपरिमंडियकडीणं किंकर-वर-तरुण-परिग्गहियाणं थासग अहिलाणचामरगंड-परिमंडियकडीणं-अट्टसयं वरतुरगाणं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टियं।

भावार्थ - इसके बाद वेगादिकारक वर्ष वाले—यौवन वयवाले, स्थासक—आभूषण विशेष, अहिलाण (मुख संयमन-लगाम) से युक्त और चामरदण्ड से सजी हुई कटिवाले एक सौ आठ श्रेष्ठ घोड़े क्रमशः आगे रवाना किये। हरिमेला-वनस्पति विशेष की नवकलिका और मल्लिका सरीखी उनकी आँखें थी-सफेद आँखें थी। उनकी चाल बांकी, विलास युक्त-ललित और कोतल-पुलित-नृत्यमय थी, उनके अस्थिर शरीर की चपलता से चञ्चल थी और लांघने, कूदने, दौड़ने, गति की चतुराई, त्रिपदी-चलते हुए भूमि पर तीन पैरों का ही टिकना, जय या वेग से युक्त और शिक्षित थी। उनके गले में हिलते हुए रम्य श्रेष्ठ भूषण पड़े हुए थे। विमुख-भण्डक— मुख का भूषण-मोरा आदि, अवचूल—लम्बे गुच्छक, स्थासक, पलाण से युक्त और चामर दण्ड से सजी हुई कटिवाले थे। उन्हें श्रेष्ठ तरुण किङ्करोँ ने पकड रखे थे।

तयाऽणंतरं च ण ईसीदंताणं ईसीमत्ताणं ईसीतुंगाणं ईसीउच्छंग-विसाल-धवल-दंताणं कंचणकोसी-पविट्टु-दंताणं कंचण-मणिरयण-भूसियाणं वर-पुरिसा-रोहग-सुसंपउत्ताणं अट्टसयं गयाणं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टियं।

भावार्थ - उनके बाद एक सौ आठ हाथी क्रमशः आगे रवाना किये गये। उन कुछ मत्त और ऊँचे हाथियों के दांत कुछ बाहर निकले हुए थे। वे दांत पिछले हिस्से में कुछ विशाल थे, सफेद थे और स्वर्ण आवरण से युक्त थे। वे हाथी स्वर्ण और मणि रत्नों से भूषित थे।

तयाऽणंतरं सच्छत्ताणं सज्झयाणं सघंटाणं सपडागाणं सतोरणवराणं

सणदिघोसाणं सखिंखिणी-जालपरिक्खित्ताणं हेमवयचित्ततेणिसकणग-
णिज्जुत्तदारुयाणं कालायससुकय णेमि-जंत-कम्माणं सुसिलिद्वुत्तमंडलधुराणं
सुसंविद्ध-चक्कमंडलधुराणं आइण्ण-वरतुरग-सुसंपउत्ताणं कुसलनरच्छेयसारहि-
सुसंपग्गहिआणं हेमजाल गवक्खजाल खिंखिणि-घण्टाजाल परिक्खित्ताणं बत्तीस-
तोणपरिमंडियाणं सकंकडवडेंसगाणं सच्चावसर-पहरणावरण-भरिय-जुद्ध-सज्जाणं
अट्टसयं रहाणं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टियं ।

भावार्थ - इसके बाद एक सौ आठ रथ यथाक्रम आगे बढ़ाये गये। वे रथ, छत्र, ध्वज, घण्टा, पताका, तोरण और नंदिघोष-बारह प्रकार के बाजों की ध्वनि से युक्त थे। छोटी घण्टियों या चूंघरियों के जाल से ढंके हुए थे। उनमें हिमवान् पर्वत पर उत्पन्न हुए विविध प्रकार के तिनिश-शीशम की जाति के वृक्ष की स्वर्ण खचित लकड़ी लगी हुई थी। 'कालायस' (एक जाति का लोहा) से नेमि-पहिये की परिनी-पाटे को बन्धन-क्रिया-यंत्र कर्म के द्वारा सुन्दर बनाई गई थी। उन रथों की धुराएँ सुश्लिष्ट-उत्तम रीति से संधी हुई और बिलकुल गोल थीं। उनमें जातिवान् सुन्दर घोड़े जुते हुए थे और उनकी बागडोर, सारथि-कला में कुशल पुरुष पकड़े हुए थे। वे बत्तीस तोणों-तरकशों से सुसज्जित थे। कवचों और टोपों से युक्त थे। उनमें धनुष्य, बाण, खड्ग आदि युद्ध की सामग्री भरी हुई थी।

विवेचन - नंदिघोष अर्थात् बारह प्रकार के तूर्यों-बाजों का घोष। बारह तूर्य ये हैं -

भंभा १, मउंद २, मडल ३, कडंब ४, झल्लरि ५, हुडुक्क ६, कंसाला ७।

काहल ८, तलिमा ९, वंसो १०, संखो ११, पणवो १२, य बारसमो ॥

तयाऽणंतंरचणं असि-सत्ति-कोंत-तोमर-सूल-लउड-भिंडिमाल-धणु-पाणिसज्जं
पायत्ताणीयं सणद्धबद्धवम्मियकवयाणं उप्पीलियसरासण वट्टियाणं पिणद्धगेवेज्ज-
विमलंवरबद्धचिंधपट्टाणं गहियाउहप्पहरणाणं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्टियं ।

भावार्थ - उन रथों के पीछे तलवार, शक्ति, कुन्त-भाला, लकुट-लट्टियाँ, भिण्डिमाल और धनुष हाथ में लिये हुए, पदातिदल-पैदल सेना आगे आगे क्रमशः चल रहा था।

तए णं से कोणिए राया हारोत्थय-सुकयरययवच्छे कुंडलउज्जोवियाणणे
मउडदित्तिसिए णरसीहे णरवई णरिदे णरवसहे मणुय-राय-वसभकप्पे अब्भहिय-
राय-तेयलच्छीए दिप्पमाणे हत्थिक्खंधवरगए ।

भावार्थ - उनके बाद कोणिक राजा था। उसका वक्षस्थल हारों से सुशोभित था। कुण्डलों से मुख झुतिमान हो रहा था। मुकुट से शिर देदीप्यमान था। वह नरों में सिंह, नरों के स्वामी नरों के इन्द्र, नरों में-लिए हुए भार के निर्वाहक वृषभ और नृपतियों के नायक-चक्रवर्ती के तुल्य थे। हाथी के श्रेष्ठ स्कंध-खंधे पर स्थित अत्यधिक राजतेज रूप लक्ष्मी से देदीप्यमान थे।

सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेय-वरचामराहिं उद्धवमाणीहिं उद्धवमाणीहिं वेसमणे चव णरवई अमरवई-सण्णिभाए इड्डीए पहियकित्ती ।

भावार्थ - कोरंट पुष्प की माला से युक्त छत्र को धारण किये हुए थे। श्रेष्ठ सफेद चामर ढुलाये जा रहे थे। वेश्रमण, नरपति-चक्रवर्ती और अमरपति-इन्द्र के तुल्य ऋद्धि से प्रसिद्ध कीर्ति वाले थे।

हयगयरहपवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए समणुगम्ममाणमग्गे जेणेव पुण्णभहे चेइए तेणेव पहारेत्थ गमणाए । तएणं तस्स कोणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्सं पुरओ महंआसा आसधरा आसवरा -उभओ पासिं णागा णागधरा, पिट्ठओ रहसंगेल्लि ।

भावार्थ - वह अश्व, गज रथ और श्रेष्ठ योद्धा रूप चतुरंगिणी सेना से अनुगम्यमान—अनुगमन किये जाते हुए मार्ग में जहाँ पूर्णभद्र उद्यान था वहाँ जाने के लिए इच्छा सहित प्रवृत्त हुए। तब भंभसारपुत्र कोणिक राजा के आगे बड़े-बड़े घोड़े और घुड़ सवार थे, आजु बाजु हाथी और हाथी सवार थे और पीछे रथ समुदाय था।

तए णं से कोणिए राया भंभसारपुत्ते अब्भुगयभिंंगारे पग्गहियतालियंटे उच्छियसेयच्छत्ते पवीइयवालवीयणीए सव्विड्डीए सव्वजुत्तीए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वादरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वपगईहिं सव्वणायगेहिं सव्वतालायरेहिं सव्वोरोहेहिं सव्वपुप्फ गंध वास मल्लालंकारेणं सव्वतुडियसह सण्णिणाएणं, महया इड्डीए, महया जुत्तीए, महया बलेणं, महया समुदएणं, महया वरतुडियजमगसमगपवाइएणं संख-पणव-पडह-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरव-मुडंग-दुंदुभि-णिग्घोसणाइयरवेणं चंपाए णयरीए मज्झं मज्झेणं णिगच्छइ ।

भावार्थ - वह भंभसारपुत्र कोणिक राजा चम्पानगरी के मध्य से हो कर जा रहा था। उसके सामने सोवनझारी—पुरुष के द्वारा उठाई हुई थी। किसी के द्वारा पंखा झला जा रहा था। किसी के हाथ में सफेद छत्र ग्रहण किया हुआ था। इस प्रकार झली जाती हुई वालव्यजनिका—छोटे पंखे या चँवरी, सर्वऋद्धि—आभरणादि रूप लक्ष्मी, सर्व युक्ति-परस्पर उचित पदार्थों के संयोग, सर्व-बल सेना, सर्व समुदाय—परिवारादि समुदाय, सर्व आदर-प्रयत्न, सर्व विभूति, सर्व विभूषा, सर्व संभ्रम-भक्ति जन्य उत्सुकता, सर्व पुष्प वास, माल्य और अलंकार और सर्व बजते हुए बाजों से युक्त एवं महती ऋद्धि, महती द्युति, महती सेना, महान् समुदाय और एक साथ बजते हुए बहुत-से बाजे के साथ थे। शंख, भाण्डों के ढोल, नगाड़े, भेरी, झल्लरी, खरमुही-काहला, हुडुक्का, मुरज, मृदंग और दुंदुभि के निर्घोष की ध्वनि गूँज रही थी।

कोणिक का जनता द्वारा स्वागत

३२. तए णं कोणियस्स रण्णो चंपा णगरि मज्झं मज्झेणं णिग्गच्छमाणस्स बहवे

अथत्थिया कामत्थिया भोगत्थिया लाभत्थिया किब्बिसिया करोडिया कारवाहिया
संखिया चक्किया णंगलिया मुहमंगलिया वद्धमाणा पूसमाणवा खंडियगणा ताहिं इट्टाहिं
कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं मणोभिरामाहिं उरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं
धण्णाहिं मंगल्लाहिं सस्सरीयाहिं हिययगमणिज्जाहिं हिययपल्हायणिज्जाहिं मिय म्हु-
गंभीरगाहिगाहिं अट्टुसइयाहिं अपुणरुक्ताहिं वग्गूहिं जयविजयमंगलसएहिं अणवरयं
अभिणंदंता य अभिथुणंता य । एवं वयासी-‘जय जय णंदा ! जय जय भद्दा ! भद्दं ते ।
अजियं जिणाहिं जियं च पालेहिं । जिय मज्जे वसाहिं ।

भावार्थ - चम्पानगरी के मध्य से होकर निकलते हुए कोणिक राजा की बहुत से अर्थार्थी—धन-
प्राप्ति के अभिलाषी कामार्थी—मनोज्ञ शब्द और रूप की प्राप्ति के अभिलाषी, भोगार्थी— मनोज्ञ गंध,
रस और स्पर्श की प्राप्ति के अभिलाषी, लाभार्थी—मात्र भोजनादि के इच्छुक, किल्बिषिक—भांड आदि
कापालिक, करपीडित, शांखिक-शांख फूंकने वाले, चाक्रिक—चक्र नामक शस्त्र के धारक या कुंभकार,
तैलिक आदि, लांगलित—भट्ट विशेष या किसान, मुखमांगलिक—चाटुकार, वर्द्धमान—स्कंधों पर पुरुषों
को आरोपित करने वाले, भाट-चारण और छात्र समुदाय के द्वारा इष्ट-वाञ्छित, कान्त, कमनीय-सुन्दर,
प्रिय, मनोज्ञ-मन को खींचने वाली । मनोऽम- मन को भाने वाली और मनोऽभिराम-मन में रम जाने
वाली वाणी से जय-विजय आदि सैकड़ों मांगलिक शब्दों से लगातार अभिनंदना-आनन्दवर्धक बधाई
और अभिस्तवना-स्तुति की जा रही थी । वे इस प्रकार बोल रहे थे-‘हे नन्द ! भुवन में समृद्धि के करने
वाले ! तुम्हारी जय हो ! जय हो !’ ‘हे भद्र ! कल्याणवान् ! या कल्याणकारि ! तुम्हारी जय हो ! जय
हो !’ ‘आपका कल्याण हो ! नहीं जीते हुआओं को जीतें । जीते हुए व्यक्तियों का पालन करें । जीते हुए
व्यक्तियों के बीच में निवास करें ।’

इंदो इव देवाणं चमरो इव असुराणं, धरणो इव णागाणं, चंदो इव ताराणं,
भरहो इव मणुयाणं, बहूइं वासाइं, बहूइं वाससयाइं, बहूइं वाससहस्साइं, बहूइं
वास सयसहस्साइं, अणहसमग्गो हट्टुत्तुट्ठो परमाउं पालयाहिं ।

भावार्थ - ‘देवों में इन्द्र के समान, असुरों में चमर-इन्द्र के समान, नागों में धरण-इन्द्र के समान,
ताराओं में चन्द्र के समान और मनुष्यों में भरत चक्रवर्ती के समान बहुत वर्षों तक, बहुत-सी शताब्दियों
तक, बहुत-सी सहस्राब्दियों-हजारों वर्षों तक, बहुत-सी शतसहस्राब्दियों-लाखों वर्षों तक, दोष रहित
सपरिवार अति सन्तुष्ट और परमायु अर्थात् उत्कृष्ट आयु भोगें ।

इट्टु जणसंपरिवुडो चंपाए णयरीए, अण्णेसिं च बहूणं गामा-गर-णयर-खेड-
कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टण-आसम-णिगम-संवाह-संणिवेसाणं आहेवच्चं पोरेवच्चं

भट्टित्तं सामित्तं महय-रत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे,
महयाऽऽहयणट्टुगीयवाइयतंती-तलतालतुडियथेणमुयंगपडुप्पवाइयरवेणं विउलाइं
भोगभोगाइं भुंजमाणे विहराहि-त्तिकट्टु जय जय सहं पउंजंति ।

भावार्थ - 'इष्टजन से परिवृत्त होकर, चम्पा नगरी का एवं और भी बहुत से ग्राम आकर—लवण आदि के उत्पत्ति स्थान, नगर—कर से मुक्त शहर, खेट—धूलिकोट वाले गांव, कर्बट— कुनगर, मडम्ब, द्रोणमुख—जलपथ और स्थलपथ से युक्त निवासस्थान, पत्तन—बन्दरगाह अथवा केवल जलमार्ग वाली या केवल स्थलमार्ग वाली बस्ती, आश्रम, निगम, संवाह-पर्वत की तलेटी आदि के गांव और सन्निवेश-धोष आदि का आधिपत्य, पुरोवर्तित-आगेवानी, भर्तृत्व-पोषकता, स्वामित्व, महत्तरत्व-बड़प्पन और आज्ञा कारक सेनापतित्व करते हुए-पालन करते हुए, कथानृत्य, गीतिनाट्य, वाद्य, वीणा, करताल, तूर्य, मेघ, मृदंग को कुशल पुरुषों के द्वारा बजाये जाने से उठने वाली महाध्वनि के साथ विपुल भोगों को भोगते हुए विचरें' - यों कहकर, वे व्यक्ति जयघोष करते थे ।

विवेचन - 'पत्तनं रत्नभूमिरित्यन्ये' अर्थात् दूसरे आचार्य 'पत्तन' का रत्नभूमि अर्थ करते हैं। 'आहयत्ति-आख्यानकप्रतिबद्धं, अहतं वा अव्यवच्छिन्नं, आहतं वा-आस्फालितं यन्नाट्यं-नाटकम्' अर्थात् कथाबद्ध या लगातार या नाचकूद युक्त नाटक। 'तलतालाश्च हस्तास्फोटरवाः, तला वा हस्ताः तालाः कशिकाः' अर्थात् 'तलताल यानी तालियों की आवाज या तल-हाथ और ताल-कंशिका-कांसी का वाद्य ।

तएणं से कोणिए राया भंभसारपुत्ते णयणमालासहस्सेहिं पेच्छिज्जमाणे
पेच्छिज्जमाणे हिययमालासहस्सेहिं अभिणंदिज्जमाणे अभिणंदिज्जमाणे उण्णइज्जमाणे
मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे विच्छिप्पमाणे, वयणमालासहस्सेहिं
अभिथुव्वमाणे अभिथुव्वमाणे, कंतिसोहग्गुणेहिं पत्थिज्जमाणे पत्थिज्जमाणे ।

भावार्थ - तब भंभसारपुत्र कोणिकराजा, हजारों नयनमालाओं से दर्शित बनता हुआ, हजारों हृदयमाला से अभिनंदित होता हुआ, हजारों मनोरथ माला से वाञ्छित होता हुआ, कान्ति-सौभाग्य से प्रार्थित होता हुआ, हजारों वचनों से प्रशंसित होता हुआ ।

बहूणं णरणारिसहस्साणं दाहिणहत्थेणं अंजलिमालासहस्साइं पडिच्छमाणे
पडिच्छमाणे, मंजुमंजुणा घोसेणं पडिपुच्छमाणे पडिपुच्छमाणे, भवणपंतिसहस्साइं
समइच्छमाणे समइच्छमाणे, चंपाए णयरीए मज्झमंज्जेणं णिग्गच्छइ ।

भावार्थ - बहुत-से हजारों नर नारियों की दाहिने हाथ से दी हुई हजारों अञ्जलिमाला को—नमस्कार को स्वीकार करता हुआ, मीठे कोमल स्वर से कुशलवार्ता पूछता हुआ और हजारों भवनों की पंक्तियों को लांघता हुआ, चम्पानगरी के बीचोंबीच होकर निकला ।

भगवान् की पर्युपासना

णिगच्छित्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्ताईए तित्थयराइसेसे पासइ।

भावार्थ - चम्पानगरी से निकलकर, जहाँ पूर्णभद्र उद्यान था, वहाँ आये। वहाँ आकर, न अधिक नजदीक न अधिक दूर ऐसे स्थान से श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के छत्र आदि तीर्थंकर के अतिशय (=विशेषताएँ) देखे।

पासित्ता आभिसेक्कं हत्थिरयणं ठवेइ। ठवित्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ।

भावार्थ - तब आभिषेक्य हस्तिरत्न को खड़ा रखा और उससे नीचे उतरे।

आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहित्ता अवहट्टु पंच रायककुहाइं। तं जहा-खगं छत्तं उप्पेसं वाहणाओ वालवीयणं।

भावार्थ - हस्तिरत्न से उतरकर, पांच राजचिह्नों को अलग किये यथा - खड्ग, छत्र, मुकुट, उपानद्-जूते और चामर।

विवेचन -

छत्र, चमर और मुकुट को, मोचड़ी अरु तलवार।

राजा छोड़े पांच को, धर्म सभा मंझार ॥

जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ। तं जहा - १ सच्चित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए २ अच्चित्ताणं दव्वाणं अविउसरणयाए ३ एगसाडियं उत्तरासंगकरणेणं, ४ चक्खुफासे अंजलिपग्गहेणं ५ मणसो एगत्तभावकरणेणं।

भावार्थ - फिर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे, वहाँ आये और पांच अभिगम (=धर्म सभा के औपचारिक नियम) सहित श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के सन्मुख गये। यथा - १. सचित्त-सजीव द्रव्यों को छोड़ना, २. अचित्त द्रव्यों का व्यवस्थित करना, ३. एक शाटक—अखण्ड—बिना सिले हुए वस्त्र दुपट्टे से उत्तरासंग (उत्तर-श्रेष्ठ+आसंग-लगाव) करना, ४. धर्मनायक के दृष्टि गोचर होते ही हाथ जोड़ना और ५. मन का एकत्व भाव करना या एक चित्त होना।

विवेचन - सचित्त त्याग अचित्त रख, उत्तरासंग कर जोड़।

कर एकाग्र चित्त को, सब झंझट को छोड़ ॥

समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, तिक्खुत्तो
आयाहिणं पयाहिणं करेत्ता वंदइ णमंसइ

भावार्थ - फिर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, आदक्षिणा प्रदक्षिणा करके वंदना की और उन्हें नमस्कार किया।

वंदित्ता णमंसित्ता तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ। तं जहा - काइयाए
वाइयाए माणसियाए।

भावार्थ - वंदना नमस्कार करके, तीन प्रकार की पर्युपासना से पर्युपासना करने लगा। यथा - कायिकी, वाचिकी और मानसिकी।

काइयाए ताव संकुइयग्गहत्थपाए सुस्सूसमाणे णमंसमाणे, अभिमुहे विणएणं
पंजलिउडे पज्जुवासइ।

भावार्थ - कायिकी-हाथ-पैर को संकुचित करके श्रवण करते हुए-नमस्कार करते हुए, भगवान् की ओर मुँह रखकर, विनय से हाथ जोड़े हुए, पर्युपासना करता था।

वाइयाए-जं जं भगवं वागरेइ-एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! अवितहमेयं भंते !
असंदिद्धमेयं भंते ! इच्छियमेयं भंते ! पडिच्छियंमेयं भंते ! इच्छिय पडिच्छियंमेयं भंते !
से जहेयं तुब्भे वयह-अपडिकूलमाणे पज्जुवासइ।

भावार्थ - वाचिकी-जो जो भगवान् कहते, उससे-‘यह ऐसा ही है भन्ते !’ ‘यही तथ्य है भन्ते !’ ‘यही सत्य है भन्ते !’ ‘निःसंदेह ऐसा ही है भन्ते !’ ‘यही इष्ट है भन्ते !’ ‘यही स्वीकृत है भन्ते !’ ‘यही वाञ्छित-गृहीत है भन्ते !’ - जैसा कि आप यह फरमा रहे हैं। - यों अप्रतिकूल (अनुकूल) बनकर पर्युपासना करता था।

माणसियाए महया संवेगं जणइत्ता तिव्वधम्माणुरागरत्तो पज्जुवासइ।

भावार्थ - मानसिकी-अति संवेग-उत्साह या मुमुक्षुभाव उत्पन्न करके, धर्म के अनुराग में तीव्रता से आरक्त होकर पर्युपासना करता था।

सुभद्रा महारानी का प्रस्थान

३३. तएणं ताओ सुभद्वाप्पमुहाओ देवीओ अंतो अंतेउरंसि णहायाओ जाव
पायच्छित्ताओ सव्वालंकार-विभूसियाओ;

भावार्थ - तब भगवान् के आगमन की सूचना मिलने पर अन्तःपुर में निवास करनेवाली सुभद्रा प्रमुख देवियों ने स्नान किया यावत् प्रायश्चित्त किया और वे सभी अलंकारों से विभूषित हुईं।

बहूहिं खुज्जाहिं चिलाईहिं वामणीहिं वडभीहिं बब्बरीहिं पयाउसियाहिं जोणियाहिं

पणहवियाहिं इसिगिणियाहिं वासिइणियाहिं लासियाहिं लउसियाहिं सिंहलीहिं दमीलीहिं आरबीहिं पुलंदीहिं पक्कणीहिं बहलीहिं मुरुंडीहिं सबरियाहिं पारसीहिं णाणा-देसीविदेसपरिमंडियाहिं इंगियचिंतियपत्थिय (इंगियचिंतियपत्थियमणोगय) विजाणियाहिं सदेस-णेवत्थगहियवेसाहिं चेडिया चक्कवालवरिसधर-कंचुइज्ज-महत्तरगवंदपरिक्खत्ताओ अंतेउराओ णिग्गच्छंति ।

भावाथ - फिर बहुत-सी कुब्जाओं, चेटिकाओं, वामनियों, वडभियों, बब्बरी, पयाउसिया, जोणिया, पणहविया, इसिगिणिया वासिइणिया, लासिया, लउसिया, सिंहली, दमिली, आरबी, पुलंदी, पक्कणी, बहली, मुरुंडी, सबरी और पारसी-इन नाना देश-विदेश की निवासिनियों-जो कि अपनी स्वामिनी के इंगित-मुखादि के चिह्न, या चेष्टा, चिन्तित-सोची हुई बात और प्रार्थित-अभिलषित मनोगत बात की जानकार थीं, जो अपने अपने देश की वेशभूषा को पहने हुए थी, उन चेटियों के समूह वर्षधर-नाजर, कृत नपुंसक, कंचुकीय-अन्तःपुर के रक्षक और महत्तरग-अंतःपुर के रक्षकों के अधिकारी से घिरी हुई, अन्तःपुर से निकली ।

अंतेउराओ णिग्गच्छत्ता जेणेव पाडिएक्कजाणाइं तेणेव उवागच्छंति । उवागच्छत्ता पाडिएक्कपाडिएक्काइं जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं दुरुहंति ।

भावाथ - जहां प्रत्येक रानियों के लिये यान खड़े थे, वहां आर्यीं और जुते हुए यात्राभिमुख यानों पर सवार हुईं ।

दुरुहत्ता णियगपरियाल सद्धिं संपरिवुडाओ चंपाए णयरीए मज्झंमज्जेणं णिग्गच्छंति । णिग्गच्छत्ता जेणेव पुण्णभहे चेइए तेणेव उवागच्छंति ।

भावाथ - अपने परिवार से घिरी हुई चम्पानगरी के मध्य से होकर निकली । जहां पूर्णभद्र उद्यान था, वहां आयी ।

उवागच्छत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्ताइए तित्थयराइसेसे पासंति । पासत्ता पाडिएक्क पाडिएक्काइं जाणाइं ठवंति । ठवत्ता जाणेहिंतो पच्चोरुहंति ।

भावाथ - दृष्टि योग्य स्थान से श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के तीर्थङ्करत्व सूचक छत्रादि अतिशय देखे । तब यानों को ठहराये और उनसे नीचे उतरां ।

जाणेहिंतो पच्चोरुहत्ता बहूहिं खुज्जाहिं जाव परिक्खत्ताओ जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति । तेणेव उवागच्छत्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छंति । तं जहा - १ सच्चित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए २ अच्चित्ताणं दव्वाणं अविउसरणयाए ३ विणओणयाए गायलद्वीए ४ चक्खुफासे अंजलिपग्गहेणं ५ मणसो एगत्तीकरणेणं ।

भावार्थ - बहुत-सी कुब्जाओं से यावत् घिरी हुई, जहां श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे, वहाँ आर्यो और पांच अभिगम सहित उनके सन्मुख गई। यथा - १. सचित्त द्रव्यों को छोड़ना, २. अचित्त द्रव्यों को नहीं छोड़ना, ३. विनय से देह को झुकाना, ४. चक्षुःस्पर्श होने पर हाथ जोड़ना और ५. मन को एकाग्र करना।

समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेति। वंदंति। णमंसंति। वंदित्ता णमंसित्ता कोणियरायं पुरओ कट्टु ठिइयाओ चव सपरिवाराओ अभिमुहाओ विणएणं पंजलिउडाओ पज्जुवासंति।

भावार्थ - फिर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की। वन्दना की। नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके कोणिकराजा को आगे रखकर, परिवार सहित स्थित होकर, भगवान् की ओर मुख रख कर, विनय से करबद्ध होकर पर्युपासना करने लगीं।

विवेचन - 'ठिइयाओ' का टीकाकार ने 'ऊर्ध्वस्थिता' अर्थात् 'खड़ी हुई' अर्थ किया है। तो उन रानियों ने ऐसा भक्तिभाव से किया था? या समवसरण में स्त्रियों को बैठने का अधिकार नहीं था?—और ऐसा था तो क्यों?—न इसका रहस्य समझ में आया और न कहीं इसका स्पष्टीकरण ही देखने में आया।

विचार करने पर यह अर्थ उचित नहीं लगता है। मूल पाठ में भी ऐसे अर्थ का भास नहीं होता है और सभा-विसर्जन के समय का पाठ तो इस अर्थ से बिलकुल विपरीत अर्थ को बतला रहा है। वहाँ सुभद्रा प्रमुख देवियों के लिए, 'उट्टाए उट्टित्ता' शब्दों के प्रयोग की कुछ भी आवश्यकता नहीं थी। अतः यह अर्थ ठीक लगता है कि - कोणिकराजा को आगे करके...वहीं पर ठहरी अर्थात् कोणिकराजा आगे और वे पीछे ठहरीं।

'उट्टाए-उट्टित्ता' शब्द का अर्थ पहले बैठी हुई थी सो फिर खड़ी हुई। यदि रानियाँ पहले से ही खड़ी रहीं हुई होती तो उठने की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि वो पहले ही खड़ी थी। दूसरी बात यह है कि, तीर्थंकर भगवान् के समवसरण में तिर्यंच और तिर्यंचणियाँ भी आती है। यदि स्त्रियों को बैठने का अधिकार न होकर खड़ी रहने का ही नियम हो तो उरपरिसर्पिनी और भुजपरिसर्पिनी कैसे खड़ी रह सकती है? अर्थात् खड़ी नहीं रह सकती है। अतः स्त्रियाँ खड़ी रहकर ही व्याख्यान सुन सकती है ऐसा कहना आगम सम्मत नहीं है।

भगवान् महावीर स्वामी की धर्म देशना

३४—तएणं समणे भगवं महावीरे कूणियस्सरण्णो भंभसारपुत्तस्स, सुभद्दाप्पमुहाणं देवीणं तीसे य महइ महालियाए परिसाए इसिपरिसाए मुणिपरिसाए जइपरिसाए देवपरिसाए अणेगसयाए अणेगसयवंदए अणेगसयवंदपरियालाए ओहबले अइबले

महब्बले अपरिमियबलवीरियतेयमाहप्पकंतिजुत्ते सारयणवत्थणिय महुरगंभीरकोच
णिगघोसदंदुभिस्सरे उरे वित्थडाए, कंठेऽवट्टियाए, सिरे समाइण्णाए, अगरलाए
अम्मणाए फुडविसयमहुरगंभीरगाहियाए सव्वक्खरसण्णवाइयाए पुण्णरत्ताए
सव्वभासाणुगामिणीए सरस्सइए जोयणणीहारिणासरेणं अद्धमागहाए भासाए
भासति अरिहा धम्मं परिकहेइ।

भावार्थ - तब ओघबली—सदा समान बलवाले, महाबली— प्रशस्त बलवाले, अपरिमित शारीरिक शक्ति—बल शारीरिक प्राण, वीर्य—आत्म जनित बल, तेज, माहात्म्य—महानुभावता और कान्ति से युक्त और शरद ऋतु के नव-मेघ की मधुर-गंधीर ध्वनि, क्राँच पक्षी के निर्घोष और दुंदुभि-नाद के समान स्वर वाले उन श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने भंभसारपुत्र कोणिक को, सुभद्रा आदि देवियों को, कई सौ कई सौ वृन्द और कई सौ वृन्द परिवार वाली उस अति विशाल परिषद् को, ऋषि-अतिशय ज्ञानी साधु परिषद् को, मुनि—मौनधारी साधु परिषद् को, यति—चरण में उद्यत साधु परिषद् और देव परिषद् को, हृदय में विस्तृत होती हुई, कण्ठ में ठहरती हुई, मस्तक में व्याप्त होती हुई, अलग-अलग निज स्थानीय उच्चारणवाले अक्षरों से युक्त, अस्पष्ट उच्चारण से रहित या हकलाहट से रहित, उत्तम स्पष्ट वर्ण-संयोगों से युक्त, स्वरकला से संगीतमय और सभी भाषाओं में परिणत होनेवाली सरस्वती के द्वारा, एक योजन तक पहुँचने वाले स्वर से, अर्धमागधी भाषा में धर्म को पूर्णरूप से कहा।

तेसिं सव्वेसिं आयरियमणारियाणं अगिलाए धम्ममाइक्खइ। साऽविय णं अद्धमागहा भासा, तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं अप्पणो सभासाए परिणामेणं परिणमइ।

भावार्थ - उन सभी आर्य-अनार्यों को अग्लानि से—तीर्थङ्कर नामकर्म के उदय से अनायास-बिना थकावट के धर्म कहा। वह अर्द्धमागधी भाषा भी, उन सभी आर्य-अनार्यों की अपनी-अपनी स्वभाषा में परिवर्तित हो जाती थी।

तं जहा-अत्थि लोए। अत्थि अलोए। एवं जीवा अजीवा, बंधे मोक्खे, पुण्णे पावे, आसवे संवरे, वेयणा, णिज्जरा, अरिहंता, चक्रवट्टी, बलदेवा, वासुदेवा, णरगा, णेरइया, तिरिक्खजोणिया, तिरिक्खजोणियाओ, माया, पिया, रिसओ, देवा, देवलोया, सिद्धी, सिद्धा, परिणिव्वाणं, परिणिव्वुया।

भावार्थ - वह धर्मकथा इस प्रकार है - 'लोक हैं। अलोक है। इसी प्रकार जीव-अजीव, बन्ध-मोक्ष, पाप-पुण्य, आस्रव-संवर, वेदना-निर्जरा, अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव-वासुदेव, नरक-नैरयिक, तिर्यञ्चयोनिक-तिर्यञ्चयोनिका, माता-पिता, ऋषि, देव-देवलोक, सिद्धि-सिद्ध और परिनिर्वाण-परिनिर्वृत हैं।

विवेचन - शून्यवाद के निरसन के लिए लोक और अलोक के अस्तित्व का प्रतिपादन है। जीव के अस्तित्व के प्रतिपादन से लोकायत नास्तिक चार्वाक मत का खण्डन होता है अर्थात् जड़-अद्वैतवाद का खण्डन होता है और अजीव के अस्तित्व की मान्यता से आत्मा-अद्वैतादि वाद का खण्डन होता है। बंध और मोक्ष के प्रतिपादन से इस मत का निषेध हो जाता है कि - 'नाना आश्रया प्रकृति ही बद्ध और मुक्त होती है, न कि आत्मा।' 'पाप की ही हानि-वृद्धि सुख-दुःख में कारण है या पुण्य की वृद्धि-हानि। अतः पाप ही है या पुण्य ही है' - इस एकान्त मान्यता पर, पाप-पुण्य का प्रतिपादन खण्डन करता है और इस मान्यता का भी कि - 'जगत-वैचित्र्य का कारण एक मात्र स्वभाव ही है। आस्रव और संवर के अस्तित्व से बन्ध-मोक्ष की निष्कारणता का प्रतिषेध होता है या वीर्य की प्रधानता का उद्घोष। वेदना (कर्म का अनुभव या पीड़ा) और निर्जरा (देशतः कर्मक्षय) के अस्तित्व से 'बिना भोगे कर्म क्षीण नहीं होते हैं' - इस बात का प्रतिपादन होता है। अरिहन्त, चक्रवर्ती, बलदेव वासुदेव इन चार की सत्ता का कथन, उनके अतिशायित्व (जगत् श्रेष्ठत्व) को अविश्वास की दृष्टि से देखने वालों में, उस विषय में श्रद्धा उत्पन्न कराने के लिए है। 'प्रमाण ग्राह्य नहीं होने से नरकादि नहीं है' इस मत का निषेध, नरक-नैरयिक के अस्तित्व से होता है। तिर्यच आदि के प्रतिपादन से यह मत खण्डित हो जाता है कि 'प्रत्यक्ष प्रमाण की भ्रान्ति के कारण, यह कुवासनादि जन्य तिर्यगादि-प्रतिभास है। वस्तुतः उनकी सत्ता नहीं है।' माता-पिता के अस्तित्व के कथन से उनकी उपकारिता का निर्देश होता है और इस मत का खण्डन होता है कि - 'माता-पिता जनकता की अपेक्षा से कहे जाते हैं। तो फिर जूँ, कृमि, गण्डोलक आदि को आश्रय करके भी यह व्यवहार होना चाहिए। क्योंकि वे भी अंगज है। किन्तु ऐसा होता नहीं है। इसलिए यह माता-पितृ रूप व्यवहार वास्तविक नहीं है।' 'ऋषि' की सत्ता से- 'पुरुषों के रागादि वाले होने के कारण कोई भी अतीन्द्रिय पदार्थों का दृष्टा नहीं हो सकता है' इस मत का खण्डन होता है। 'देव नहीं है-प्रत्यक्ष नहीं होने से'-इस मत का खण्डन देव-सत्ता के कथन से होता है। इसी प्रकार के मतों की भ्रान्ति हटाने के लिए सिद्धि-सिद्धालय एवं मोक्ष-सिद्ध और परिनिर्वाण-परम शान्ति-परिनिर्वृत्त अर्थात् परिनिर्वाण-मोक्ष को प्राप्त हुए सिद्ध जीव का कथन है।

अत्थि पाणाइवाए मुसावाए अदिण्णादाणे मेहुणे परिग्गहे। अत्थि कोहे माणे माया लोभे.....जाव मिच्छा-दंसणसल्ले।

भावार्थ - प्राणातिपात—प्राणघात, हिंसा, मृषावाद—असत्य, अदत्तादान—चोरी, मैथुन और परिग्रह है। क्रोध, मान, माया, लोभ यावत् मिथ्यादर्शन शल्य है।

विवेचन - १. 'प्राणातिपात आदि कर्म बन्ध के हेतु नहीं है। क्योंकि बन्धनीय—बन्धने योग्य जीव का अभाव है'-इस मत का खण्डन प्राणातिपात आदि की सत्ता के कथन से होता है।

२. 'जाव' शब्द से इन पदों का संग्रह होता है - 'पेजे दोसे कलहे अब्बक्खाणे पेसुण्णे परपरिवाए अरइरई मायामोसे।' प्रेम-अप्रकट माया और लोभ से व्यक्त होने वाला रोचकभाव, द्वेष-अप्रकट मान और क्रोध से व्यक्त होने वाला अरोचक भाव, कलह-राटि, राड़, अभ्याख्यान—असत्य

दोषारोपण, पैशुन्य-किसी के गुप्त दोषों को प्रकट करना, परपरिवाद-निन्दा, अरति रति- अरति मोहनीय के उदय से चित्त-उद्वेग जन्य भाव और मोहनीय से विषयों में होने वाली अभिरति अर्थात् क्लान्तिजन्य आकर्षण और माया-मृषा—कपट सहित झूठ-विश्वासघात। 'मायामृषा' - कपट सहित झूठ बोलना अथवा वेषान्तर और भाषान्तर-करण से जो परवञ्चन किया जाता है वह मायामृषा है।

प्राणातिपात शब्द का अर्थ इस प्रकार है -

पञ्चेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च उच्छ्वासनिःश्वासमथान्यदायुः।

प्राणा दशैते भागवद्विरूक्तास्तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा ॥

अर्थ - शास्त्रों में पांच इन्द्रिय, तीन बल, आयु, श्वासोच्छ्वास इस प्रकार से ये १० प्राण भगवान् ने बतलाये हैं। इनका वियोग करना इसका नाम हिंसा है।

अत्थि पाणाइवायवेरमणे मुसावायवेरमणे अदिण्णादाणवेरमणे मेहुणवेरमणे परिग्गहवेरमणे जाव मिच्छादंसणसल्लविवेगे।

भावार्थ - 'प्राणातिपात-विरमण—प्राणघात से वृत्ति हटा लेना, मृषावाद-विरमण—असत्य से वृत्ति हटा लेना, अदत्तादान विरमण-चोरी से विरत होना, मैथुन विरमण, परिग्रह विरमण यावत् मिथ्यादर्शनशल्य विवेक—मिथ्या विश्वास रूप कांटे को त्यागना है।

विवेचन - प्राणातिपात से विरमण और क्रोधादि के त्याग की सत्ता का कथन इसलिए है कि- 'सर्वथा अप्रमाद अशक्य नहीं है, अतः वह स्थिति असंभव नहीं है'-इस बात के प्रतिपादन के द्वारा इसके मत का निरोध हो।

सव्वमत्थि भावं अत्थि-त्ति वयइ। सव्वं णत्थिभावं णत्थि त्ति वयइ।

भावार्थ - 'सभी अस्तिभाव (स्वद्रव्यादि की अपेक्षा से होने वाले भाव) को अस्ति है। यह कहा और सभी नास्तिभाव (पर द्रव्यादि की अपेक्षा से होने वाले भाव) को 'नास्ति' (नहीं है)-यह कहा। (अथवा तत्त्व का प्रतिपादन, विधानात्मक और निषेधात्मक-दोनों शैलियों से किया।)'

विवेचन - सभी द्रव्यों में अस्ति और नास्ति भाव विद्यमान हैं। अस्ति-नास्ति भावों के अविरोधी संयोजन से ही, उनका वस्तुत्व कायम रह सकता है। अतः जैन धर्म की दृष्टि सापेक्ष है।

सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णफला भवंति। दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णफला भवंति।

भावार्थ - 'सद्-आचरण (तपस्या आदि क्रियाएँ) सुचरितफल (सुचरित के हेतु रूप पुण्यकर्मादि बन्ध रूप फल) वाले होते हैं और बुरे आचरण दुश्चरित (अशुभ) फलवाले होते हैं।'

फुसइ पुण्णपावे। पच्चायंति जीवा। सफले कल्लाणपावए।

भावार्थ - 'जीव (सुचरित से इन क्रियाओं से) पुण्य-पाप बांधते हैं। (जिससे) जन्म-मरण करते हैं। (इस कारण) कल्याण और पाप (शुभाशुभ कर्म) सफल हैं।'

धम्ममाइक्खइ-इणमेव णिग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलए पडिपुण्णे संसुद्धे णेयाउए सल्लकत्तणे ।

भावार्थ - (भगवान् प्रकारान्तर से) धर्म की प्ररूपणा करने लगे- 'यह निर्ग्रन्थ-प्रवचन (जड़-चेतन की ग्रन्थि को छुड़ाने वाला उपदेश-आत्मानुशासन) सत्य है। अनुत्तर (सर्वोत्तम, अलौकिक) है। केवल (अद्वितीय या केवल प्रणीत या अनन्त अर्थ की विषयता के कारण अनन्त) है। प्रतिपूर्ण (प्रवचन गुणों से सर्वांग सम्पन्न) है। संशुद्ध-कषादि से शुद्ध स्वर्ण के समान गुणपूर्णता के कारण निर्दोष है। नैयायिक (प्रमाण से बाधित नहीं होने वाला) है। शल्यकर्तन (मायादि शल्य का निवारक) है।

सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे णिव्वाणमग्गे णिज्जाणमग्गे अविताहमविसंधि सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे ।

भावार्थ - सिद्धिमार्ग (कृतार्थता का उपाय) है। मुक्तिमार्ग (कर्म रहित अवस्था का हेतु) है। निर्याणमार्ग (पुनः नहीं लौटने वाले गमन का हेतु) है। निर्वाणमार्ग (सकल संताप रहितता का पन्थ) है। अविताह (सद्भूतार्थ-वास्तविक) और अविसन्धि अर्थात् महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा से इसका न कभी विच्छेद हुआ है, न होता है और न कभी विच्छेद होगा और सर्व दुःख-प्रहीणमार्ग (सकल दुःखों को निःशेष करने का पन्थ अथवा जहाँ सभी दुःख प्रहीण हैं ऐसे मोक्ष का यह मार्ग) है।

इहट्टिया जीवासिद्धंति । बुद्धंति । मुच्चंति । परिणिव्वायंति । सव्वदुक्खाणमंतंकरंति ।

भावार्थ - इस (प्रवचन में) स्थित जीव सिद्ध (सिद्धिगमन के योग्य अथवा इस लोक में अणिमादि महासिद्धियों को प्राप्त) होते हैं। बुद्ध (केवलज्ञानी-पूर्णज्ञानी) होते हैं। मुक्त (भवोपग्राही कर्मांश से रहित) होते हैं। परिनिर्वृत (कर्मकृत सकल संताप से रहित-आनन्दघन) होते हैं और सभी दुःखों का अन्त करते हैं।

एगच्चा पुण एगे भयंतारो पुव्वकम्मावसेसेणं अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति ।

भावार्थ - या फिर एक ही मनुष्य देह धारण करना शेष रही है जिन्हें ऐसे (एगच्चा) कोई भदन्त (कल्याणी) किसी देवलोक में पूर्व कर्म के बाक्री रहने से देवरूप से उत्पन्न होते हैं।

विवेचन - 'भयंतारो' शब्द का अर्थ होता है भदन्त अर्थात् कल्याणकारी अथवा प्रवचन का सेवन करने वाला।

शुभ प्रवृत्ति वाले-इस विशेषण और 'पूर्व कर्मावशेष' इस पद द्वारा 'तप और संयम का फल देवलोक ही है'-इस एकान्त मान्यता का निषेध होता है। अर्थात् संयमी के देवलोक में उत्पन्न होने का मुख्य कारण 'संवर और निर्जरा' नहीं। किन्तु संवर और निर्जरा के कारणों का सेवन करते हुए होने वाली शुभ प्रवृत्ति और क्षय होते-होते अवशिष्ट रहे हुए कर्म हैं।

‘देवताए’ पद के द्वारा एकेन्द्रियादि रूप से उत्पन्न होने का निषेध होता है।

**महद्भिः जाव महासुक्खेसु दूरंगइएसु चिर- द्विइएसु ते णं तत्थ देवा भवंति-
महद्भिः जाव चिरद्विइया हारविराइयवच्छा जाव पभासमाणा कप्पोवगा गइकल्लाणा
आगमेसिभद्दा जाव पडिरूवा।**

भावार्थ - (वे देवलोक) महद्भिक यावत् महासौख्य वाले, अनुत्तर विमान तक की गति वाले (दूरंगतिक) और लम्बी स्थिति वाले हैं। वहाँ वे देव महद्भिक यावत् लम्बे आयुष्य वाले होते हैं। उनके वक्षस्थल हारों से सुशोभित होते हैं। यावत् वे अपनी देहप्रभा से दसों दिशा में प्रभा फैलाते हैं। वे देवलोक में उत्पन्न शुभ गति के धारक और भविष्य काल में भद्र (निर्वाण लक्षणात्मक) अवस्था को प्राप्त करने वाले यावत् प्रतिरूप होते हैं।

विवेचन - इस ‘सूत्र’ में चार बार ‘जाव’ शब्द से पाठ को संक्षिप्त किया गया है। पहली बार के जाव से ‘महज्जुइएसु महाबलेसु महायसेसु महाणुभागेसु’, दूसरी बार के ‘जाव’ से-पूर्ववत्, तीसरी बार के ‘जाव’ से-‘कडयत्तुडियथंभियभुया अंगयकुंडलमट्टगंडकण्णपीठधारी विचित्तहत्थाभरणा दिव्वेणं संघाएणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इट्ठीए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्छीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दस दिसाओ उज्जोवेमाणा’ और चौथी बार के ‘जाव’ से ‘पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा’ पदों का संग्रह किया गया है। इन शब्दों का अर्थ पहले कर दिया गया है।

तमाइक्खइ। एवं खलु चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयत्ताए कम्मं पकरंति। णेरइत्ताए कम्मं पकरेत्ता णेरइसु उववज्जंति।

भावार्थ - (निर्ग्रन्थ प्रवचन के फलकथन का उपसंहार करते हुए कहा गया कि-) यह उसका फल है। (भगवान् प्रकारान्तर से धर्म कहने लगे-) इस प्रकार के चार कारणों से जीव नैरयिक भव के कर्म का बन्ध करता है और नरक में उत्पन्न होता है।

तं जहा-महारंभयाए महापरिग्गहयाए पंचिंदिय-वहेणं कुणिमाहारेणं।

भावार्थ - यथा-महारंभता (अत्यधिक हिंसा के भाव), महा परिग्रहता (अत्यधिक संग्रह के भाव), पञ्चेन्द्रियवध और मांसाहार से।

एवं एएणं अभिलावेणं तिरिक्खजोणिएसु माइल्लयाए णियडिल्लयाए अलियवयणेणं उक्कंचणयाए वंचणयाए।

भावार्थ - इस प्रकार इस अभिलाप (सूत्र पाठ) से तिर्यंच योनिकों में (उत्पन्न होते हैं)-यथा-मायावीपनसे, निकृति (वेष आदि बनाकर ठगना) से, झूठ बोलने से और उत्कञ्चनता-(मुग्ध जन को ठगने में प्रवृत्त हुए व्यक्ति का, समीपवर्ती किसी चतुर पुरुष के चित्त में सन्देह प्रविष्ट नहीं होने देने के

लिए, क्षणभर के लिए, किसी प्रकार की क्रिया नहीं करती हुई-सी अवस्था में स्थित रहना) वञ्चनता (प्रतारणा-धूर्तता) से।

मणुस्सेसु-पगइभइयाए पगइविणीययाए साणुक्कोसयाए अमच्छरिययाए।

भावार्थ - (इन कारणों से) मनुष्यों में (उत्पन्न होते हैं)-यथा-स्वाभाविक भद्रता (दूसरों को दुःखी नहीं करने के भाव या सरलता) से, स्वाभाविक विनीतता से, सदयता से और अमत्सरता (अन्य के उत्कर्ष के प्रति ईर्ष्या का अभाव या गुणादि के उत्कर्ष में प्रमोदभावना) से।

**देवेसु-सरागसंजमेणं, संजमासंजमेणं, अकाम-णिज्जराए बालतवोकम्मेणं।
तमाइक्खइ।**

भावार्थ - देवों में (उत्पन्न होते हैं-) सराग संयम से, संयमा-संयम (=देशविरति) से, अकाम निर्जरा (निरुद्देश्य या विवशता वश कष्ट-सहना) से और बाल (वास्तविक समझ से शून्य) तप से। - यह धर्म कहा।

जह णरगा गम्मंति, जे णरगा जा य वेयणा णरए।

सारीरमाणसाइं, दुक्खाइं तिरिक्ख जोणीए॥

भावार्थ - जिस प्रकार नैरयिक नरक में जाते हैं और वहाँ पर जो नैरयिक जैसी वेदना पाते हैं। तिर्यञ्च योनि में जो शारीरिक-मानसिक दुःख होते हैं। (उसका कथन किया)।

माणुस्सं च अणिच्चं, वाहिजरामरणवेयणापउरं।

देवे य देवलोए, देविट्ठिं देवसोक्खाइं॥

भावार्थ - व्याधि, बुढ़ापा, मृत्यु और वेदना से भरपूर अनित्य मनुष्य भव का (स्वरूप) और देव और देवलोक, उनकी ऋद्धि एवं उनके सुख का (कथन किया)।

णरगं तिरिक्खजोणिं, माणुसभावं च देवलोयं च।

सिद्धे य सिद्धवसहिं, छज्जीवणियं परिकहेइ।

भावार्थ - नरक, तिर्यच योनि, मनुष्य के भाव, देवलोक, सिद्ध, सिद्धालय और छह जीवनिकाय को सम्पूर्ण रूप से कहा।

जह जीवा बञ्झंति, मुच्चंति जह य परिकिलिस्संति।

जह दुक्खाइणं अंतं, करंति केई अपडिबद्धा॥

भावार्थ - जिस प्रकार जीव बन्धते हैं, मुक्त होते हैं और जिस प्रकार महान् क्लेश पाते हैं एवं कई अनासक्त व्यक्ति जिस प्रकार दुःखों का अन्त करते हैं (यह समझाया)।

अट्टा अट्टियचित्ता, जह जीवा दुक्खसागरमुविति ।

जह वेरग्गमुवगया, कम्मसमुग्गं विहाडंति ॥

भावार्थ - आर्त (शरीर से दुःखी) और आर्तचित्त वाले जीव जिस प्रकार दुःखसागर में गिरते हैं और जिस प्रकार वैराग्य को प्राप्त होकर, कर्मदल को चूर कर देते हैं-(यह समझाया) ।

जहा रागेण कडाणं, कम्माणं पावगो फलविवागो ।

जह य परिहीणकम्मा, सिद्धा सिद्धालयमुविति ॥

भावार्थ - जिस प्रकार राग से किये हुए कर्मों का फल-विपाक पापरूप (होता है) और जिस प्रकार सकल कर्म से रहित सिद्ध सिद्धालय को प्राप्त होते हैं-(यह समझाया) ।

तमेव धम्मं दुविहं आइक्खइ । तंजहा-अगारधम्मं अणगारधम्मं च ।

भावार्थ - उसी धर्म को दो प्रकार का कहा। वह यथा-अगारधर्म और अनगार धर्म।

अणगारधम्मो ताव-इह खलु सव्वओ सव्वत्ताए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयइ ।

भावार्थ - अनगार धर्म इस संसार में जो सर्वतः द्रव्य और भाव से सम्पूर्ण आत्मा से सर्वात्मना-सभी क्रोधादि आत्म परिणामों के त्याग से मुंड होकर, गृहवास से निकल कर अनगार अवस्था में जाते हैं-

सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं मुसावाय वेरमणं अदिण्णादाण वेरमणं मेहुण वेरमणं परिग्गह वेरमणं राईभोयणाउ वेरमणं ।

भावार्थ - वे सम्पूर्ण प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह और रात्रि भोजन से विरत (होते हैं) ।

अयमाउसो ! अणगार सामाइए धम्मे पण्णत्ते ।

भावार्थ - हे आयुष्मन् ! यह अनगार सामायिक (अनगारों का सैद्धान्तिक या समाचरणीय) धर्म कहा गया है ।

एयस्स धम्मस्स सिक्खाए उवट्टिए णिग्गंथे वा णिग्गंथी वा विहरमाणे आणाए आराहए भवइ ।

भावार्थ - इस धर्म की शिक्षा में उपस्थित निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी विचरण करते हुए तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा के आराधक होते हैं ।

अगारधम्मं दुवालसविहं आइक्खइ । तं जहा-पंचअणुव्वयाइं, तिण्णिण गुणव्वयाइं, चत्तारि सिक्खावयाइं ।

सभा-विसर्जन

३५ - तए णं सा महइमहालिया महच्चपरिसा मणुस्सपरिसा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा-णिसम्म हट्टुट्टु जाव हियया उट्टाए उट्टेइ ।

भावार्थ - तब वह विशाल मनुष्य-सभा, श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के समीप धर्म को सुनकर-हृदय में धारण कर, हर्षित, संतुष्ट.....यावत् विकसित हृदय हुई और उत्थान पुरुषार्थ के द्वारा उठकर खड़ी हुई।

उट्टाए उट्टित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ । करेत्ता वंदइ णमंसइ ।

भावार्थ - उत्थान से उठ कर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की आदक्षिण-प्रदक्षिणा करके वन्दना की और नमस्कार किया।

वंदित्ता णमंसित्ता अत्थेगइया मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए । अत्थेगइया पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवण्णा ।

भावार्थ - कई श्रोता मुण्डित होकर गृहवास से निकल कर अनगार अवस्था में आये और कइयों ने पांच अणुव्रत और सात शिक्षा व्रत रूप बारह प्रकार के गृहस्थ धर्म को स्वीकार किया।

विवेचन - तीन गुणव्रत को भी शिक्षाव्रत में गिन लेने के ये कारण हो सकते हैं-कथन-संक्षेप, दोनों का उत्तरगुण होना, नियम रूप होना, अभ्यास रूप होना आदि।

अवसेसा णं परिसा समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ । वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-

भावार्थ - शेष परिषदा ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को वंदना की-नमस्कार किया। फिर इस प्रकार बोली-

सुयक्खाए ते भंते ! णिगगंथे पावयणे । एवं सुपण्णत्ते सुभासिए सुविणीए सुभाविए अणुत्तरे ते भंते ! णिगगंथे पावयणे ।

भावार्थ - हे भंते (हे पूज्य) ! आपने निर्ग्रन्थ-प्रवचन सुन्दर रूप से कहा। इसी प्रकार सुप्रज्ञप्त-विशेषता युक्त उत्तम रीति से कहा हुआ, सुभाषित-सुन्दर भाषा से कहा हुआ, सुविनीत-शिष्यों में उत्तम विनियोजित, सुभावित-तत्त्व कथन उत्तम भाव युक्त बना हुआ और अनुत्तर-सर्वोत्तम है। भंते ! जड़-चेतन की ग्रन्थियों का मोचक आपका उपदेश है।

धम्मं णं आइक्खमाणा तुब्भं उवसमं आइक्खह। उवसमं आइक्खमाणा विवेगं आइक्खह। विवेगं आइक्खमाणा वेरमणं आइक्खह। वेरमणं आइक्खमाणा अकरणं पावाणं कम्माणं आइक्खह।

भावार्थ - हे भगवन् ! आपने धर्म की व्याख्या करते हुए उपशम-क्रोधादि के निरोध का व्याख्यान किया। उपशम की व्याख्या करते हुए विवेक-बाह्य परिग्रह या बहिर्भाव के त्याग का स्वरूप कहा। विवेक की व्याख्या करते हुए विरमण-मन की निवृत्ति अथवा निज स्वरूप में लौटने की प्रक्रिया का कथन किया और विरमण की व्याख्या करते हुए पापकर्मों-अशुभ भाव आत्मा की मलिन अवस्था में गति को नहीं करने का कहा।

विवेचन - पापों का अकरण, विरमण, विवेक और उपशम ये क्रियात्मक धर्म के प्रमुख अंग हैं। क्रियात्मक धर्म पापकर्मों के त्याग से प्रारम्भ होकर, उपशम में प्रतिष्ठित होता है।

णत्थि णं अण्णे केइ समणे वा माहणे वा जे एरिसं धम्ममाइक्खत्तए। किमंग पुण एत्तो उत्तरतरं !

भावार्थ - आपके सिवाय अन्य कोई श्रमण या ब्राह्मण नहीं है। जो ऐसा धर्म कह सके। तो फिर इससे बढ़ कर धर्म का उपदेश कौन दे सकता है ? अर्थात् कोई नहीं।

एवं वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

भावार्थ - इस प्रकार कहकर, जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा में वापिस गये।

कोणिक राजा और रानियों का वापिस गमन

३६- तए णं कूणिए राया भंभसारपुत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्टुत्तु जाव हियए उट्टाए उट्टेइ। उट्टाए उट्टित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ करित्ता वंदइ णमंसइ। वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-सुयक्खाए ते भंते ! णिगंग्थे पावयणे जाव किमंग पुण एत्तो उत्तरतरं? एवं वदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

भावार्थ - इसके बाद भंभसार श्रेणिक के पुत्र उस कोणिक राजा ने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास में धर्मोपदेश सुनकर एवं उसका अच्छी तरह पूर्वापर विचार कर एवं हृदय में धारण कर

चित्त में अधिक से अधिक आनन्द और संतोष प्राप्त किया। फिर अपने स्थान से उठा। उठकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की। वैसा करके वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार कर वह इस प्रकार बोला कि-हे भगवन् ! आप द्वारा सुआख्यात-सुन्दर रूप से कहा गया। सुप्रज्ञप्त- सुन्दर रीति से समझाया गया सुभाषित। हृदय स्पर्शी भाषा में प्रतिपादित किया गया। निर्ग्रन्थ प्रवचन रूप धर्मोपदेश सर्वप्रधान और सर्वश्रेष्ठ है इससे श्रेष्ठ और प्रधान धर्म के उपदेश की तो बात ही कहां अर्थात् इससे बढ़कर प्रधान और श्रेष्ठ धर्म आप वीतराग के सिवाय दूसरा कोई कह ही नहीं सकता है। ऐसा कहकर कोणिक राजा जिधर से आया था उधर लौट गया अर्थात् अपने महलों की तरफ चला गया।

३७-तए णं ताओ सुभद्वापमुहाओ देवीओ समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा-णिसम्म हट्टुट्टु.....जाव हिययाओ.....उट्टाए उट्टित्ता -समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेति। करित्ता नंदंति णमंसंति। वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी-सुयक्खाए ते भंते ! णिगंग्थे पावयणे जाव किमंग पुण इत्तो उत्तरतरं? एवं वदित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूयाओ तामेव दिसिं पडिगयाओ। समोसरणं सम्मत्तं।

भावार्थ - इसके बाद वे सुभद्रा प्रमुख रानियाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास धर्म सुनकर एवं उसे हृदय में धारण कर बहुत ही अधिक प्रसन्न और संतुष्ट हुईं। फिर अपने स्थान से उठ कर खड़ी हुईं। खड़ी होकर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा कर वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके इस प्रकार बोली कि- 'हे भगवन् ! आपने इस निर्ग्रन्थ प्रवचन का उपदेश बहुत ही सुन्दर ढंग से दिया। अच्छी तरह से समझाया यावत् इससे बढ़ कर प्रधान और श्रेष्ठ धर्म का उपदेश आप वीतराग के सिवाय कौन दे सकता है, अर्थात् कोई नहीं दे सकता है। ऐसा कह कर सुभद्रा प्रमुख आदि रानियाँ जिधर से आई थी उधर चली गईं अर्थात् अपने महलों की तरफ चली गईं।

यह औपपातिक सूत्र का समवसरण नामक पूर्वार्द्ध सम्पूर्ण हुआ। ॥ इति ॥

॥ समवसरण वर्णन समाप्त ॥

औपपातिक पृच्छा

३८- तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे गोयम-गोत्तेणं ।

भावार्थ - उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के ज्येष्ठ शिष्य गौतम गौत्रीय इन्द्रभूति नाम के अनगर थे ।

सत्तुस्सेहे समचउरंससंठाणसंठिए वइरोसह-नारायसंघयणे कणगपुलगणिग्घस-पम्हगोरे ।

भावार्थ - उनका शरीर सात हाथ ऊँचा था। उनकी आकृति समचतुरस्र संस्थान-संस्थित थी। उनकी देहयष्टि का बन्धन सर्वोत्तम-वज्र-ऋषभ-नाराच-संहनन था। निकष—सोने की कसौटी का पत्थर पर-अङ्कित स्वर्णरेखा-सी पद्मगौर—कमल के गर्भ-सी गोरी उनकी कान्ति थी।

उगगतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे घोरतवे उराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी ।

भावार्थ - वे उग्र तपस्वी, दीप्त—कर्मवन को जलाने के लिये प्रदीप्त अग्नि के समान ज्वलित तेजोमय, तपस्वी, तप्ततपस्वी, महातपस्वी, भीम-घोरतपस्वी घोर, घोरगुणी और घोर तपस्वी थे।

विवेचन - उग्र, दीप्त, तप्त और महा-ये तप के चार विशेषण दिये गये हैं। 'उग्र' पद तप में तल्लीनता का सूचक है। 'दीप्त' पद उनके तप की सार्थकता बतला रहा है। 'तप्त' पद उनके स्वयं की तपोरूपता का सङ्केत कर रहा है। अर्थात् वे इस प्रकार तपोरूप बन गये थे—जिस प्रकार कि तपा हुआ लोहे का गोला। 'महा' विशेषण प्रशस्त वा बृहत् अर्थ में आया है। 'ओराले' अर्थात् उदार प्रधान तपस्वी थे। 'भीम' किस प्रकार?—अतिकष्टमय तप को करते हुए, समीपवर्ती अल्प सत्त्व वाले जीवों के लिये भयानक हो गये थे। 'घोर'=१ परीषह-इन्द्रिय-कषायादि रिपुओं का विनाश करने में २. आत्म-निरपेक्ष—अपने आपके प्रति उदासीन (-अन्य)। 'घोरगुण'-अन्य से कठिनता से पाले जा सके, ऐसे मूलगुण आदि के धारक थे।

घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्तविउलतेयलेस्से समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते उडुंजाणू अहोसिरे झाणकोट्टोवगए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

भावार्थ - घोर ब्रह्मचर्यवासी—अल्पसत्त्व वाले जीवों के द्वारा मुश्किल से पालन हो सकने के कारण कठिन ब्रह्मचर्य वास के धारक, शरीर संस्कार के त्यागी, संक्षिप्त-विपुल शरीर के भीतर लीन-अनेक योजन प्रमाण क्षेत्राश्रित वस्तुओं को जलाने में समर्थ होने से विस्तीर्ण, तेजोलेश्या-लब्धि विशेष के स्वामी वे गौतम स्वामी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से न अधिक नजदीक न अधिक दूर, ऊर्ध्व

जानु-ऊँचे घुटने और अधोशिर—नीचे मुख रखकर अर्थात् उत्कुटुकासन से बैठकर, ध्यान रूपी कोष्ठ-कोठे में प्रवेश करके, संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचर रहे थे।

विवेचन - उत्कृष्ट तपस्या करने के कारण गौतम स्वामी को ऐसी विशिष्ट तेजोलेश्या प्राप्त हो गई थी। जिसकी इतनी शक्ति होती है कि अनेक योजन प्रमाण क्षेत्र में रही हुई समस्त वस्तुओं को वह क्षण मात्र में भस्म कर डालती है। किन्तु ऐसी विस्तृत और विपुल लेश्या को भी इन्होंने अपने शरीर के भीतर ही अन्तर्हित (छिपा) कर रखी थी। उसका उपयोग नहीं करते थे।

ध्यान रूपी कोठे में विराजमान थे यहाँ ध्यान को जो कोठे की उपमा दी है। उसका कारण यह है कि-जिस प्रकार कोठे में रहा हुआ गेहूँ, जौ, आदि धान्य इधर-उधर नहीं बिखरता है उसी प्रकार ध्यान में बैठे हुए की, इन्द्रियाँ और अन्तःकरण की वृत्तियाँ बाहर इधर उधर नहीं हो सकती हैं, मानसिक प्रत्येक वृत्तियाँ इस अवस्था में सम्पूर्ण नियन्त्रित हो जाती हैं।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के सबसे बड़े शिष्य का नाम इन्द्रभूति था और उनका गोत्र गौतम था। परन्तु वे अपने गोत्र के कारण ही इस नाम से प्रसिद्ध हो गये थे। भगवान् महावीर स्वामी भी उनको 'गोयम' (गौतम) इसी नाम से पुकारते थे। जैसा कि उत्तराध्ययन सूत्र के द्रुम पत्रक नामक दसवें अध्ययन में ३७ गाथाओं में से ३६ गाथाओं में गोयम शब्द का ही प्रयोग हुआ है, तथा भगवती सूत्र के प्रश्नोत्तरों में तथा अन्य अनेक जगहों में 'हे गोयमा' इस शब्द का प्रयोग हुआ है।

तएणं से भगवं गोयमे जायसद्धे जायसंसए जायकोऊहल्ले, उप्पण्णसद्धे उप्पण्णसंसए उप्पण्ण-कोऊहल्ले, संजायसद्धे संजायसंसए संजायकोऊहल्ले, समुप्पण्णसद्धे समुप्पण्णसंसए समुप्पण्णकोऊहल्ले उट्टाए उट्टेइ।

उट्टाए उट्टित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिवखुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ। करेत्ता वंदइ। णमंसइ। वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जवासमाणे एवं वयासी-

भावार्थ - तब भगवान् गौतम स्वामी के मन में श्रद्धा पूर्वक इच्छा उत्पन्न संशय अनिर्धारित अर्थ में शंका, जिज्ञासा एवं कुतूहल उत्पन्न हुआ, फिर उनके मन में विशेष श्रद्धा, संशय और कुतूहल समुत्पन्न हुआ। वे अपने स्थान से उठे। उठकर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर स्वामी थे। वहाँ आये आकर भगवान् महावीर स्वामी को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, वन्दना नमस्कार किया। वन्दना नमस्कार करके भगवान् के न अधिक नजदीक और न अधिक दूर सुश्रूषा-सुनने की इच्छा करते हुये, प्रणाम करते हुए सामने विनय पूर्वक हाथ जोड़े हुए उनकी पर्युपासना-अभ्यर्थना करते हुए इस प्रकार बोले-

विवेचन - गौतम स्वामी के मन में तत्त्व का निर्णय करने के लिए इच्छा उत्पन्न हुई, कारण कि इन्हें इस प्रकार का संशय उत्पन्न हुआ कि यह औपपातिक सूत्र आचारांग सूत्र का उपांग है। आचारांग सूत्र के प्रथम अध्ययन के प्रथम उद्देशक में जो आत्मा का उपपात कहा है, सो किस प्रकार से कहा है। अतः भगवान् मेरे संशय युक्त प्रश्न का उत्तर न मालूम किस तरह से देंगे। इस बात को जानने के लिए कुतूहल (उत्कंठा) उत्पन्न हुआ। क्योंकि भगवान् के ऊपर ही उनके चित्त में अतिशय श्रद्धा थी। इसलिए उनसे ही निर्णय करने के लिए श्रद्धा उत्पन्न हुई।

'उत्पन्न संशय, उत्पन्न कौतूहल' इत्यादि पदों द्वारा वाचार्थ में, अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा की तरह उत्तरोत्तर रूप से (आगे-आगे) से विशेषता बतलाने के लिए सूत्रकार ने 'जात, उत्पन्न, संजात, समुत्पन्न' इन पदों का प्रयोग किया है।

कर्म बन्धन

जीवे णं भन्ते ! असंजए अविरए अण्णडिहय-पच्चक्खायपावकम्मे सकिरिए असंवुडे एगंत-दंडे एगंतबाले एगंतसुत्ते पावकम्मं अण्णहाइ ? - हंता अण्णहाइ ॥ १ ॥

भावार्थ - हे भन्ते (भगवन्) ! जिसने संयम नहीं साधा, प्राणातिपातादि से निवृत्ति नहीं की-अविरत, वास्तविक श्रद्धान के द्वारा पाप कर्मों को हलके नहीं किये-अप्रतिहत, सर्वविरति-सम्पूर्ण त्याग वृत्ति से आते हुए पाप कर्मों को नहीं रोके, जो कायिकी आदि क्रिया से युक्त हैं, जिसने इन्द्रियों का निरोध नहीं किया, जो स्व-पर को सर्वथा पापकर्म से दण्डित करता है, सर्वथा मिथ्यादृष्टि है, मिथ्यात्व निद्रा से बिलकुल सुप्त है, वह जीव पापकर्म से लिप्त होता है क्या ? - हाँ होता है।

विवेचन - किसी मत की मान्यता है कि-जब जीव भोगयोनि में होता है तब वहाँ परवशता के कारण कर्मबन्ध नहीं करता है, किन्तु केवल पापकर्मों को भोगता ही है। कुछ ऐसे ही भाव से उत्पन्न हुई यह जिज्ञासा, इस प्रश्न के मूल में प्रतीत होती है कि-'क्या कर्मबन्ध के सभी कारणों के विद्यमान रहते हुए, जीव अबन्धक हो सकता है ? यदि ऐसा होता हो तो संयतादि अवस्था मुक्ति के लिये अनावश्यक है ? एक न एक दिन सम्पूर्ण कर्मों को भोग लने के बाद जीव अनायास ही जन्म-मरण से मुक्त हो जायगा।' यह शङ्का भगवान् के उत्तर से निर्मूल हो जाती है। असंयत आदि विशेषणों से युक्त जीव का, एक क्षण के लिए भी कर्म-बन्ध नहीं रुकता है।

अविरत-विरति रहित। किस कारण असंयत है ? - क्योंकि अविरत है-विरति से रहित है।

अथवा निन्दा द्वारा अतीतकालकृत पापों को प्रतिहत करना और अनागतकालभावी पापों को निवृत्ति से प्रत्याख्यात करना अर्थात् जिसने ऐसा किया हो वह प्रतिहत-प्रत्याख्यात है और जिसने ऐसा नहीं किया हो वह 'अप्रतिहत-प्रत्याख्यात पापकर्मा' है।

जीवे णं भंते ! असंजय-अविरयअप्पडिहय-पच्चक्खाय पावकम्मे सकिरिए असंजुडे एगंतदंडे एगंतबाले एगंतसुत्ते मोहणिज्जं पावकम्मं अणहाइ ? - हंता अणहाइ ॥२ ॥

भावार्थ - हे भन्ते (हे भगवन्) ! वह जीव जो असंयत है-जिसने संयम की आराधना नहीं की, जो अविरत है-हिंसा आदि से विरत नहीं है, जिसने प्रत्याख्यान द्वारा पाप कर्मों को प्रतिहत नहीं किया-सम्यक् श्रद्धापूर्वक पापों का त्याग नहीं किया, हलका नहीं किया, जो सक्रिय-कायिक वाचिक तथा मानसिक क्रियाओं से युक्त है-क्रियाएं करता है, जो असंवृत है-संवर रहित है जिसने इन्द्रियों का संवरण या निरोध नहीं किया, जो एकान्तदंडयुक्त है-जो अपने को तथा ओरों को पाप कर्म द्वारा एकान्ततः-सर्वथा दण्डित करता है, जो एकान्त-बाल है-सर्वथा मिथ्यादृष्टि-अज्ञानी है, जो एकान्त सुप्त है-मिथ्यात्व की निद्रा में बिलकुल सोया हुआ है, क्या वह मोहनीय पाप-कर्म से लिप्त होता है-मोहनीय पाप-कर्म का बन्ध करता है ? हाँ गौतम ! करता है।

जीवे णं भंते ! मोहणिज्जं कम्मं वेएमाणे किं मोहणिज्जं कम्मं बंधइ ? वेयणिज्जं कम्मं बंधइ ? गोयमा! मोहणिज्जंपि कम्मं बंधइ, वेयणिज्जंपि कम्मं बंधइ। णण्णत्थ चरिंमोहणिज्जं कम्मं वेएमाणे वेयणिज्जं कम्मं बंधइ णो मोहणिज्जं कम्मं बंधइ ॥ ३ ॥

भावार्थ - हे भन्ते (हे भगवन्) ! जीव, मोहनीय कर्म को वेदता हुआ, क्या मोहनीय कर्म बांधता है ? - क्या वेदनीय कर्म बांधता है ?

- गौतम ! मोहनीय कर्म भी बांधता है और वेदनीय कर्म को भी बांधता है। किन्तु चरम मोहनीय कर्म को वेदता हुआ वेदनीय-सुखादि अनुभूति के कारण रूप कर्म को बांधता है, मोहनीय कर्म को नहीं बांधता है।

विवेचन - जीव, सूक्ष्मसम्पराय नामक दसवें गुणस्थान में, चरममोहनीय लोभमोहनीय को सूक्ष्म किट्टिका रूप में वेदते हुए, वेदनीय को बांधता है। क्योंकि वेदनीय के अबन्धक सिर्फ चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगी ही होते हैं और वह मोहनीय को नहीं बांधता है। क्योंकि सूक्ष्मसम्पराय में स्थित जीव मोहनीय और आयुष्य को छोड़कर छह कर्म प्रकृतियों का ही बन्धक होता है। कहा है -

'सत्तविहबंधगा होति पाणिणो आउवज्जियाणं तु। तह सुहुमसंपराया छव्विहबंधा विणिहिट्ठा ॥
मोहाउयवज्जाणं पयडीणं ते उ बंधगा भणिया।

जब जीव आयुष्य कर्म को नहीं बांधता है तब वह सप्तविध बन्धक होता है और जब सूक्ष्मसंपराय नामक दसवें गुणस्थान में होता है तब मोहनीय और आयुष्य कर्म को नहीं बांधता है तब वह षडविह बन्धक कहलाता है।

वेदनीय और मोहनीय कर्म का बहुत निकट का सम्बन्ध है। वेदनीय कर्म, मोहनीय की उदयावस्था में प्रायः उसका पोषक हो जाता है और मोहनीय की उदयावस्था तक ही अघातिया कर्म का

अशुभ रूप में बन्ध होता है अथवा मोहनीय कर्म का वेदन ही अघातिया कर्मों में शुभता-अशुभता का निमित्त बनता है। अघातिया कर्म ही भवोपग्राही कर्म है। इन भवोपग्राही कर्मों में से भी, मुक्त होने से कुछ क्षणों के पहले तक वेदनीय कर्म का ही बन्ध होता है। जिस भव में मोहनीय कर्म का क्षय होता है, उसी भव में वेदनीय कर्म भी क्षीण हो जाता है। अतः भव-परम्परा की वृद्धि में इस कर्मयुगल का बहुत बड़ा हाथ है। यही कारण है कि उपपात सम्बन्धी प्रश्नों की उत्थानिका के रूप में, अन्य कर्मों की वेदना और बन्ध के विषय में प्रश्न न करते हुए, इन्हीं के विषय में प्रश्न किया गया है।

असंयत यावत् एकान्त सुप्त का उपपात

जीवे णं भन्ते ! असंजए अविरए अप्पडिहय-पच्च-क्खाय पावकम्मे सकिरिए असंवुडे एगंतदंडे एगंतबाले एगंतसुत्ते ओसण्णतसपाणघाई। कालमासे कालं किच्चा णिरइएसु उववज्जइ ? - हंता उववज्जइ ॥ ४ ॥

भावार्थ - हे भन्ते ! जिसने संयम का पालन नहीं किया यावत् जो एकान्त सुप्त है और जो बहुलता से त्रस प्राणियों का घातक है, वह जीव काल के समय में काल करके क्या नैरयिकों में उत्पन्न होता है ? - हाँ, होता है।

जीवे णं भन्ते ! असंजए अविरए अप्पडिहय-पच्चक्खाय पावकम्मे इओ चुए पेच्चा देवे सिया ? - गोयमा ! अत्थेगइया देवे सिया। अत्थेगइया णो देवे सिया।

भावार्थ - हे भन्ते ! जिसने संयम नहीं पाला यावत् जिसने पापों से निवृत्ति नहीं की, वास्तविक श्रद्धान के द्वारा पापकर्म को हलके नहीं किये और सर्वविरति से आते हुए पापकर्मों को नहीं रोके, वे जीव यहाँ से मरकर, दूसरे जन्म में क्या देव हो सकते हैं ?

हे गौतम ! कोई देव होते हैं, कोई देव नहीं होते।

से केणट्टेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-अत्थेगइया देवे सिआ, अत्थेगइया णो देवे सिआ ?- गोयमा ! जेइमे जीवा गामागर-णयर-णिगम-रायहाणि-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणासम-संबाह-सण्णिवेसेसु अकामतण्हाए अकामछुहाए अकामबंभ-चेरवासेणं अकामअण्णहाणगसीयायवदंसमसगसेयजल्लमल्लपंक- परितावेणं अप्पतरो वा भुज्जतरो वा कालं अप्पाणं परिकिलेसंति। अप्पतरो वा भुज्जतरो वा कालं अप्पाणं परिकिलेसित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णथरेसु वाणमंतरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवन्ति। तर्हि तेसिं गइ, तर्हि तेसिं ठिइ, तर्हि तेसिं उववाए पण्णत्ते।

कठिन शब्दार्थ - ग्राम - जहाँ अटारह प्रकार का कर लिया जाता है अथवा जहाँ रहने वालों

की बुद्धि मंद होती है उसे 'ग्राम' कहते हैं, **नगर** - जहाँ अठारह प्रकार के कर नहीं लिये जाते हैं उसे 'नगर' कहा जाता है, **खेड** - जहाँ मिट्टी का प्राकार हो वह खेड या 'खेडा' कहा जाता है, **कर्बट** - जहाँ व्यापार धन्धा नहीं चलता हो अथवा जहाँ अनेक प्रकार के कर लिये जाते हैं ऐसा छोटा नगर कर्बट (कस्बा) कहा जाता है, **मडम्ब** - जिस ग्राम के चारों ओर अढ़ाई कोस तक अन्य कोई ग्राम न हो उसे मडम्ब कहा जाता है, **पट्टण** - दो प्रकार का है-जहाँ जल मार्ग पार करके माल आता हो वह 'जलपत्तन' कहा जाता है। जहाँ स्थल मार्ग से माल आता हो उसे 'स्थलपत्तन' कहा जाता है, **आकर** - लोहा आदि धातुओं की खानों में काम करने वालों के लिए वहीं पर बसा हुआ ग्राम आकर कहा जाता है, **द्रोणमुख** - जहाँ जल मार्ग और स्थल मार्ग से माल आता हो ऐसा नगर दो मुंह वाला होने से द्रोणमुख कहा जाता है, **निगम** - जहाँ व्यापारियों का समूह रहता हो वह निगम कहा जाता है, **आश्रम** - जहाँ संन्यासी तपश्चर्या करते हों वह आश्रम कहा जाता है, एवं उसके आस-पास बसा हुआ ग्राम भी आश्रम कहा जाता है, **निवेश** - व्यापार हेतु विदेश जाने के लिए यात्रा करता हुआ सार्थवाह (अनेक व्यापारियों का समूह) जहाँ पड़ाव डाले वह स्थान निवेश कहा जाता है। अथवा एक ग्राम के निवासी कुछ समय के लिए दूसरी जगह ग्राम बसावें वह ग्राम भी निवेश कहा जाता है। अथवा सभी प्रकार के यात्री जहाँ-जहाँ विश्राम लें वे सब स्थान निवेश कहे जाते हैं। इसे ही आगम में कहीं जगह 'सन्निवेश' कहा है, **सम्बाध** - खेती करने वाले कृषक दूसरी जगह खेती करके पर्वत आदि विषम स्थानों पर रहते हों वह ग्राम सम्बाध कहा जाता है। अथवा व्यापारी दूसरी जगह व्यापार करके पर्वत आदि विषम स्थानों पर रहते हों। वह ग्राम सम्बाध कहा जाता है। अथवा जहाँ धान्य आदि के कोठार हों वहाँ बसे हुए ग्राम को भी सम्बाध कहा जाता है, **घोष** - जहाँ गायों का युथ रहता हो वहाँ बसे हुए ग्राम को घोष (गोकुल) कहा जाता है, **अंशिका** - ग्राम का आधा भाग, तीसरा भाग या चौथा भाग जहाँ आकर बसे वह वसति 'अंशिका' कही जाती है, **पुटभेदन** - अनेक दिशाओं से आए हुए माल की पेटियों का जहाँ भेदन (खोलना) होता है वह 'पुटभेदन' कहा जाता है, **राजधानी** - जहाँ रहकर राजा शासन करता हो वह राजधानी कही जाती है, **संकर** - जो ग्राम भी हो, खेड भी हो, आश्रम भी हो ऐसा मिश्रित लक्षण वाला स्थान 'संकर' कहा जाता है। यह शब्द मूल में नहीं है भाष्य में है।

भावार्थ - हे भन्ते ! आप किस कारण से इस प्रकार कहते हैं कि - कोई जीव देव होते हैं और कोई जीव देव नहीं होते ?

हे गौतम ! जो ये जीव ग्राम, आकर, नगर, निगम, राजधानी, खेड, कर्बट, मडम्ब, द्रोणमुख, पट्टण, आश्रम, संबाध और सन्निवेशों में, कर्मक्षयादि की इच्छा से रहित भूख-प्यास के सहने से ब्रह्मचर्य के पालन से अस्नान, शीत, आतप, मच्छर, स्वेद-पसीना, 'जल्ल'-रज, 'मल्ल'-सूख कर कठोर बना हुआ मैल और पङ्क-पसीने से गीला बना हुआ मैल के परिताप से थोड़े या बहुत काल तक अपने आपको क्लेश देते हैं। थोड़े-बहुत समय तक अपने को क्लेशित करके, काल के समय में काल करके,

वाणव्यन्तर देवलोक में से किसी देवलोक में, देव रूप से उत्पन्न होते हैं। वहाँ उनका जाना, स्थित रहना और देव रूप से होना कहा गया है।

विवेचन - वेदनीय कर्म की तीव्र वेदना के कारण मोहनीय कर्म का वेदन मंद हो जाता है। जिससे देवायु का बन्ध होता है। यथा-

इत्थ वि समोहया मूढचेयणा वेयणाणुभवखिण्णा ।

तंमिच्चित्तकिरिया ण संकिलिस्संति अण्णत्थ ॥ १५७ ॥

- तिर्यग् लोक में भी वेदनीय समुदघात को प्राप्त हुए जीव, मूढ चेतना वाले और वेदनानुभव से खिन्न हो जाते हैं। अतः चित्त वेदना में ही लीन हो जाता है। अन्यत्र रागादि परिणाम को प्राप्त नहीं होता है।

ता तिव्व राग दोसाभावे, बंधो वि पयणुओ तेसिं ।

सम्मोहओच्चिय तहा खओ वि जेगंतमुक्कोसो ॥ १५८ ॥

इस प्रकार तीव्र राग-द्वेष के अभाव में बंध भी हलका होता है किन्तु निमित्त की दुर्बलता के कारण क्षय भी उत्कृष्ट नहीं होता है। (श्रावकप्रज्ञप्ति ग्रन्थ)

तेसिं णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिइ पण्णत्ता ? - गोयमा ! दसवाससहस्साइं ठिइ पण्णत्ता ।

भावार्थ - हे भन्ते ! उन देवों का आयुष्य, कितने काल का बतलाया गया है।

हे गौतम ! दस हजार वर्ष की स्थिति बतलाई गई है।

अत्थि णं भंते ! तेसिं देवाणं इड्डी वा, जुई वा, जसे इ वा, उट्टाणे इ वा, कम्मे इ वा, बले इ वा, वीरिए इ वा, पुरिसक्कारपरिक्कमे इ वा ? - हंता अत्थि ।

भावार्थ - हे भन्ते ! उन देवों के ऋद्धि-परिवारादि सम्पत्ति द्युति-शरीर, आभरणादि की दीप्ति, यश-ख्याति, उत्थान, कर्म, बल- शारीरिक बल, वीर्य-जीवप्रभव या जीव जनित बल, पुरुषकार पुरुषार्थ-पुरुषाभिमान और पराक्रम-हिंमतभरी बहादुरी है ?

- हाँ ! है।

ते णं भंते ! देवा परलोगस्साराहगा ? - णो इणट्टे समट्टे ॥ ५ ॥

भावार्थ - हे भन्ते ! क्या वे देव परलोक के आराधक हैं ?

यह अर्थ समर्थ नहीं हैं अर्थात् वे परलोक के आराधक नहीं हैं।

बन्दी.....आदि का उपपात

सेजेइमे मामागर-णयर-णिगम-रायहाणि-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणा-

सम-संबाह-सण्णिवेसेसु मणुया भवंति । तं जहा-अंडुबद्धगा णियलबद्धगा हडिबद्धगा
चारगबद्धगा हत्थच्छिण्णगा पायच्छिण्णगा कण्णच्छिण्णगा णक्कच्छिण्णगा
उट्टुच्छिण्णगा जिब्भच्छिण्णगा सीसच्छिण्णगा मुखच्छिण्णगा मज्झच्छिण्णगा
वेकच्छिण्णगा ।

भावार्थ - ये जो इन ग्राम, आकर यावत् सन्निवेशों में मनुष्य रहते हैं । यथा-अन्दुक-लोहे या काठ के बन्धन विशेष से जिनके हाथ पैर जकड़े हुए हैं, बेड़ियों से जकड़े हुए, खोड़े में फँसे हुए, अन्धकारमय कारागार में पड़े हुए, सजा आदि के कारण छिदे हुए हाथ, पैर, कान, नाक, होठ, जीभ, शीश, मुख छेदन किये हुए, कमर या उदर और जनेऊ के आकार में छिदे हुए अंग वाले ।

विवेचन - किसी अपराध के कारण जो काट या लोहे के बन्ध से हाथ पैर आदि अंग बांध दिये जाते हैं अथवा बहुत बड़े अपराध के कारण जिनके नाक, कान आदि अंग काट दिये जाते हैं । ऐसे अपराधियों का यहाँ पर कथन किया गया है ।

हियउप्पाडियगा णयणुप्पाडियगा दसणुप्पाडियगा वसणुप्पाडियगा
गेवच्छिण्णगा तंडुलच्छिण्णगा ।

भावार्थ - जिनके हृदय का मांस नोच लिया गया हो, जिनके नेत्र उखाड़ लिये गये हों, जिनके दांत उखड़वा लिये हों, जिनके अण्डकोश उखाड़े गये हों, जिनके गले के अवयव छेद दिये गये हों, जिसके मांस के चावल के दाने के बराबर टुकड़े किये गये हों,-ऐसे व्यक्ति ।

कागणिमंसक्खाइयया ओलंबिया लंबियया घंसियया घोलियया फाडियया
पीलियया सूलाइयया सूलभिण्णगा ।

भावार्थ - जिसे उसकी देह से ही कोमल मांस उखाड़-उखाड़ कर खिलाया गया हो, जो रस्सी से बान्ध कर खड़े में लटकाये गये हों, जो भुजाओं से वृक्ष की शाखा पर बांधे गये हों, जो चंदन के समान घिंसे गये हों, जो दही के समान घोलित (मथा गया) हुए हों, जो लकड़ी के समान कुठार-से फाड़ दिये गये हों, जो इक्षु के समान यंत्र में पीले गये हों, जो शूली पर चढ़ाये गये हों, जो शूल से भिन्न हो गये हों, ऐसे व्यक्ति ।

खारवत्तिया वज्झवत्तिया सीहपुच्छियया ।

भावार्थ - जिस पर क्षार डाला गया हो या जो क्षार में फँके गये हो, जो गीले चमड़े से बांधे गये हों, जिनका लिंग काट दिया हो अथवा जिनको सिंह की पूंछ से बांधकर घसीटा गया हो । ऐसे व्यक्ति ।

दवग्गिदड्डुगा पंकोसण्णगा पंकेखुत्तगा वलय-मयगा वसट्टुमयगा णियाणमयगा
अंतोसल्लमयगा गिरिपडियगा तरुपडियगा मरुपडियगा गिरिपक्खं-दोलिया
तरुपक्खंदोलिया मरुपक्खंदोलिया ।

की उत्कृष्ट स्थिति एक पल्योपम की होती है। पल्योपम के सामने हजारों वर्षों की स्थिति बहुत अल्प गिनी जाती है।

भद्रप्रकृति वाले आदि जीवों का उपपात

से जे इमे गामागर-णयर-णिगम-रायहाणि-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणासम-संबाह-सण्णिवेसेसु मणुया भवंति।

भावार्थ - ये जो ग्राम, आकर यावत् सन्निवेशों में मनुष्य होते हैं।

तंजहा-पगइभहगा पगइउवसंता पगइपयणु कोह-माण-माया-लोहा मिउ-मह्व-संपण्णा अल्लीणा, भहगा, विणीया, अम्मापिउ-सुस्सूसगा अम्मापिईणं अणतिक्कमणिज्जवयणा, अप्पिच्छा अप्पारंभा अप्प-परिग्गहा, अप्पेणं आरंभेणं अप्पेणं समारंभेणं अप्पेणं आरंभसमारंभेणं वित्तिं कप्पेमाणा बहूइं वासाइं आउयं पालंति।

भावार्थ - यथा-स्वभाव से ही भद्र अर्थात् परोपकार करने वाले, स्वभाव से ही शान्त, स्वभाव से ही क्षणिक या हलके क्रोध, मान, माया और लोभ वाले, कोमल-अहङ्कार रहित स्वभाव वाले, गुरुजनों-बड़ों के आश्रित, विनीत, माता-पिता के सेवक, माता-पिता के वचनों का उल्लंघन नहीं करने वाले, अल्प इच्छा वाले, अल्प आरम्भ वाले, अल्प परिग्रह वाले, अल्प आरम्भ, अल्प समारंभ-जीवों को परितापित करना और अल्प आरम्भ समारम्भ से आजीविका उपार्जन करने वाले बहुत वर्षों की आयु भोगते हैं।

पालित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु वाणमंतरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति। तहिं तेसिं गइ, तहिं तेसिं ठिई, तहिं तेसिं उववाए पण्णत्ते। तेसि णं भंते ! देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ? - गोयमा ! चउहसवास सहस्साइं ॥ ७ ॥

भावार्थ - आयुष्य भोग करके काल के समय में काल करके वाणव्यंतर के किसी देवलोक में देवरूप से उत्पन्न होते हैं। हे गौतम ! उनकी चौदह हजार वर्ष की स्थिति है।

गतपतिका (प्रोषित भर्तृका) आदि का उपपात

सेजाओ इमाओ गामागर-णयर-णिगम-राय-हाणिखेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टणासम-संबाह-सण्णिवेसेसु इत्थियाओ भवंति।

- ये जो ग्राम यावत् सन्निवेशों में स्त्रियाँ होती हैं।

तंजहा-अंतो अंतेउरियाओ, गयपइयाओ मयपइयाओ बालविहवाओ छड्डियल्लियाओ

माइरक्खियाओ पियरक्खियाओ भायरक्खियाओ कुलघरक्खियाओ मित्तणाइ-
णियय संबंधि रक्खियाओ ससुरकुलरक्खियाओ ।

भावार्थ - जैसे-जो अन्तःपुर में रहती हों, जिनके पति परदेश चले गये हों, जो बाल विधवा हों, जिन्हें पतियों ने छोड़ दिया हों, जो माता, पिता या भाई से रक्षित हों, जो कुलगृह-पीहर या श्वशुरकुल-सुसराल से रक्षित हों।

परूढ-णह-के स-कक्ख-रोमाओ ववगयपुप्फगंधमल्लालंकाराओ
अण्हाणगसेय जल्लमलपंकपरितावियाओ ववगयखीर-दहि-णवणीय-सप्पितेल्ल-
गुल-लोणमहुमज्जमंसपरिचत्तकयाहाराओ ।

भावार्थ - (विशिष्ट संस्कार के अभाव के कारण) जिनके नख, केश और कांख के बाल बढ़ गये हों, जो फूल, गंध, माला और अलङ्कारों से रहित हों, जो अस्नान, स्वेद, रज, मल और पङ्क-पसीने से गीले हुए मैल से परितापित हों, जो दूध, दही, मक्खन, घी, तैल, गुड़ और नमक से रहित तथा मधु, मद्य और मांस से रहित आहार का सेवन करती हों।

अप्पिच्छाओ अप्पारंभाओ अप्पपरिग्गहाओ, अप्पेणं आरंभेणं, अप्पेणं समारंभेणं,
अप्पेणं आरंभसमारंभेणं वित्तिं कप्पेमाणीओ, अकामबंभचेरवासेणं तामेव पइसेज्जं
णाइक्कमइ ।

भावार्थ - जिनकी इच्छाएँ अल्प हों, जो अल्प हिंसा वाली हों, जिनका परिग्रह-धनादि का सञ्चय अल्प हो और जो अल्प आरम्भ-हिंसा, अल्प समारम्भ-परिताप और अल्प आरम्भ-समारम्भ से वृत्ति-आजीविका करने वाली हों, ऐसी स्त्रियाँ अकाम-निर्जरा की इच्छा के बिना ब्रह्मचर्य के पालन से उसी पति की शय्या का अतिक्रमण नहीं करती हैं अर्थात् अकाम ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई रहती हैं, किन्तु उपपति नहीं करती हैं।

ताओ णं इत्थियाओ एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणीओ सेसं तं चेव जाव
चउसट्ठिंवाससहस्साइं ठिई पण्णत्ता ॥ ८ ॥

भावार्थ - वे स्त्रियाँ इस प्रकार की चर्या से जीवन व्यतीत करती हैं। अकाम ब्रह्मचर्य का पालन करने से वे वाणव्यंतर देवों में उत्पन्न होती हैं, वहाँ उनकी चौंसठ हजार वर्ष की स्थिति होती है।

द्वि द्रव्य भोजी आदि का उपपात

से जे इमे गामागर-णयर-णिगम-रायहाणि-खेड-कब्बड-मडंब-दोणमुह-
पट्टणासम-संबाह-संणिवेसेसु मणुआ भवंति । तं जहा-दगबिइया दगतइया दगसत्तमा
दगएक्कारसमा ।

भावाथ - उन मनुष्यों के ये नव विकृतियाँ खाने का कल्प नहीं है। यथा-दूध, दही, मक्खन, घी, तैल, गुड-फाणित, मधु- शहद, मद्य-शराब और मांस। इन में से एक सरसों का तैल छोड़कर। वे मनुष्य अल्प इच्छा वाले यावत् शेष सब पूर्ववत्। केवल स्थिति चौरासी हजार वर्ष की है।

विवेचन - 'तं चेव सच्चं' पद से 'अप्पारंभा अप्पपरिग्गहा अप्पेणं आरंभेणं अप्पेणं समारंभेणं अप्पेणं आरंभसमारंभेणं वित्तिं कप्पेमाणा बहुइं वासाइं आऊयं पालंति। पालित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु वाणमंतरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति। तहिं तेसिं गई.....' आदि वाक्यों का संक्षेपीकरण समझना चाहिए। अर्थ पूर्ववत् अर्थात् इन शब्दों का एवं इस पाठ का अर्थ पहले कर दिया गया है।

वानप्रस्थ तापसों का उपपात

से जे इमे गंगाकूलगा वाणपत्था तावसा भवंति। तं जहा-होत्तिया पोत्तिया कोत्तिया जण्णई सड्डी थालई हुंबउट्टा दंतुक्खलिया उम्मज्जगा संमज्जगा णिमज्जगा संपक्खालगा।

भावाथ - वे तापस जो ये गंगा के किनारे रहने वाले वानप्रस्थ-वनवासी तापस होते हैं। जैसे- होत्रिक (अग्निहोत्र करने वाले) वस्त्रधारी, कौत्रिक-भूमिशायी (भूमि पर सोने वाले) यज्ञयाजी (याज्ञिक-यज्ञ करने वाले), श्रद्धा करने वाले, पात्र रखने वाले या खप्परधारी कुण्डिकाधारी, फलभोजी, एक बार पानी में डुबकी लगा कर स्नान करने वाले (उन्मज्जक), सन्मज्जक (उन्मज्जन के बार-बार करने से स्नान करने वाले), निमज्जक (पानी में कुछ देर तक डूब कर स्नान करने वाले) संप्रक्षालक (मिट्टी आदि के द्वारा रगड़ कर अंगों को धोने वाले)।

दक्खिणकूलगा उत्तरकूलगा संखधमगा कूलधमगा मियलुद्धया हत्थितावसा

भावाथ - गंगा के दक्षिण के किनारे पर ही रहने वाले, गंगा के उत्तरी किनारे पर ही रहने वाले, शंख बजाकर भोजन करने वाले, किनारे पर स्थित होकर शब्द करके भोजन करने वाले मृगलुब्धक, हस्तितापस (हाथी को मारकर, उसके भोजन से बहुत काल व्यतीत करने वाले)।

उहंडगा दिसापोक्खिणो वक्कवासिणो अंबुवासिणो बिलवासिणो चेलवासिणो जलवासिणो रुक्खमूलिया।

भावाथ - डण्डे को ऊँचा रखकर फिरने वाले, दिशाओं की तरफ पानी छींट कर फूल-फलादि चुनने वाले, वल्कलधारी-वृक्ष की झाल के कपड़े पहनने वाले (अम्बुवासी ? बिलवासी), वस्त्रधारी, जल में ही रहने वाले, वृक्ष के मूल में रहने वाले।

अंबुभक्खिणो वाउभक्खिणो सेवालभक्खिणो मूलाहाराकंदाहारा तयाहारा

पत्ताहारा पुष्पाहारा बीयाहारा परीसडियकंद-मूल-तय-पत्त-पुष्फ-फलाहारा
जलाभिसेयकढिणगायभूया ।

भावार्थ - मात्र जलभक्षक, वायुभक्षक, शैवाल (काँई पानी के ऊपर आने वाला मैल)भक्षक, मूलाहारी, कंदाहारी, त्वक् (छाल) आहारी, पत्राहारी, पुष्पाहारी, बीजाहारी, सडे हुए या गिरे हुए या किसी के द्वारा छोड़े गये कंद, मूल, छाल, पत्र, फूल और फल का आहार करने वाले, बिना स्नान किये भोजन नहीं करने वाले, या स्नान के कारण सफेद बनी हुई देहवाले ।

आयावणाहिं पंचगितावेहिं इंगालसोल्लियं कंडुसोल्लियंपिव कट्टुसोल्लियंपिव
अप्पाणं करेमाणा बहूइं वासाइं परियायं पाउणंति । बहूइं वासाइं परियायं पाउणित्ता,
कालमासे कालं किच्चा, उक्कोसेणं जोइसिएसु देवेसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति जाव
पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं ठिईं जाव आराहगा?—णो इणट्टे समट्टे ॥ १० ॥

भावार्थ - और पञ्चाग्नि की आतापना के द्वारा अपने आपको अंगारों से पका हुआ-सा, भाड़ में भुना हुआ-सा यावत् करते हुए, बहुत वर्षों तक उस अवस्था को पाकर के, काल के समय में काल करके उत्कृष्ट रूप से ज्योतिषी देवों में देवरूप से उत्पन्न होते हैं । यावत् पल्योपम और एक लाख वर्ष अधिक की स्थिति यावत् ये परलोक के आराधक नहीं हैं ।

प्रव्रजित श्रमण कान्दर्पिक आदि का उपपात

से जे इमे गामागर जाव सण्णिवेसेसु पव्वइया समणा भवंति । तं जहा-कंदप्पिया
कुक्कुइया मोहरिया गीयरइप्पिया णच्चणसीला । ते णं एएणं विहारेणं विहरमाणा
बहूइं वासाइं सामण्णपरियायं पाउणंति ।

भावार्थ - ये जो ग्राम आकर यावत् सन्निवेशों में प्रव्रजित श्रमण (निर्ग्रन्थ) होते हैं । जैसे-हास-परिहास करने वाले (कान्दर्पिक), भांड के समान चेष्टा को करते हुए स्वयं हँसकर दूसरों को हँसाने वाले (कौकुचिक) उटपटांग वृथा बोलने वाले (मौखरिक) गीत के साथ रमणक्रीड़ा जिसे प्रिय हो या गीतरति वाले लोग जिसे प्रिय हों ऐसे श्रमण (गीतरतिप्रिय) और अस्थिर शीलाचार वाले या नर्तनशील । वे ऐसी चर्या से काल व्यतीत करते हुए, बहुत वर्षों तक श्रामण्यपर्याय को पालते हैं ।

बहूइं वासाइं सामण्ण परियायं पाउणित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइय-
अप्पडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा, उक्कोसेणं सोहम्मे कप्पे कंदप्पिए देवेसु
देवत्ताए उववत्तारो भवंति । तहिं तेसिं गइं, तहिं तेसिं ठिईं जाव सेसं तं चव । णवरं
पलिओवमं वाससयसहस्समब्भहियं ठिईं ॥ ११ ॥ .

यावत् उस स्थान की (अतिचार-दोष सेवन की) आलोचना प्रतिक्रमण (उनको दोष रूप से मानकर पश्चाताप) किये बिना ही, काल के समय में कालकर के, उत्कृष्ट सौधर्मकल्प (पहले देवलोक) में कान्दर्पिक देवों में उत्पन्न होते हैं यावत् एक लाख वर्ष अधिक एक पल्योपम की स्थिति होती है।

परिव्राजकों का उपपात

से जे इमे गामागर जाव सण्णिवेसेसु परिव्वायगा भवन्ति। तं जहा-संखा जोई कविला भिउच्चा।

भावार्थ - ये जो ग्राम आकर यावत् सन्नित्वेशों में परिव्राजक होते हैं। यथा-सांख्य (बुद्धि-अहङ्कारादि तत्त्वों को मानने वाले और प्रकृति और पुरुष दोनों को जगत् का कारण मानने वाले) योगी (अध्यात्म शास्त्र के अनुष्ठायी) कापिल (निरीश्वर सांख्य), भार्गव।

विवेचन - सांख्य और योगियों का तत्त्वज्ञान समान है। अन्तर केवल इतना ही है कि सांख्य तत्त्वज्ञान पर अधिक जोर देते हैं और योगी अनुष्ठान पर। सांख्य को कुछ लोग निरीश्वरवादी मानते हैं तो कुछ लोग ईश्वरवादी। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उनमें दोनों प्रकार के मतवादी थे। जो निरीश्वरवादी थे वे कापिल कहलाते थे।

जो सृष्टि के कारण रूप से अनादि से निर्लिप्त पुरुष विशेष को मानते हैं, वे ईश्वरवादी और सृष्टिकर्ता रूप से ईश्वर को मानने से इन्कार करते हैं, वे निरीश्वरवादी कहलाते हैं।

भृगुऋषि के शिष्य भार्गव कहलाते हैं।

हंसा परमहंसा बहुउदया कुडिव्वया कण्हपरिव्वायगा।

भावार्थ - चार प्रकार के परिव्राजक यति हंस-पर्वत की गुफा, आश्रम, देवकुल आदि में रहने वाले और भिक्षार्थ ग्राम में प्रवेश करने वाले परिव्राजक, परमहंस-वे परिव्राजक यति जो नदी के पुलिनों-किनारों पर या समागम प्रदेशों में रहते हों और चीर, कौपीन और कुश का त्याग करके प्राण छोड़ते हों, बहूदक—गांव में एक रात्रि और नगर में पांच रात तक वास करते हुए, अपने योग्य प्राप्त सामग्री का उपयोग करते हुए विचरण करने वाले परिव्राजक यति, कुटीचर-वे जो घर में रहते हुए क्रोध, लोभ और मोह से दूर रहकर अहङ्कार का त्याग करते हैं और कृष्ण परिव्राजक- नारायण भक्त परिव्राजक विशेष।

तत्थ खलु इमे अट्ट माहणपरिव्वायगा भवन्ति। तं जहा-

कणहे य करकंडे य, अंबडे य परासरे।

कणहे दीवायणे चेव, देवगुत्ते य णारए ॥

भावार्थ - उन परिव्राजकों में ये आठ जाति के ब्राह्मण परिव्राजक होते हैं। यथा - १. कृष्ण २. करकण्ड ३. अम्बड ४. पाराशर ५. कृष्ण ६. द्वीपायन ७. देवगुप्त और ८. नारद।

तत्थ खलु इमे अट्ट खत्तियपरिव्वायगा भवंति। तं जहा-

सीलई ससिहारे य, णग्गई भग्गई ति य।

विदेहे रायाराया, रायारामे बलेति य ॥

भावार्थ - उनमें ये आठ क्षत्रिय परिव्राजक होते हैं। यथा-१. सीलई-शीलजित २. ससिहार-शशिधर ३. नग्गई ४. भग्गई ५. विदेह ६. रायाराय ७. रायाराम और ८ बल।

विवेचन - इन सोलह जाति के परिव्राजकों का वर्णन कहीं देखने में नहीं आया। टीकाकार ने भी 'लोकतोऽवसेयाः' कहकर, व्याख्या नहीं की है। अर्थात् लोगों से अथवा अन्य ग्रन्थों से इनका स्वरूप जान लेना चाहिए।

ते णं परिव्वायगा रिउव्वेय-जजुव्वेय-सामवेय-अहव्वणवेय इतिहासपंचमाणं णिग्घंटुछट्टाणं संगोवंगणं सरहस्साणं चउण्हं वेयाणं सारगा पारगा धारगा वारगा।

भावार्थ - वे परिव्राजक ऋजुः, यजुः साम, अथर्वण, पांचवां इतिहास-पुराण और छट्टे निघण्टु नाम कौश रूप अंगोपांग और रहस्य सहित चारों वेदों के सारग-अध्यापन के द्वारा प्रवर्तक या दूसरों को याद करवाने के कारण स्मारक, पारग-अन्त तक पहुँचने वाले और धारग-धारण करने में समर्थ थे। वारग-अशुद्ध उच्चारण तथा परिव्राजक के नियमों के विरुद्ध आचरण करने वालों के वारक अर्थात् रोकने वाले।

सडंगवी सट्टितंतविसारया संखाणे सिक्खाकप्पे वागरणे छंदे णिरूत्ते जोतिसामयणे अण्णेसु य बहूसु बंभण्णएसु परिव्वाएसु य सत्थेसु सुपरिणिट्टिया यावि हुत्था।

भावार्थ - शिक्षा-अक्षर-स्वरूप निरूपकशास्त्र, कल्प-तथाविध आचार निरूपक शास्त्र, व्याकरण, छन्द, निरुक्त-शब्दों की निरुक्ति प्रतिपादक शास्त्र और ज्योतिष् शास्त्र इन वेदों के छह अंगों के ज्ञाता षडंगविद्, षष्ठितंत्र-कापिलीय तंत्र के पण्डित और गणित संखाण तथा और भी वेद के व्याख्यान रूप ब्राह्मण सम्बन्धी शास्त्रों में पूर्ण रूप से निष्णात थे।

ते णं परिव्वायगा दाणधम्मं च सोयधम्मं च तित्थाभिसेयं च आघवेमाणा पणवेमाणा परूवेमाणा विहरंति।

भावार्थ - वे परिव्राजक दानधर्म, शौचधर्म-स्वच्छता रूप धर्म और तीर्थाभिषेक-तीर्थस्नान का कथन करते हुए समझाते हुए प्रतिपादन करते हुए विचरते थे।

जण्णं अम्हे किंचि असुई भवइ, तण्णं उदएण य मट्टियाए य पक्खालियं सुई भवइ।

भावाथ - जो हमें किञ्चित् भी अशुचि होती है तो उसे जल और मिट्टी से धोकर पवित्र हो जाते हैं।
 एवं खलु अम्हे चोक्खा चोक्खायारा, सुई सुइ-समायारा भवेत्ता,
 अभिसेयजलपूयप्पाणो अविग्घेणं सगं गमिस्सामो ।

भावाथ - 'इस प्रकार हम स्वच्छ-विमल देह और वेशवाले और स्वच्छ-विमल आचार वाले-
 शुचि पवित्र और शुचि आचार वाले होकर, जलद्वारा अभिषेक-स्नान से पवित्र आत्मा बनकर निर्विघ्न
 स्वर्ग में जायेंगे।'

तेसि णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ-अगडं वा तलायं वा णइं वा वाविं वा
 पुक्खरिणिं वा दीहियं वा गुंजालियं वा सरं वा सरसिं वा सागरं वा ओगाहित्तए ।
 णण्णत्थ अद्धानगमणे ।

भावाथ - उन परिव्राजकों का मार्ग में गमन के सिवाय, कूप, तालाब, नदी, बावडी,
 पुष्करिणी—कमलों से भरा हुआ गोलघाटबन्ध जलाशय, दीर्घिका—सारणी, गुञ्जालिका—एक तरह की
 बावड़ी—वक्रसारणी, सरोवर, महासरोवर और सागर में प्रवेश करने का कल्प नहीं है।

णो कप्पइ सगडं वा जाव संदमाणियं वा दूरुहित्ता णं गच्छित्तए ।

भावाथ - कल्प-आचार नहीं है—गाड़ी यावत् डोली में चढ़कर चलने का कल्प (आचार) नहीं
 है।

तेसि णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ-आसं वा हत्थिं वा उट्टं वा गोणिं वा महिसं वा
 खरं वा दूरुहित्ता णं गमित्तए ।

भावाथ - उन परिव्राजकों का कल्प नहीं है—घोड़े, हाथी, ऊँट, बैल, भैंस और गधे पर सवार
 होकर चलने का।

तेसि णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ-णडपेच्छा इ वा जाव मागहपेच्छा इ वा
 पिच्छित्तए ।

भावाथ - उन परिव्राजकों का कल्प नहीं है, नटप्रेक्षा—नट के अभिनय यावत् मागधप्रेक्षा देखने
 का।

तेसि णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ-हरियाणं लेसणया वा घट्टणया वा थंभणया
 वा लूसणया वा उप्पाडणया वा करित्तए ।

भावाथ - उन परिव्राजकों का कल्प नहीं है—वनस्पति को परस्पर मिलाने या मसलने, इकट्ठी
 करने, ऊँची करने और उखाड़ने का।

तेसि णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ-इत्थिकहा इ वा भत्तकहा इ वा देसकहा इ वा रायकहा इ वा चोरकहा इ वा अणत्थदंडं करित्तए।

भावार्थ - उन परिव्राजकों का स्त्रीकथा, भातकथा, देशकथा, राजकथा और चोरकथा-जिनसे कि स्व-पर को क्लेश हो ऐसी निरर्थक कथाएँ करने का कल्प नहीं है क्योंकि इन कथाओं को करने से अनर्थदण्ड रूप कर्म का बन्ध होता है।

तेसि णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ-अयपायाणि वा तउयपायाणि वा तंबपायाणि वा जसदपायाणि वा सीसगपायाणि वा रूपपायाणि वा सुवण्णपायाणि वा अण्णयराणि वा बहुमुल्लाणि वा धारित्तए। णण्णत्थ लाउपाएण वा दारुपाएण वा मट्टियापाएण वा

भावार्थ - उन परिव्राजकों का तुम्बे, लकड़ी और मिट्टी के पात्रों के सिवाय, लोहे, त्रपुक-कथीर ताम्ब, जसद, शीशे, चांदी और सोने के पात्र रखने का कल्प नहीं है।

तेसि णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ-अयबंधणाणि वा तउयबंधणाणि वा तंबबंधणाणि.....जाव बहुमुल्लाणि धारित्तए।

भावार्थ - उनके.....लोहे के बन्धन, कथीर के बन्धन, ताम्बे के बन्धन.....यावत् किसी भी प्रकार के बहुमूल्य बन्धन वाले (पात्र) रखना नहीं कल्पता है।

तेसि णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ गाणाविह-वण्णाराग-रत्ताइं वत्थाइं धारित्तए। णण्णत्थ एक्काए धाउरत्ताए।

भावार्थ - उन परिव्राजकों को गेरुएँ रंग से रंगे हुए (धातुरत्त) वस्त्र के सिवाय-दूसरे नाना प्रकार के रंगों से रंगे हुए वस्त्र धारण करने का कल्प नहीं है।

तेसि णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ-हारं वा अद्धहारं वा एकावलिनं वा मुक्तावलिनं वा कणगावलिनं वा रयणावलिनं वा मुरविं वा कंठमुरविं वा पालंबं वा तिसरयं वा कडिसुत्तं वा दसमुहियाणंतकं वा कडयाणि वा तुडियाणि वा अंगयाणि वा के ऊराणि वा कुंडलाणि वा मउडं वा चूलामणिं वा पिणिद्धित्तए। णण्णत्थ एकेणं तंबिण्णं पवित्तएणं।

भावार्थ - उन परिव्राजकों को एक ताम्बे की पवित्रक- अंगूठी के सिवाय, अन्य हार, अर्द्धहार, एकावली, मुक्तावली, कनकावली, रत्नावली, मूरवि, कंठमुरवी-कंठला, प्रालम्ब-लम्बीमाला त्रिसरक, कटिसूत्र, दस अंगुठियाँ, कटक, त्रुटित, अंगद, केयूर, कुंडल या चूडामणि-मुकुट पहनने का कल्प नहीं है।

तेसि णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ गंथिमवेढिमपूरिमसंघातिमे चउव्विहे मल्ले धारित्तए। णण्णत्थ एगेणं कण्णपूरेणं।

भावाथ - उन परिव्राजकों को एक कर्णपूरक-फूलों का कान का आभरण के सिवाय, अन्य ग्रन्थिम-गूथी हुई, वेष्टिम- लपेटने से बनी हुई, पूरिम-वंशशलाका-जाल के पूरणमय या पूरने से बनी हुई और संघातिम-संघात से बनी हुई-नाल में नाल उलझाने से बनी हुई इन चार तरह की मालाओं को धारण करने का कल्प नहीं है।

तेसि णं परिव्वायगाणं णो कप्पइ-अगलुएण वा चंदणेण वा कुंकुमेण वा गायं अणुलिंपित्तए। णण्णत्थ एक्काए गंगामट्टियाए।

भावाथ - उन परिव्राजकों को एकमात्र गंगा की मिट्टी के सिवाय, अगरु, चन्दन अथवा कुंकुम से शरीर को लिप्त करने का कल्प नहीं है।

तेसि णं कप्पइ मागहए पत्थए जलस्स पडिगाहित्तए। से वि य वहमाणे, णो चेव णं अवहमाणे। से वि य थिमिओदए, णो चेव णं कहमोदए। से वि य बहुपसण्णे, णो चेव णं अबहुपसण्णे। से वि य परिपूए, णो चेव णं अपरिपूए। से वि य णं दिण्णे, णो चेव णं अदिण्णे। से वि य पिबित्तए, णो चेव णं हत्थ-पायचरुचमस-पक्खालणट्टाए सिणाइत्तए वा।

भावाथ - उन परिव्राजकों को एक मागध प्रस्थक जल ग्रहण करना कल्पता है। वह भी बहता हुआ, बंधा हुआ नहीं। निर्मलभूमि का जल, नीचे कीचड़ जमा हुआ हो ऐसा नहीं। अतिस्वच्छ, गंदा नहीं। छना हुआ, बिना छना हुआ नहीं। दिया हुआ, अदत्त नहीं। पीने के लिए ही, किन्तु हाथ, पैर, चरु, चमस- लकड़ी का चम्मच-दर्विका धोने के लिये या स्नान करने के लिये नहीं।

विवेचन - जैसे आजकल अंग्रेजी तोल जैसे कि-पाव, आधासेर, पांच सेर, मण आदि तोल प्रसिद्ध है। वैसे ही पहले मागधादि तोल प्रसिद्ध थे। मागधप्रस्थक का उल्लेख उपर्युक्त सूत्र में हुआ है। वह प्रमाण इस प्रकार है। यथा-

दो असईओ पसई, दोहिं पसईहिं सेइया होइ।
 चउसेइओ उ कुलओ चउकुलओ पत्थओ होइ ॥
 चउपत्थमाढयं तह, चत्तारि य आढया भवे दोणो।
 दो असई (असती) = १ पसई (प्रसृति)।
 दो पसई = १ सेइया (सेतिका)।
 चार सेइया = १ कुलओ (कुलवः)।
 चार कुलओ = १ पत्थओ (प्रस्थक)।
 चार पत्थओ (प्रस्थक) = १ आढय (आढक)।
 चार आढय = १ दोणो (द्रोण)।

तेसि णं परिव्वायगाणं कप्पइ मागहए अद्दाढए जलस्स पडिग्गाहित्तए। से वि य वहमाणे, णो चेव णं अवहमाणे। जाव णो चेव णं अदिण्णे। से वि य हत्थपायचरुचमस-पक्खालणट्टाए, णो चेव णं पिबित्तए सिणाइत्तए वा।

भावार्थ - उन परिव्राजकों के आधा मागध आढक जल लेने का कल्प है। वह भी बहता हुआ, बंधा हुआ नहीं। यावत् अदत्त नहीं। हाथ, पैर, चरु, चमस को धोने के लिए, पीने और स्नान के लिए नहीं।

ते णं परिव्वायगा एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा बहूइं वासाइं परियायं पाउणंति। पाउणित्ता कालमासे कालं किच्चा उक्कोसेणं बंभलोए कप्पे देवत्ताए उववत्तारो भवंति। तहिं तेसिं गइं, तहिं तेसिं ठिइं जाव दस सागरोवमाइं ठिइं पण्णत्ता। जाव सेसं तं चेव ॥ १२ ॥

भावार्थ - वे परिव्राजक इस तरह की चर्या करते हुए, बहुत वर्षों तक उस अवस्था को धारण करते हैं। फिर काल के समय में काल करके, ब्रह्मलोक कल्प-पांचवें स्वर्ग में देव रूप से उत्पन्न होते हैं। उनकी दस सागरोपम की स्थिति है। शेष उसी प्रकार।

अम्बड़ परिव्राजक के सात सौ शिष्य

३९ - तेणं कालेणं तेणं समएणं अम्मडस्स परिव्वायगस्स सत्त अंतेवासिसयाइं गिम्हकालसमयंसि जेट्टामूलमासंसि गंगाए महाणइंए उभओकूलेणं कंपिल्लपुराओ णयराओ पुरिमतालं णयरं संपट्टिया विहाराए।

भावार्थ - उस काल उस समय 'अम्बड़' परिव्राजक के सात सौ अन्तेवासी-शिष्य ग्रीष्मकाल के ज्येष्ठा-मूल अर्थात् ज्येष्ठ मास में गंगा महानदी के दो किनारों से 'कपिल्लपुर' नगर से पुरिमताल नगर को जाने के लिए रवाना हुए।

तए णं तेसिं परिव्वायगाणं तीसे अगामियाए छिण्णावायाए दीहमद्दाए अडवीए कंचि देसंतर-मणुपत्ताणं, से पुव्वग्गहिए उदए अणुपुव्वेणं परिभुंजमाणे झीणे।

भावार्थ - तब वे परिव्राजक उस ग्राम से रहित और सार्थ गोकुलादि के मिलन से रहित, लम्बे मार्गवाली अटवी के किसी भाग में पहुँच गये। पहले ग्रहण किया हुआ पानी बार-बार पीने से समाप्त हो गया।

तए णं ते परिव्वायगा झीणोदगा समाणा तण्हाए पारब्भमाणा-पारब्भमाणा उदगदातारमपस्समाणा अण्णमण्णं सद्दावेंति।

भावाथ - तब वे परिव्राजक पानी के समाप्त हो जाने से, प्यास के बढ़ने से और जल-दाता के दिखाई नहीं देने से, एक दूसरे को पुकारने लगे अथवा परस्पर बातें करने लगे।

सद्वावित्ता एवं वयासी-एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमीसे अगामियाए जाव अडवीए कंचि देसंतरमणुपत्ताणं, से उदए जाव झीणे तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमीसे अगामीए जाव अडवीए उदगदातारस्स सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करित्तए।

भावाथ - पुकार कर इस प्रकार बोले- 'हे देवानुप्रिय ! इस ग्राम रहित अटवी के किसी भाग में हम आ पड़े हैं। जल खत्म है। अतः हे देवानुप्रियो ! इसी में भला है किं हम इस ग्राम रहित अटवी में एक साथ चारों ओर जलदाता की खोज करे।'

त्तिकट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्टुं पडिसुणंति। पडिसुणित्ता तीसे अगामियाए जाव अडवीए उदग-दातारस्स सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करंति।

भावाथ - इस प्रकार एक-दूसरे के पास से यह बात सुनने लगे। सुनकर वे उस ग्राम रहित अटवी में चारों ओर एक साथ जलदाता की खोज करने लगे।

करित्ता उदगदातारमलभमाणा दोच्चंपि अण्ण-मण्णं सद्वावेत्ति। सद्वावेत्ता एवं वयासी-

भावाथ - उदकदाता के नहीं मिलने पर, पुनरपि अन्योन्य बातें करने लगे। इस प्रकार बोले -

इह णं देवाणुप्पिया ! उदगदातारो णत्थि। तं णो खलु कप्पइ अम्हं अदिण्णं गिण्हत्तए। अदिण्णं साइज्जित्तए। तं मा णं अमहे इयाणिं आवइकालंमि अदिण्णं गिण्हामो-अदिण्णं साइज्जामो। मा णं अम्हं वयलोवे भविस्सइ।

भावाथ - 'देवानुप्रियो ! यहाँ उदकदाता नहीं है। अदत्त ग्रहण करने का हमारा कल्प नहीं है और न अदत्त भोगने का ही। तो हम इस आपत्तिकाल में भी अदत्त ग्रहण नहीं करें-नहीं भोगें, तो हमारे व्रत का लोप नहीं होगा।

तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! तिट्ठंणं कुंडियाओ य कंचणियाओ य करोडियाओ य भिसियाओ य छण्णालए य अंकुसए य केसरियाओ य पवित्तए य गणेत्तियाओ य छत्तए य वाहणाओ य पाउयाओ य धाउरत्ताओ य एगंते एडित्ता, गंगं महाणइं ओगाहित्ता, वालुयासंथारए संथरित्ता, संलेहणाओसियाणं भत्तपाण-पडियाइक्खियाणं पाओवगयाणं कालं अणवकंख-माणाणं विहरित्तए।

भावाथ - 'तब हे देवानुप्रियो ! यही अच्छा है कि-हम त्रिदण्ड, कमण्डलु, रुद्राक्ष की मालाएँ, करोटिका-मिट्टी का पात्र विशेष, वृषिका-बैठने की पट्टी, षण्णालंक (त्रिकाष्ठिका), अंकुशक-

देवार्चन के लिए वृक्ष के पत्तों को खींचने का साधन, केशरिका-प्रमार्जन के लिए वस्त्रखण्ड, पवित्रक-ताम्बे की अंगूठी, गणेत्रिक-हस्ताभरण विशेष, छत्र, पादुकाएँ और गैरिकवस्त्र एकान्त में छोड़कर गंगा महानदी को पार करके या नदी में प्रवेश करके, बालुका का संस्तारक-बिछौना करके, संलेखना-देह और विचारों के विरोधक संस्कार को क्षीण करने की क्रिया का सेवन करते हुए, भात-पानी का त्याग करके, वृक्ष की कटी हुई डाली के समान पादपोषणमन संथारा करके मरण की इच्छा नहीं करते हुए शान्त चित्त से रहें।

त्तिकट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्टं पडिसुणंति । जाव पडिसुणित्ता, तिदंडए जाव एगंते एडेइ । एडित्ता गंगं महाणइं ओगाहंति । ओगाहित्ता वालुयासंथारए संथरंति ।

भावार्थ - इस प्रकार यह बात एक-दूसरे के कर्णोपकर्ण सुनी। सुनकर त्रिदण्ड आदि को एकान्त में छोड़े। गंगा महानदी में प्रवेश किया। रेत का संस्तारक-बिछौना बनाया।

वालुयासंथारयं दुरुहंति । दुरुहित्ता पुरत्थाभिमुहा संपलियंकणिसण्णा करयल जाव कट्टु एवं वयासी-

भावार्थ - रेत के संस्तारक पर बैठे। पूर्वाभिमुख पद्मासन से बैठ कर, हाथ जोड़ कर यावत् इस प्रकार बोले-

णमोत्थु णं अरहंताणं जाव संपत्ताणं । णमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स जाव संपाविउकामस्स । णमोत्थु णं अम्मडस्स परिव्वायगस्स अहं धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स ।

भावार्थ - अर्हन्त भगवान् को नमस्कार हो यावत् सिद्धि स्थान पर पहुँचे सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार हो, नमस्कार हो श्रमण भगवान् महावीर स्वामी को जो निकट भविष्य में सिद्धिस्थान प्राप्त करने वाले हैं, हमारे धर्माचार्य धर्मोपदेशक अम्बड परिव्राजक को नमस्कार हो'

पुव्वि णं अहे अम्मडस्स परिव्वायगस्स अंतिए थूलगपाणाइवाए पच्चक्खाए जावजीवाए । थूलग मुसावाए अदिण्णादाणे पच्चक्खाए जावजीवाए । सब्बे मेहुणे पच्चक्खाए जावजीवाए । थूलए परिग्गहे पच्चक्खाए जावजीवाए ।

भावार्थ - पहले हमने 'अम्बड' परिव्राजक के पास जीवन भर के लिए स्थूल प्राणातिपात, स्थूल मूषावाद, अदत्तग्रहण, सर्व मैथुन तथा स्थूल परिग्रह का त्याग किया था।

इयाणिं अहे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सब्बं पाणाइवायं पच्चक्खामो जावजीवाए । एवं जाव सब्बं परिग्गहं पच्चक्खामो जावजीवाए । सब्बं कोहं माणं मायं लोहं पेज्जं दोसं कलहं अब्भक्खाणं पेसुणं परपरिवायं अरइरइं मायामोसं

मिच्छादंसणसल्लं अकरणिज्जं जोगं पच्चक्खामो जावजीवाए। सव्वं असणं पाणं
खाइमं साइमं चउव्विहंपि आहारं पच्चक्खामो जावजीवाए।

भावार्थ - अब हम श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास जीवन भर के लिए सम्पूर्ण प्राणातिपात यावत् सम्पूर्ण परिग्रह, सम्पूर्ण क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, अरतिरति, मायामृषा, मिथ्यादर्शनशल्य नहीं करने योग्य योग-मन, वचन और काया की क्रिया, अशन-अन्नादि पान-पानी, खाद्य-मेवा आदि और स्वाद्य-मुखवासादि-इन चार प्रकार के आहार का त्याग करते हैं।

जं पि य इमं सरीरं इदं कंतं पियं मण्णणं मण्णामं श्रेज्जं (पेज्जं) वेसासियं,
संमयं बहुमयं अणुमयं, भण्डकरंडगसमाणं मा णं सीर्यं मा णं उण्हं, मा णं खुहा, मा णं
पिवासा, मा णं वाला, मा णं चोरा, मा णं दंसा, मा णं मसगा, मा णं वाइय-
पित्तियसंणिवाइयं विविहा रोगायंका परीसहोवसग्गा फुसंतु-त्तिकट्टु एयं पि णं
चरिमेहिं ऊसासणीसासेहिं वोसिरामि।

भावार्थ - 'यह जो शरीर इष्ट-वल्लभ, कान्त-सुन्दर, प्रिय, मनोज्ञ-मन भावन, मणोम-मनोरम, प्रेय-प्रीति के योग्य या प्रेज्य-पूजनीय, विश्वसनीय, सम्मत-स्वयं को मान्य, बहुमत-बहुतों का इष्ट और अनुमत-विगुण देखने पर भी पुनः पुनः मान्य था और जिसे भूषण के करण्डक के समान माना था। कहीं इसे शीत न लग जाय, गर्मी न लग जाय, कहीं यह भूखा न रह जाय, कहीं न्यासा न मर जाय, कहीं इसे सर्प आदि न सतावें, कहीं यह चोरों से पीड़ित न हो जाय, डांस-मच्छर के उपद्रव में न फँस जाय, वात, पित्त और सन्निपातादि विविध रोगों से आतङ्कित न हो जाय और परीषह-क्षुधादि और उपसर्ग-देवादि के कष्ट न सहना पड़े-इस प्रकार सुरक्षा से जिसे रखा है, उसे भी अन्तिम श्वास-उच्छ्वास में त्याग दें।'

त्ति कट्टु संलेहणाइूसिया इूसणा भत्तपाण पडियाइक्खिया पाओवगया कालं
अणवकंखमाणा विहरंति। तए णं ते परिव्वायगा बहूइं भत्ताइं अणसणाए छेदंति।
छेदित्ता आलोइय पडिक्कंता समाहिपत्ता काल मासे कालं किच्चा बंभलोए कप्पे
देवत्ताए उववण्णा। तहिं तेसिं गई जाव दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। परलोगस्स
आराहगा। सेसं तं चेव।

भावार्थ - इस प्रकार उत्साह पूर्वक अपनी इच्छा से तपस्या से शरीर को कृश (दुर्बल) करते हुए भात-पानी का त्याग करके, वृक्ष की कटी हुई डाली के समान स्थिर अवस्था में रहकर, मरने की इच्छा नहीं करते हुए, काल व्यतीत करने लगे। तब उन परिव्राजकों ने बहुत-से भक्त-भोजनकाल को

अनशन-अनाहार से छेदन किये। छेदन करके अपने अतिचारों की आलोचना की और उनका प्रतिक्रमण किया अर्थात् उन अतिचारों से पीछे हटे। समाधि-शान्ति-चित्त विशुद्धि पाई। समाधि को प्राप्त करके काल के समय में काल करके, ब्रह्मलोक कल्प में देवरूप से उत्पन्न हुए-वहाँ उनकी दस सागरोपम की स्थिति है। वे परलोक के आराधक हुए हैं। शेष पूर्ववत्।

अम्बड परिव्राजक

४०- बहुजणे णं भन्ते ! अण्णमण्णस्स एवमाइ-क्खइ, एवं भासइ, एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ-एवं खलु अम्मडे परिव्वायए कंपिल्लपुरे णयरे घरसए आहारमाहरेइ, घरसए वसहिं उवेइ। से कहमेयं भन्ते ! एवं!

भावार्थ - हे भगवन्! बहुत-से मनुष्य परस्पर इस प्रकार कहते हैं, इस प्रकार बोलते हैं, इस प्रकार जतलाते हैं और प्ररूपणा करते हैं कि - 'अम्बड परिव्राजक 'कंपिल्लपुर' नगर में सौ घरों में आहार करता है-सौ घरों में निवास करता है-तो क्या भन्ते ! यह बात ऐसी ही है?'

गोयमा ! जण्णं से बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ जाव एवं परूवेइ-एवं खलु अम्मडे परिव्वायए कंपिल्लपुरे जाव घर सए वसहिं उवेइ, सच्चे णं एसमट्टे। अहं पि णं गोयमा ! एवमाइक्खामि जाव एवं परूवेमि-एवं खलु अम्मडे परिव्वायए जाव वसहिं उवेइ।

भावार्थ - हे गौतम ! जो बहुजन इस प्रकार कहते हैं कि अम्बड परिव्राजक सौ घरों में निवास करता है यह बात सत्य है। हे गौतम ! मैं भी इस प्रकार कहता हूँ।'

से केणट्टेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-अम्मडे परिव्वायए जाव वसहिं उवेइ।

भावार्थ - हे भन्ते ! किस कारण से इस प्रकार कहते हैं कि-अम्बड परिव्राजक सौ घरों में आहार करता है और सौ घरों में निवास करता है।

गोयमा ! अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स पगइभइयाए जाव विणीययाए छट्ठंछट्ठेणं अण्णिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं ऊट्ठं बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय सूराम्भिमहस्स आयावणभूमिए आयावेमाणस्स, सुभेणं परिणामेणं पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं पसत्थाहिं लेसाहिं विसुज्झ-माण्णीहिं, अण्णया कयाइं तदावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहावूहामगणगवेसणं करेमाणस्स वीरियलब्धीए वेउव्वियलब्धीए ओहिणाणलब्धी समुप्पण्णा।



भावाथ - हे गौतम ! स्वाभाविक भद्रता और स्वाभाविक सरलता से यावत् विनीतता से युक्त, निरन्तर षष्ठोपवास-दो-दो दिन के उपवास अर्थात् बेले-बेले की तपस्या रूप तपःकर्म सहित, भुजाएँ ऊँची रख कर और मुख सूर्य की ओर करके आतापना भूमि में आतापना लेने वाले 'अम्बड' परिव्राजक को, शुभ परिणाम, प्रशस्त अध्यवसाय और विशुद्ध होती हुई प्रशस्त लेश्या के द्वारा, किसी समय तदावरणीय-वीर्य लब्धि और वैक्रिय लब्धि के आवरक तथा अवधिज्ञानावरण कर्मों का क्षयोपशम होने पर जिज्ञासात्मक मति-ईहा, निर्णयात्मक मति-व्यूह, वस्तुगत धर्म के आलोचन-मार्गण और वस्तु में जो धर्म नहीं है उनके आलोचन-गवेषण रूप बुद्धि का व्यापार करते हुए, वीर्यलब्धि और वैक्रिय लब्धि के साथ अवधिज्ञान लब्धि प्राप्त हुई।

विवेचन - लेश्या-मन, वचन और काया की क्रिया में प्रयुक्त पुद्गलद्रव्य और उसके निमित्त से होने वाला आत्मिक असर। अध्यवसाय-भावमन का व्यापार। परिणाम-जीव की परिणति। ज्यों-ज्यों मन, वचन और काया की क्रिया शुभ होती है, त्यों-त्यों उनसे गृहीत पुद्गल द्रव्य भी शुभ और शुद्ध होता जाता है। जिससे अध्यवसाय में शुभता आती है। फिर शुभ अध्यवसायों से जीव की परिणति शुभ होती है और अन्त में शुद्ध दशा में भी स्थिति हो सकती है। प्रायः साधक दशा से साध्य दशा में पहुँचने का यही राजमार्ग प्रतीत होता है। ईहा-यह वही है या अन्य? इस प्रकार की आलोचनाभिमुख मति। व्यूह- 'यह वही है'-इस प्रकार का निश्चय। यथा-यह दूँटा है या पुरुष? (ईहा)। यह तो दूँटा ही है-(व्यूह)। क्योंकि बेले आदि लिपटी हुई दिखाई दे रही हैं-(मार्गण) और पुरुष के समान शिर आदि भी नहीं हिला रहा है-(गवेषण)। इन सब बातों को करने से अम्बड परिव्राजक को वीर्य लब्धि और वैक्रिय लब्धि के साथ अवधिज्ञान लब्धि प्राप्त हुई।

ताए णं से अम्मडे परिव्वायए ताए वीरियलब्धीए वेउव्वियलब्धीए ओहिणाणलब्धीए समुप्पण्णाए जणविम्हावणहेउं कंपिल्लपुरे घरसए जाव वसहिं उवेइ। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-अम्मडे परिव्वायए कंपिल्लपुरे णयरे घरसए जाव वसहिं उवेइ।

भावाथ - तब वह 'अम्बड' परिव्राजक वीर्यलब्धि-विशेष-शक्ति की प्राप्ति, वैक्रियलब्धि-अनेक रूप बनाने की शक्ति और अवधिज्ञानलब्धि-रूपी पदार्थों को आत्म प्रदेशों से जानने की शक्ति के प्राप्त होने पर, मनुष्यों को विस्मित करने के लिये 'कंपिल्लपुर' नगर में सौ घरों में आहार करता है-सौ घरों में निवास करता है। इस कारण हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ, कि-'अम्बड परिव्राजक सौ घरों में आहार करता है और सौ घरों में निवास करता है।'

विवेचन - अम्बड और अम्बड के शिष्यों ने पहले परिव्राजक धर्म को स्वीकार करके परिव्राजक दीक्षा अंगीकार की थी। इसलिए वे परिव्राजक कहलाते थे और परिव्राजकों के वस्त्र गेरुएँ रंग के होने से अम्बड आदि के वस्त्र भी गेरुएँ रंग के थे तथा उपकरण भी त्रिदण्ड, कुण्डिका आदि थे। फिर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का सम्पर्क होने से उन्होंने जैन धर्म को स्वीकार किया और श्रावक के व्रत

अंगीकार किये किन्तु वेश वही परिव्राजक का रखा था इस कारण से अम्बड को और उनके शिष्यों को मूल पाठ में “परिव्राजक” कहा है। वे शुद्ध सम्यक्त्व और निरातिचार श्रावक व्रत पालन करने से परलोक के आराधक हुए हैं।

पहू णं भंते ! अम्मडे परिव्वायए देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ?-णो इणट्टे समट्टे ।

भावार्थ - हे भन्ते ! अम्बड परिव्राजक देवानुप्रिय के पास में मुंडित होकर गृहवास से निकलकर, अनगर अवस्था को प्राप्त करने के लिए समर्थ है? हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् अम्बड मेरे पास दीक्षा नहीं लेगा।

गोयमा ! अम्मडे णं परिव्वायए समणोवासए अभिगय-जीवाजीवे जाव अप्पाणं भावेमाणे विहरइ । णवरं ऊसियफलिहे अदंगुयदुवारे चियत्तंतेउरघर-दार-पवेसी एयं ण वुच्चइ ।

भावार्थ - किन्तु हे गौतम ! अम्बड परिव्राजक श्रमणोपासक होकर, जीव और अजीव को जानता हुआ यावत् आत्मा को भावित करता हुआ विचरण करता रहेगा। ‘ऊसिय’ आदि तीन विशेषण नहीं कहना चाहिए।

विवेचन - ‘जाव’ शब्द से ‘उवलद्धपुण्णपावे आसव’ आदि विशेषणों का ग्रहण होता है। जिनका अनुवाद २० वें प्रश्न में आयेगा। ‘ऊसियफलिहे’ आदि तीन विशेषण यहाँ नहीं कहने चाहिये, क्योंकि ये परिव्राजक-संन्यासी के वेष में श्रावक बने हैं। इसलिए इनके घर आदि नहीं है। अतएव ये तीन विशेषण इनके लिए नहीं कहने चाहिए।

अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जावजीवाए जाव परिग्रहे, णवरं सव्वे मेहुणे पच्चक्खाए जावजीवाए ।

भावार्थ - अम्बड के स्थूल प्राणातिपात, स्थूल मृषावाद अदत्तादान तथा सर्व मैथुन और स्थूल परिग्रह के जीवन भर के लिए प्रत्याख्यान हैं।

अम्मडस्स णं णो कप्पइ अक्खसोयप्पमाणमेत्तं पि जलं सयराहं उत्तरित्तए । णणत्थ अद्धाण-गमणेणं ।

भावार्थ - अम्बड को मार्ग गमन के सिवाय, गाड़ी की धुरा डूबने जितने जल में भी अकस्मात् उतरना नहीं कल्पता है।

अम्मडस्स णं णो कप्पइ सगडं एवं चेव भाणियव्वं जाव णणत्थ एगाए गंगामट्ठियाए ।



भावार्थ - अम्बड को गाड़ी आदि यानों में बैठना नहीं कल्पता है। इसी प्रकार 'एगाए गंगाए मट्टियाए' तक कहना चाहिए अर्थात् पहले परिव्राजकों के वर्णन में जो ये विशेषण आ चुके हैं वैसे ही विशेषणों से युक्त 'अम्बड' भी थे।

अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स णो कप्पइ-आहाकम्मिए वा उद्देसिए वा मीसजाए इ वा अज्जोयरए इ वा पूइकम्पे इ वा कीयगडे इ वा पामिच्चे इ वा अणिसिट्टे इ वाअभिहडे इ वा ठइत्तए इ वा रइए इ वा कंतारभत्ते इ वा दुब्भिव्खभत्ते इ वा पाहुणगभत्ते इ वा गिलाणभत्ते इ वा वहलियाभत्ते इ वा भोत्तए वा पाइत्तए वा।

भावार्थ - अपने लिये बनाया हुआ, किसी साधु के लिये बनाया हुआ, साधु और गृहस्थ दोनों के लिये बनाया हुआ, गृहस्थ के बनते हुए भोजन में साधु के लिए कुछ और बढ़ाकर बनाया हुआ, अपने लिए बनाए हुए भोजन-पान के अंश से मिश्रित बना हुआ, अपने लिए खरीदा हुआ, उधार लिया हुआ, घर के व्यक्ति या मुखिया से बिना पूछे दिया जाने वाला, सामने लाकर दिया जाने वाला, अपने लिये ही अलग रखा हुआ, अपने लिये संस्कारित किया हुआ, अटवी उल्लंघन के लिए घर से लाया हुआ पाथेय भाता रूप आहार अथवा भिक्षुओं के निर्वाह के लिये जंगल में संस्कारित किया हुआ, दुर्भिक्ष पीड़ितों के लिए या दुर्भिक्ष के कारण भिक्षुओं के लिये बना हुआ, पाहुने से सम्बन्धित रहा हुआ, रोगी के लिए बना हुआ और दुर्दिन-बादल आदि से आच्छन्न दिन में गरीबों के लिए बना हुआ भोजन-पान, अम्बड को खाना-पीना नहीं कल्पता है।

अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स णो कप्पइ-मूलभोयणे इ वा जाव बीयभोयणे इ वा भोत्तए वा पाइत्तए वा।

भावार्थ - अम्बड परिव्राजक के मूलभोजन यावत् बीजभोजन करने का कल्प नहीं है।

विवेचन - 'जाव' शब्द से-'कंदभोयणे इ वा' 'फलभोयणे इ वा' और 'हरियभोयणे इ वा' आदि पदों का ग्रहण होता है। अर्थ-कंद से लेकर बीज तक का सचित्त वस्तु का भोजन अम्बड को नहीं कल्पता है।

अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स चउव्विहे अणत्थदंडे पच्चक्खाए जावजीवाए। तं जहा-अवज्जाणायरिए पमायायरिए हिंसप्पयाणे पावकम्मोवएसे।

भावार्थ - अम्बड परिव्राजक ने जीवन भर के लिए चार प्रकार के अनर्थदण्ड अर्थात् निरर्थक हिंसक क्रियाएँ छोड़ दी हैं। यथा-बुरे ध्यान का सेवन, प्रमाद-सेवन, हिंसा के साधन अन्य को देना और पाप से होने वाली क्रियाओं के करने का उपदेश देना।

अम्मडस्स कप्पइ मागहए अब्धाढए जलस्स पडिग्गाहित्तए। से वि य वहमाणे णो चेव णं अवहमाणए जाव से वि य पूए, णो चेव णं अपरिपूए। से वि य सावज्जेत्ति

काउं, णो चेव णं अणवज्जे। से वि य जीवा त्ति कट्टु, णो चेव णं अजीवा। से वि य दिण्णे, णो चेव णं अदिण्णे। से वि य दंतहत्थपायचरुचमसपक्खालण-डुयाए पिबित्तए वा, णो चेव णं सिणाइत्तए।

भावार्थ - बहता हुआ जल, किन्तु बन्धा हुआ नहीं, छना हुआ जल, किन्तु अनछना नहीं, वह सावद्य जल है, किन्तु निरवद्य नहीं है, सजीव है किन्तु अजीव नहीं है, दत्त जल किन्तु अदत्त नहीं-ऐसा मगध का आधा आढक जल, हाथ-पैर, दांत, चरु, चमस धोने के लिए और पीने के लिये, किन्तु स्नान के लिये नहीं-अम्बड के लेने का कल्प है। अर्थात् हाथ आदि धोने के लिए और पीने के लिए बहते हुए प्रवाह से, सावद्य और सजीव से छानकर दिया हुआ जल मगध के आधे आढक जितना लेने का, अम्बड के कल्प है।

विवेचन - 'यह जो जल का परिमाण करण है वह जल सावद्य है-सजीव है'-ऐसा करके परिमाण करना अथवा छना हुआ जल किस कारण से ग्रहण करते हैं? जल सावद्य है, उसमें पूतरकादि जीव हैं-ऐसा सोचकर। यह भाव है।

अर्थात् अम्बड ने यह प्रतिज्ञा नहीं की थी, कि-'मैं सावद्य और सजीव जल ही काम में लूंगा।' क्योंकि ऐसी प्रतिज्ञा सुप्रत्याख्यान में नहीं गिनी जा सकती। अतः इन प्रतिज्ञागत वाक्यों का यह आशय है, कि - 'जिस जल का मैं उपयोग करता हूँ, वह जल सावद्य और सजीव है, किन्तु निरवद्य और निर्जीव नहीं है'-ऐसा विचार करके, जल की मर्यादा की, अथवा जल को छानकर उपयोग में लेने का नियम लिया। 'त्ति काउं' और 'त्ति कट्टु' शब्दों से भी यही ध्वनि निकलती है।

अम्बड परिव्राजक ने परिव्राजक अवस्था में इस प्रकार पानी की मर्यादा की थी सो श्रावकपने में भी पूर्व-प्रतिज्ञा को ही कायम रखा था। वह उस जल को सचित्त समझता था यह उसकी श्रद्धा थी, किन्तु इससे उसके श्रावकपने में किसी प्रकार की बाधा नहीं आती थी, क्योंकि श्रावक सर्व सचित्त का सर्वथा त्यागी नहीं होता है।

अम्बडस्स कप्पइ मागहए आढए जलस्स पडिग्गाहित्तए। से वि य वहमाणे जाव दिण्णे णो चेव णं अदिण्णे। से वि य सिणाइत्तए, णो चेव णं हत्थपायचरुचमस-पक्खालणडुयाए पिबित्तए वा।

भावार्थ - अम्बड के मागध एक आढक जल लेने का कल्प है। वह भी बहता हुआ....जाव इत्त.....स्नान के लिये, किन्तु हाथ, पैर.....आदि धोने और पीने के लिए नहीं।

अम्बडस्स णो कप्पइ अण्णउत्थिया वा, अण्णउत्थियदेवयाणि वा, अण्णउत्थियपरिग्गहियाणि वा चेइयाइं वंदित्तए वा णमंसित्तए वा ज्जाव पज्जुवासित्तए वा। णण्णत्थ अरिहंते वा. अरिहंतचेइयाइं वा।

से णं भंते ! अम्मडे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं
ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता । कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?

- गोयमा! महाविदेहे वासे जाइं कुलाइं भवंति-अड्ढाइं दित्ताइं वित्ताइं
विच्छिण्णविउलभवण-सयणासणजाणवाहणाइं बहु धणजायरूवरययाइं
आओगपओगसंपउत्ताइं विच्छिड्डिय-पउरभत्तपाणाइं बहुदासीदास-गोमहिसग-
वैलगप्पभूयाइं बहुजणस्स अपरिभूयाइं । तहप्पगारेसु कुलेसु पुमत्ताए पच्चायाहिइ ।

भावार्थ - हे भन्ते ! 'अम्बड' देव उस देवलोक से आयु... भव-देव-गति और स्थिति के क्षीण होने पर, चव कर कहाँ जाएगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?

हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में जो कुल हैं, वे समृद्ध, दर्पवान् और प्रसिद्ध हैं। अनेकों भवन, शयनासन, यान और वाहनों से युक्त हैं। उनके यहाँ धन, सोने, चांदी की कमी नहीं हैं। वे अर्थलाभ के उपायों का सफलता से प्रयोग करते हैं। कुल मनुष्यों के भोजन के बाद, अन्य बहुत-से मनुष्यों का भी गुजारा हो सके, इतना प्रचुर भोजन-पान उनके यहाँ बनता है। वहाँ दास-दासियों की भी कमी नहीं। वे गायें आदि पशुधन से समृद्ध हैं। ऐसे कुलों में से एक कुल में पुरुष रूप से उत्पन्न होगा।

विवेचन - आयुक्षय - आयु:कर्म के दलिकों का आत्मा से सम्बन्ध छूटना।

भवक्षय - देवादि भव के निबन्धनभूत कर्मों का क्षय होना।

स्थितिक्षय - आयु:कर्म और दूसरे भी तद्योग्य कर्मों का आत्मा के साथ लगे रहने का काल समाप्त हो जाना।

देव की जो 'अम्बड' संज्ञा कही गई है, वह इस भव की अपेक्षा से। वहाँ अन्य संज्ञा होना संभव है।

तए णं तस्स दारगस्स गब्भत्थस्स चेव समाणस्स अम्मापिईणं धम्मं दढा पइण्णा
भविस्सइ ।

भावार्थ - तब उस बालक के गर्भ में आते ही माता-पिता की धर्म में दृढ़ प्रतिज्ञा होगी।

से णं तत्थ णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्दट्टमाणाराइंदियाणं वीइक्कंताणं
सुकुमालपाणिपाए जाव ससिसोमाकारे कंते पियदंसणे सुरूवे दारए पयाहिइ ।

भावार्थ - वहाँ पूर्ण नव महीने और साढ़े सात रात्रि-दिन बीतने पर, सुकुमार हाथ-पैर वाले यावत् चन्द्र के समान सौम्याकार, कान्त और प्रिय दर्शन वाले सुरूप बालक का जन्म होगा।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो पढ्मे दिवसे ठिइवडियं काहिंति ।

भावार्थ - तब उस बालक के माता-पिता पहले दिन कुल क्रम के अनुसार पुत्र जन्म के योग्य क्रिया करेंगे।

बिईयदिवसे चंदसूरदंसणियं कार्हिति । छट्टे दिवसे जागरियं कार्हिति ।

भावार्थ - दूसरे दिन 'चन्द्र-सूर्य-दर्शनिका' नामक जन्म उत्सव करेंगे । छट्टे दिन 'जागरिका' नामक जन्मोत्सव करेंगे ।

एक्कारसे दिवसे वीइक्कंते णिव्वित्ते असुइ-जायकम्मकरणे, संपत्ते बारसाहे दिवसे अम्मापियरो इमं एयारूवं गोणं गुण-णिप्फणं णामधेज्जं कार्हिति-जम्हा णं अहं इमंसि दारगंसि गब्भत्थंसि चेव समाणंसि धम्मे दढपइण्णा, तं होउ णं अहं दारए दढपइण्णे णामेणं । तए णं तस्स दारगस्स अम्मा-पियरो णामधेज्जं करेहिंति-दढपइण्णे-त्ति ।

भावार्थ - ग्यारह दिन बीत जाने पर-जनन-क्रिया सम्बन्धी अशुचि के विधान के निवृत्त होने पर-बारहवें दिन माता-पिता यह इस रूप से गुणों से सम्बन्धित गुणनिष्पन्न-गुणानुसार बनने वाला नाम-संस्कार करेंगे- 'क्योंकि यह बालक गर्भ में था, उस समय धर्म में हमारी दृढ़ प्रतिज्ञा हुई थी । अतः हमारा बालक 'दढपइण्ण'-दृढप्रतिज्ञा नाम से प्रसिद्ध हो ।' तब माता-पिता उस बालक का नाम 'दढपइण्ण' रखेंगे ।

तं दढपइण्णं दारगं अम्मापियरो साइरेगऽट्टुवास-जायगं जाणित्ता सोभणंसि तिहिकरणक्खत्तमुहुत्तंसि कलायरियस्स उवणेहिंति ।

भावार्थ - फिर वे 'दढपइण्ण' बालक को आठ वर्ष से अधिक का हुआ जानकर, शुभ तिथि, करण और नक्षत्र वाले मुहूर्त में कलाचार्य के पास ले जायेंगे ।

तएणं से कलायरिए तं दढपइण्णं दारगं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरूयपज्जवसाणाओ बावत्तरि कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सेहाविहिइ, सिक्खाविहिइ ।

भावार्थ - तब कलाचार्य उस 'दढपइण्ण' बालक को लेखादि-लेखनकला आदि में है जिसके ऐसी, गणितप्रधान 'शकुनरुत' पर्यन्त बहत्तर कलाएँ सूत्र से, अर्थ से और प्रयोग से सधाएंगे-सिखाएंगे ।

तंजहा-लेहं, गणियं, रूवं, णट्टं, गीयं वाइयं, सरगयं, पुक्खरगयं, समतालं, जूयं, जणवायं, पासकं, अट्टावयं, पोरेकच्चं, दगमट्टियं, अण्णविहिं, पाणविहिं, वत्थविहिं, विलेवणविहिं, सयणविहिं, अज्जं, पहेलियं, मागहियं, गाहं, गीइयं, सिलोयं, हिरण्णजुत्तिं, सुवण्णजुत्तिं, गंधजुत्तिं, चुण्णजुत्तिं, आभरण-विहिं, तरुणीपडिकम्मं, इत्थिलक्खणं, पुरिसलक्खणं, हयलक्खणं, गयलक्खणं, गोणलक्खणं, कुक्कुडलक्खणं, चक्क-लक्खणं, छत्तलक्खणं, चम्मलक्खणं, दंडलक्खणं, असिलक्खणं, मणिलक्खणं, काकणिलक्खणं, वत्थुविज्जं, खंधारमाणं, णगरमाणं, वत्थुणिवेसणं, वूहं पडिवूहं, चारं

पडिचारं, चक्कवूहं, गरुलवूहं, सगडवूहं, जुद्धं, णिजुद्धं, जुद्धाडुजुद्धं, मुट्टिजुद्धं, बाहुजुद्धं, लयाजुद्धं, इसत्थं, छरुप्पवाहं, धणुव्वेयं, हिरण्णपागं, सुवण्णपागं, वट्टखेडुं, सुत्तखेडुं, णालियाखेडुं, पत्तच्छेज्जं, कडवच्छेज्जं, सजीवं, णिज्जीवं, सउणरुय-मिति बावत्तरिकलाओ सेहावित्ता ।

भावार्थ - बहत्तर कलाओं के नाम यथा-१. लेख २. गणित ३. रूप ४. नाट्य ५. गीत ६. वादित ७. स्वरगत ८. पुष्करगत ९. समताल १०. द्यूत ११. जनवाद १२. पाशक १३. अष्टापद १४. पौरस्कृत्य १५. उदक-मिट्टिय १६. अन्नविधि १७. पानविधि १८. वस्त्रविधि १९. विलेपनविधि २०. शयनविधि २१. आर्या २२. प्रहेलिका २३. मागधिका २४. गाथा २५. गीतिका २६. श्लोक २७. हिरण्ययुक्ति २८. सुवर्णयुक्ति २९. गन्धयुक्ति ३०. चूर्णयुक्ति ३१. आभरणविधि ३२. तरुणीप्रतिकर्म ३३. स्त्रीलक्षण ३४. पुरुषलक्षण ३५. हयलक्षण ३६. गजलक्षण ३७. गोलक्षण ३८. कुक्कुटलक्षण ३९. चक्रलक्षण ४०. छत्रलक्षण ४१. चर्मलक्षण ४२. दंडलक्षण ४३. असिलक्षण ४४. मणिलक्षण ४५. काकणिलक्षण ४६. वास्तुविद्या ४७. स्कंधारमाण, ४८. नगरमाण ४९. वास्तुनिवेशन ५०. व्यूह-प्रतिव्यूह ५१. चार-प्रतिचार ५२. चक्रव्यूह ५३. गरुडव्यूह ५४. शकटव्यूह ५५. युद्ध ५६. नियुद्ध ५७. युद्धातियुद्ध ५८. मुष्टियुद्ध ५९. बाहुयुद्ध ६०. लतायुद्ध ६१. 'इसत्थं छरुप्पवाह'-इषु-शस्त्र, क्षुर-प्रवाह, ६२. धनुर्वेद ६३. हिरण्यपाक ६४. सुवर्णपाक ६५. वट्टखेडु-वृत्त खेल ६६. सुत्तखेडु-सूत्र-खेल ६७. नालियाखेडु-नालिका-खेल ६८. पत्तच्छेद्य ६९. कुडवच्छेद्य ७०. सजीव ७१. निर्जीव और ७२. शकुनरुत-ये बहत्तर कलाएँ सिखायेंगे ।

विवेचन - तत्कालीन शिक्षा-पद्धति के तीन अंग बताये हैं । स्मृति के लिये सूत्रात्मक पद्धति से, समझ के विकस के लिये व्याख्यात्मक पद्धति से और दक्षता के लिए प्रयोगात्मक पद्धति से शिक्षा दी जाती थी ।

सिक्खावित्ता अम्मापिडुं उवणेहिडुं । तए णं तस्स दढपडुण्णस्स दारगस्स अम्मापियरो तं कलायरियं विउलेणं असणपाणखाडुमसाडुमेणं वत्थगंधमल्लालं-कारेण य सक्कारेहिंति-सम्माणोहेंति । सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता विपुलं जीवियारिहं पीडुदाणं दलइस्सइ । जाव दलइत्ता पडिविसजेहिंति ।

भावार्थ - तब कलाचार्य उसे माता-पिता के पास ले जायेंगे । तब उस 'दढपडुण्ण' के माता-पिता उन कलाचार्य का विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, गन्ध, माल्य और अलंकार से सम्मान करेंगे-सत्कार करेंगे । यावत् जीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान देंगे । फिर विसर्जन करेंगे ।

तएणं से दढपडुण्णे दारए बावत्तरिकलापंडिए णवंगसुत्त-पडिबोहिए अट्टारसदेसीभासाविसारए गीवरइं गंधव्वणट्ट-कुसले हयजोही गयजोही रहजोही बाहुजोही बाहुप्पमदी वियालचारी साहसिए अलं भोगसमत्थे यावि भविस्सइ ।

भावाथ - तब वह बहत्तर कला में पण्डित, सुप्त नव अंगों की जागृति वाला, अठारह देश की भाषा में विशारद, संगीत-प्रेमी, गन्धर्व-नाट्य में कुशल, हय(घोड़ा), गज(हाथी) रथ और बाहुयुद्ध का कुशल योद्धा, बाहुओं से प्रमर्दन करने वाला, विकालचारी-रात्रि में भी भ्रमण करने में निर्भय और साहसिक 'दढपइण्ण' बालक पूर्णतः भोगानुभव करने की शक्ति वाला होगा।

विवेचन - 'नवांग सुप्तप्रतिबोधित' अर्थात् दो कान, दो आँखें, दो घ्राण-नाक, एक जिह्वा, एक त्वचा और एक मन-ये नव अंग, जो बाल अवस्था के कारण सोये हुए-से-अव्यक्त चेतना वाले थे वे जागृत-यौवन से व्यक्त चेतना वाले हुए।

तएणं दढपइण्णं दारगं अम्मापियरो बावत्तरि-कलापंडियं जाव अलं भोगसमत्थं वियाणित्ता, विउलेहिं अण्णभोगेहिं पाणभोगेहिं लेणभोगेहिं वत्थभोगेहिं सयणभोगेहिं उवणिमंतेहिंति ।

भावाथ - तब माता-पिता 'दढपइण्ण' बालक का बहत्तर कला में पण्डित यावत् पूर्ण भोग-समर्थ जान कर, विपुल अन्नभोग-अन्नादि खाने योग्य भोग्य पदार्थ, पानभोग-पानी आदि पीने योग्य पदार्थ, लयनभोग-गृह आदि निवास योग्य पदार्थ, वस्त्रभोग-वस्त्र आदि पहनने योग्य पदार्थ और शयनभोग-शय्या आदि सोने-आराम करने योग्य पदार्थ में जोड़ेंगे।

तएणं से दढपइण्णे दारए तेहिं विउलेहिं अण्णभोगेहिं जाव सयणभोगेहिं णो सज्जिहिइ, णो रज्जिहिइ, णो गिञ्झिहिइ, णो मुञ्झिहिइ णो अञ्जोववज्जिहिइ ।

भावाथ - वह 'दढपइण्ण' बालक अन्न आदि भोगों में संग-सम्बन्ध स्थापित नहीं करेगा, राग-रज्जित नहीं होगा, अप्राप्त भोगों की आकांक्षा नहीं करेगा और अत्यन्त लीन नहीं होगा।

से जहा णामए उप्पले इ वा, पउमे इ वा, कुसुमे इ वा, णलिणे इ वा, सुभगे इ वा, सुगंधे इ वा, पोंडरीए इ वा, महापोंडरीए इ वा, सयपत्ते इ वा, सहस्सपत्ते इ वा, सयसहस्सपत्ते इ वा, पंके जाए, जले संवुद्धे णोवलिप्पइ पंकरएणं, णोवलिप्पइ जलरएणं, एवमेव 'दढपइण्णे' वि दारए कामेहिं जाए, भोगेहिं संवुद्धे, णोवलिप्पिहिइ-कामरएणं, णोवलिप्पिहिइ भोगरएणं, णोवलिप्पिहिइ मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरिजणेणं ।

भावाथ - जैसे उत्पल-नीलकमल, पद्म-पीत कमल, कुसुम-रक्त कमल, नलिन-कुछ कुछ लाल-गुलाबी कमल, सुभग-सुनहरा कमल, सुगन्ध-नील कमल अथवा हरा कमल, पुण्डरीक-सफेद कमल, महापुण्डरीक, शतपत्र-सौ पंखड़ी वाला कमल, सहस्रपत्र हजार पंखड़ी वाला कमल और शतसहस्रपत्र-लाख पंखड़ी वाला, कीचड़ में उत्पन्न हुए और जल में वृद्धि पाए, किन्तु लिप्त नहीं होते हैं, पंक-रज-कीचड़ के सूक्ष्म कणों से-लिप्त नहीं होते हैं जलरज-जल कण से। वैसे ही वह 'दढपइण्ण' बालक भी काम में उत्पन्न हुआ और भोगों में पला, किन्तु लिप्त नहीं होगा कामरज-शब्द

और रूपरूपी रज से, लिप्त नहीं होगा, भोगरज-गंध, रस और स्पर्श रूप रज से और लिप्त नहीं होगा मित्र, सजातीय, भाई-बेटे-णियग, स्वजन-मामा आदि, सम्बन्धी-श्वसुरादि और परिजन-दासी-दास आदि में।

से णं तहारूवाणं थेराणं अंति ए केवलं बोहिं बुञ्झिहिइ। बुञ्झित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिइ।

भावार्थ - वह तथारूप-जिन आज्ञावर्ती स्थविरों के समीप विशुद्ध सम्यग्-दर्शन-केवलबोधि का अनुभव करेगा यावत् फिर गृहवास से निकलकर अनगार बनेगा।

से णं भविस्सइ अणगारे भगवंते इरियासमि ए जाव गुत्त-बंधयारी। तस्स णं भगवंतस्स एणं विहारेणं विहरमाणस्स अणंते अणुत्तरे णिव्वाघाए णिरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुप्पज्जिहिइ।

भावार्थ - वे अनगार भगवन्त हलन-चलन में यतनावान् यावत् ब्रह्मचर्य के रक्षक नियमों से युक्त ब्रह्मचारी-गुप्त-ब्रह्मचारी होंगे। ऐसी चर्या से विचरने वाले उन भगवन्त को अनन्त पदार्थों को विषय बनाने वाला-अनन्त, सर्वश्रेष्ठ-अनुत्तर, किसी भी प्रकार की रुकावट-भीत आदि या ओट में रहे हुए पदार्थों को भी जानने में समर्थ-णिव्वाघाय, आवरण से रहित, सकल अर्थों का ग्राहक-कसिण और अपने समस्त अंशों से युक्त-पडिपुण्ण श्रेष्ठ केवल समस्त निर्मल आत्म-प्रदेशों के द्वारा स्वतः ही होने वाला-ज्ञान-विशेष अवबोध और केवल दर्शन-सामान्य अवबोध उत्पन्न होगा।

तए णं से दढपइण्णे केवली बहूइं वासाइं केवलिपरियागं पाउणिहिइ। पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेएत्ता, जस्सट्टाए कीरइ णग्गभावे मुंडभावे अणहाणाए अदंतवणाए केसलोए बंधचेरवासे अच्छत्तगं अणोहवाहणगं भूमिसेज्जा फलहसेज्जा कट्टसेज्जा परधरपवेसो-लद्धावलद्धं परेहिं हीलणाओ खिंसणाओ णिंदणाओ गरहणाओ तज्जणाओ तालणाओ परि-भवणाओ पव्वहणाओ उच्चावया गामकंटगा बावीसं परीसहोवसग्गा अहियासिज्जंति, तमट्टमाराहित्ता चरिमेहिं उस्सासणिस्सासेहिं सिञ्झिहिइ, बुञ्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिणिव्वाहिइ, सव्वदुक्खाणमंतं करेहिइ ॥ १४ ॥

भावार्थ - वे 'दढपइण्ण' केवली बहुत वर्षों तक केवली अवस्था में विचरेंगे। फिर एक महीने की संलेखना के द्वारा अपने में आपको लीन करके अथवा अपने से ही आपको सेवित करके, भोजन के साठ भक्तों को बिना खाये-पीये ही काटकर, जिस लक्ष्य के लिए नग्नभाव स्वीकार किया था। मुण्डभाव—क्रोधादि दस प्रकार के मुण्डन को, अस्नान, अदन्तवन-दांत नहीं धोना, केशलोच-बालों को उखाड़ना, ब्रह्मचर्यवास-बाह्य-आभ्यन्तर आत्मसाधना, छत्र धारण नहीं करना, जूते नहीं पहनना,

भूमिशय्या, फलकशय्या, काष्ठशय्या और परघर में प्रवेश-जहाँ चाहे आहार मिला या नहीं मिला अथवा सम्मान सहित मिला या अपमान सहित मिला, हीलना—जन्म और कर्म के सम्बन्ध में तिरस्कार, निन्दना-मन के द्वारा घृणा, खिंसना-लोगों के समक्ष घृणा, गर्हणा-अपने समक्ष ही बहुत से व्यक्तियों के बीच अपनी निंदा होना, तर्जना—अंगुली आदि बताते हुए या चटखाते हुए 'जानता है रे जाल्म !' इत्यादि कहना, ताडना—चपेटादि से पिटाई, परिभवना-पराभव, प्रव्यथना-लोगों के द्वारा उत्पन्न किये गये भय, इन्द्रियों के लिये उत्कृष्टतर दुःखकर बाईस परीषह-संयम मार्ग में चलते हुए आने वाले कष्ट और उपसर्गों-देवादि कृत सङ्कट को सहन कर, उस लक्ष्य की आराधना करके, अन्तिम उच्छ्वास-निःश्वास में सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, मुक्त होंगे, परिनिर्वृत्त होंगे और सब दुःखों का अन्त करेंगे।

प्रत्यनीक का यावत् उपपात

४१ - से जे इमे गामागर जाव सण्णिवेसेसु पव्वइया समणा भवंति । तं जहा-
आयरियपडिणीया उवज्जाय-पडिणीया कुलपडिणीया गणपडिणीया, आयरिय-
उवज्जायाणं अयसकारगा अवण्णकारगा अकित्ति-कारगा ।

भावार्थ - वे जो ग्राम आदि में प्रव्रजित श्रमण होते हैं। जैसे-आचार्य के प्रत्यनीक-विरोधी, उपाध्याय के प्रत्यनीक, कुल के प्रत्यनीक और गण के प्रत्यनीक, आचार्य-उपाध्याय का अपयश करने वाले और अनादर करने वाले।

बहूहि असम्भावुम्भावणाहि मिच्छत्ताभिणिवेसेहि य अप्पाणं च परं च तदुभयं
च वुग्गाहेमाणा वुप्पाए-माणा विहरित्ता, बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणंति ।

भावार्थ - वे-आचार्यादि के विरोधी असद्भाव के आरोपण अथवा उत्पादन और मिथ्याभिनिवेश के द्वारा अपने को, दूसरों को और स्व-पर को बुरी बात की पकड़-असत्य हठाग्रह में लगाते हुए-असद्भाव-अनहोनी बातों की आरोपण-कल्पना में मजबूत बनाते हुए, विचरण करके बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन करते हैं।

पाउणित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइय-अपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा
उक्कोसेणं लंतए कप्पे देव-किब्बिसिएसु देवकिब्बिसियत्ताए उववत्तारो भवंति । तहिं
तेसिं गई जाव तेरस सागरोवमाइं ठिई जाव अणाराहगा । सेसं तं चेव ॥ १५ ॥

भावार्थ - श्रमण पर्याय का पालन करके उन दोषों का आलोचन-प्रतिक्रमण किये बिना ही, काल के समय में काल करके, उत्कृष्ट लान्तककल्प—छट्टे स्वर्ग में देवकिल्बिषिकों-चाण्डाल तुल्य देवों में किल्बिषिक-साफ-सफाई करने वाले देव रूप से उत्पन्न होते हैं। उनकी स्थिति तेरह सागरोपम की होती है। वे परलोक के आराधक नहीं होते हैं। शेष पूर्ववत्।

संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिकों का उपपात

से जे इमे सण्णपंचिंदियतिरिक्खजोणिया पज्जत्तया भवंति । तं जहा-जलयरा खहयरा थलयरा ।

भावार्थ - ये जो संज्ञी-मन वाले पञ्चेन्द्रिय-पांचों इन्द्रियों वाले तिर्यञ्च योनिक-पशु आदि पर्याप्तक होते हैं । जैसे-जलचर, खेचर और स्थलचर ।

तेसि णं अत्थेगइयाणं सुभेणं परिणामेणं, पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं तथावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहावूहमग्गणगवेसणं करेमाणणं सण्णीपुव्वजाइसरणे समुप्पज्जइ ।

भावार्थ - उनमें से कई जीवों को शुभ परिणाम, प्रशस्त अध्यवसाय और विशुद्ध लेश्या से तदावरणीय-पूर्वजन्म की स्मृति के आवारक कर्मों का क्षयोपशम होने से, पदार्थों को जानने में प्रवृत्त हुई बुद्धि और पदार्थों का निश्चयात्मक ज्ञान कराने वाली बुद्धि के द्वारा वस्तु के स्वकीय धर्मों के अस्तित्व और परकीय धर्मों के नास्तित्व रूप हेतु से, वस्तु तत्त्व का निर्णय करते हुए, मन वाले जीव के रूप में किये हुए पहले के भवों की स्मृति रूप जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होता है ।

तए णं ते समुप्पण्णजाइसरणा समाणा सयमेव पंचाणुव्वयाइं पडिवज्जंति । पडिवज्जित्ता बहूहिं सीलव्वय-गुणवेरमण-पच्चक्खाणपोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणा बहूइं वासाइं आउयं पालेंति ।

भावार्थ - तब जातिस्मरण ज्ञान के उत्पन्न होने पर, स्वयं ही पांच अणुव्रतों को स्वीकार करते हैं । स्वीकार करके बहुत-से शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से आत्मा को भावित करते हुए, बहुत वर्षों की आयुष्य का पालन करते हैं ।

पालित्ता भत्तं पच्चक्खंति । बहूइं भत्ताइं अणसणाए छेयंति । छेइत्ता आलोइय-पडिवक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा, उक्कोसेणं सहस्सारे कप्पे देवत्ताए उववत्तारो भवंति । तहिं तेसिं गई जाव अट्टारस सागरोवमाइं ठिईं पण्णत्ता । परलोगस्स आराहगा । सेसं तं चेव ॥ १६ ॥

भावार्थ - बहुत वर्षों तक आयुष्य का पालन करके भक्त का प्रत्याख्यान करते हैं । प्रत्याख्यान करके ब्रह्म से भोजन के भक्तों का छेदन करते हैं और दोषों की आलोचना प्रतिक्रमण करके, समाधि को प्राप्त करते हैं और काल के समय में काल करके, उत्कृष्ट सहस्रारकल्प-आठवें स्वर्ग में देव रूप से उत्पन्न होते हैं । उनके अठारह सागरोपम की स्थिति होती है । वे परलोक के आराधक होते हैं । शेष पूर्ववत् ।

आजीविक मत के अनुयायियों का उपपात

से जे इमे गामागर जाव सण्णिवेसेसु आजीविया भवंति। तंजहा-दुघरंतरिया तिघरंतरिया सत्तघरंतरिया उप्पलबेण्टिया घरसमुदाणिया विज्जुअंतरिया उट्टियासमणा।

भावार्थ - ये जो ग्राम यावत् सन्निवेशों में आजीविक गोशालक मतानुयायी होते हैं। जैसे-एक घर से भिक्षा लेकर, बीच में दो घरों को छोड़कर भिक्षा लेने वाले, तीन घर के अन्तर से भिक्षा लेने वाले, सात घर के अन्तर से भिक्षा लेने वाले, नियम विशेष से कमलडंठल की भिक्षा लेने वाले, प्रत्येक घर पर भिक्षाटन करने वाले, बिजली चमकने पर भिक्षा-ग्रहण नहीं करने वाले और मिट्टी के बड़े भाजन में प्रविष्ट होकर तप करने वाले।

ते णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा बहूइं वासाइं परियायं पाउणित्ता, कालमासे कालं किच्चा, उक्कोसेणं अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववत्तारो भवंति। तहिं तेसिं गई जाव बावीसं सागरोवमाइं ठिई। अणाराहगा। सेसं तं चेव ॥ १७ ॥

भावार्थ - वे इस प्रकार की चर्या से बहुत वर्षों की पर्याय-अवस्था को पालकर, काल के समय में काल करके, उत्कृष्ट अच्युत कल्प-बारहवें स्वर्ग में देव रूप से उत्पन्न होते हैं। उनकी बावीस सागरोपम की स्थिति होती है। वे परलोक के आराधक नहीं होते हैं। शेष पूर्ववत्।

अत्तुक्कोसिय.....उपपात

से जे इमे गामागर जाव सण्णिवेसेसु पव्वइया समणा भवंति। तं जहा-अत्तुक्कोसिया परपरिवाइया भूइकम्मिया भुज्जो भुज्जो कोउयकारगा।

भावार्थ - ये जो ग्राम यावत् सन्निवेशों में प्रव्रजित श्रमण होते हैं। जैसे-आत्मोत्कर्षिक-अपना ही उत्कर्ष बतलाने वाले, पर-परिवादिक-दूसरों के निन्दक, भूतिकर्मिक-ज्वरादि से पीड़ितों की उपद्रव से रक्षा के लिये भूति-भभूत-भस्मि देने वाले और बार-बार कौतुक-सौभाग्यादि के निमित्त की जाने वाली क्रिया विशेष करने वाले।

ते णं एयारूवेणं विहारेणं विहरमाणा बहूइं वासाइं सामण्ण-परियागं पाउणंति। पाउणित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइय अपडिक्कंता, कालमासे कालं किच्चा, उक्कोसेणं अच्चुए कप्पे आभिओगेसु देवेसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति। तहिं तेसिं गई जाव बावीसं सागरोवमाइं ठिई परलोगस्स अणाराहगा। सेसं तं चेव ॥ १८ ॥

भावार्थ - वे इस चर्या से विचरते हुए, बहुत वर्षों की श्रमण अवस्था को पालते हैं और पालन करके उन दोष-स्थानों की आलोचना-प्रतिक्रमण किये बिना ही, काल के समय में काल करके, उत्कृष्ट अच्युतकल्प में आभियोगिक-सेवक जाति देवों में देव रूप से उत्पन्न होते हैं। उनकी बाईस सागरोपम की स्थिति होती है। वे परलोक के आराधक नहीं होते हैं। शेष पूर्ववत्।

विवेचन - उन श्रमणों के देवत्व का कारण चारित्र्य है और सेवकता का कारण आत्मोत्कर्ष आदि है।

निहवों का उपपात

से जे इमे गामागर जाव सणिवेसेसु णिणहगा भवंति। तं जहा-बहुरया, जीवपएसिया, अव्वत्तिया, सामुच्छेइया, दोकिरिया, तेरासिया, अबद्धिया।

भावार्थ - ये जो ग्राम सन्निवेशों में निहव-जिनोक्त धर्म के अपलापक होते हैं। जैसे-१. बहुरत-अनेक समयों के द्वारा ही कार्य की निष्पत्ति मानने वाले, २. जीवप्रादेशिक-एक प्रदेश भी न्यून हो वह जीव नहीं होता है, अतः जिस एक-प्रदेश की पूर्णता से जीव, जीव रूप से माना जाता है, वही एक-प्रदेश जीव है ऐसा मानने वाले ३. अव्यक्तिक-समस्त जगत् अव्यक्त है-ऐसा मत मानने वाले ४. सामुच्छेदिक-नरकादि भावों का प्रतिक्षण क्षय होता है-ऐसे मत को मानने वाले ५. द्वैक्रिया-एक समय में दो क्रिया का अनुभव होना मानने वाले ६. त्रैराशिक-जीव, अजीव और नो जीव रूप तीन राशियों के मानने वाले और ७. अबद्धिक-जीव कर्म से सर्पकंचुकिवत् स्पृष्ट है, क्षीर-नीरवत् बद्ध नहीं-ऐसे मत के मानने वाले।

इच्चेते सत्त पवयणणिणहगा केवलं-चरियालिंग-सामण्णा मिच्छदिट्ठी बहूहिं असम्भावुम्भावणाहिं मिच्छत्ताभिणिवेसेहिं च अप्पाणं च परं च तदुभयं च वुग्गाहेमाणा वुप्पाएमाणा विहरित्ता, बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणंति।

भावार्थ - ये सात प्रवचन के अपलाप, चर्या और लिंग की अपेक्षा से साधु के तुल्य-किन्तु मिथ्यादृष्टि, बहुत-से असद्भाव के उत्पादन और मिथ्यात्व के अभिनिवेश के द्वारा स्वयं को, दूसरों को और स्व-पर को झूठे आग्रह में लगाते हुए-असत् आशय में दृढ़ बनाते हुए, बहुत वर्षों तक साधु अवस्था में रहते हैं।

पाउणित्ता कालमासे कालं किच्चा, उक्कोसेणं उवरिमेसु गेवेजेसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति। तहिं तेसिं गई जाव एक्कतीसं सागरोवमाइं ठिई। परलोगस्स अणाराहगा। सेसं तं चेव।

भावार्थ - फिर काल के समय में काल करके, उत्कृष्ट ऊपरी ग्रैवेयक में देव रूप से उत्पन्न

होते हैं। वहाँ उनकी एकतीस सागरोपम की स्थिति होती है। वे परलोक के आराधक नहीं होते हैं। शेष पूर्ववत्।

विवेचन - ये निहववाद क्रमशः जमाली, तिष्यगुप्त, आषाढाचार्य के शिष्य, अश्वमित्र, गंगाचार्य, रोहगुप्त और गोष्ठामाहिल से उत्पन्न हुए थे। जमाली को छोड़ कर, शेष निहवों का आविर्भाव भगवान् महावीर देव के निर्वाण के पश्चात् हुआ था। निहवों की क्रिया आदि जिनशासन के अनुसार ही होती है। किन्तु सिद्धान्त के किसी एकदेश को लेकर वे हठाग्राही-मिथ्याभिनवेशी बन जाते हैं।

नोट - इन सात निहवों का तथा दिगम्बर मत प्रवर्तक वोटिक नामक आठवें निहव का वर्णन विस्तार के साथ विशेषावश्यक भाष्य और हरिभद्रीयाआवश्यक में दिया गया है। इनके मत की उत्पत्ति तथा शंका-समाधान आदि का बहुत ही रोचक वर्णन है, जिसका हिन्दी अनुवाद श्री जैन सिद्धांत बोल संग्रह बीकानेर के दूसरे भाग में बोल नं. ५६१ पृष्ठ ३४२ से ४११ तक में दिया गया है। जिज्ञासुओं को वहाँ देखना चाहिये।

प्रतिविरत-अप्रतिविरत अल्पआरंभी..... का उपपात

से जे इमे गामागर जाव सणिवेसेसु मणुया भवन्ति। तं जहा-अप्पारंभा अप्परिगहा धम्मिया धम्माणुया धम्मिद्धा धम्मक्खाई धम्मप्लोइया धम्मपलज्जणा धम्म-समुदायारा धम्मेणं चव वित्तिं कप्पेमाणा, सुसीला सुव्वया सुप्पडियाणंदा।

भावार्थ - ये जो ग्राम यावत् सन्निवेशों में मनुष्य होते हैं। जैसे-अल्प आरम्भ करने वाले, अल्प परिग्रही, धार्मिक-श्रुत-चारित्र रूप धर्म के धारक, धर्मानुग-धर्म का अनुसरण करने वाले, धर्मोप धर्म को ही इष्ट मानने वाले, धर्माख्यायी-धर्म का कथन करने वाले, धर्मप्रलोकी-धर्म को ही उपादेय मानने वाले, धर्मप्ररञ्जक-धर्म के रंग में रंगे हुए, धर्मसमुदाचार-धर्म रूप सदाचार वाले, श्रुत और चारित्र धर्म से अवरुद्ध भाव के द्वारा आजीविका का उपार्जन करने वाले, सुशील, सुव्रत-सद्व्रती और सुप्रत्यानन्द-शुभभाव के सेवन में सदा प्रसन्न चित्त रहने वाले।

साहूहि एगच्चाओ पाणाइवायाओ पडिविरया जावजीवाए, एगच्चाओ अपडिविरया। एवं जाव परिगहाओ। एगच्चाओ कोहाओ माणाओ मायाओ लोहाओ पेजाओ दोसाओ कलहाओ अब्भक्खाणाओ पेसुण्णाओ परपरिवायाओ अरइरइओ मायामोसाओ मिच्छादंसणसल्लाओ पडिविरया जावजीवाए, एगच्चाओ अपडिविरया।

भावार्थ - वे साधुओं के पास में जीवन भर के लिए अंशतः स्थूल प्राणातिपात का त्याग करते हैं, देश से त्याग नहीं करते हैं। इसी प्रकार यावत् स्थूल परिग्रह का परिमाण करते हैं। अंशतः क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परपरिवाद, रति अरति, मायामषा और मिथ्यादर्शनशल्य

से मन, वचन और काया से त्याग करते हैं और देश से त्याग नहीं करते हैं। जीवनभर के लिए और अंशतः नहीं हटाते हैं।

विवेचन- 'साहूँ' पदकी संयोजना पूर्ववर्ती 'सुष्यडियाणंदा' पद से भी हो सकती है और उत्तरवर्ती 'एगच्चाओ....' आदि पदों से भी हो सकती है। पूर्ववर्ती पद से संयोजित होने पर यह अर्थ होगा- 'साधुओं के प्रति अत्युत्तम भावना रखने वाले।'

मिथ्यादर्शन से जन्य अन्ययूथिकों के प्रति वन्दनादि की क्रिया। उनसे भाव से तो विरत है। किन्तु राजाभियोगादि के कारण अविरत हैं। वस्तुतः देखा जाय तो श्रमणोपासक त्याग की दृष्टि से तो सभी सावद्यादि क्रियाओं को त्याज्य ही समझता है। किन्तु निवृत्त होने में शक्त्यनुसार ही प्रवृत्त होता है। अपनी अंशतः अनिवृत्ति में, वह स्वकीय आत्मिक दुर्बलता का ही अनुभव करता है। अर्थात् दृष्टि में तो पूर्णतः विशुद्धि है, किन्तु प्रवृत्ति में नहीं। अंशतः क्रिया-निवृत्ति में भी वही दृष्टि-विशुद्धि कार्य कर रही है। जो सूत्रकार ने 'विरया' शब्द के स्थान पर 'पडिविरया' शब्द का प्रयोग किया है, इसमें यही रहस्य प्रतीत होता है।

**एगच्चाओ आरंभसमारंभाओ पडिविरया जावजीवाए, एगच्चाओ अपडिविरया।
एगच्चाओ करणकारावणाओ पडिविरया जावजीवाए, एगच्चाओ अपडिविरया।
एगच्चाओ पयणपयावणाओ पडिविरया जावजीवाए, एगच्चाओ पयणपयावणाओ
अपडिविरया।**

भावार्थ - अंशतः आरंभ-समारंभ से जीवनभर के लिए क्रिया-निवृत्त होते हैं और अंशतः अनिवृत्त। अंशतः करने-कराने से पचन-पचावन से निवृत्त होते हैं-जीवनभर के लिए और अंशतः अनिवृत्त।

**एगच्चाओ कोट्टणपिट्टणतज्जणतालणवहबंध-परिकिलेसाओ पडिविरया
जावजीवाए, एगच्चाओ अपडिविरया। एगच्चाओ ण्हाणमहणवण्णगविलेवण-
सहफरिसरसरूवगंधमल्लालंकाराओ पडिविरया जावजीवाए, एगच्चाओ अपडिविरया।**

भावार्थ - अंशतः कुट्टन अर्थात् कूटना, पिट्टन-मुद्गरादि से पीटना, तर्जन-उपालंभ देना, ताडन-चपेटादि से मारना, वध-मारना, बन्ध-रस्सी आदि से बांधना और परिक्लेश-बाधाउत्पादन से जीवनभर के लिए और स्नान, मर्दन, वर्णक, विलेपन, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध, माल्य और अलङ्कार से जीवनभर के लिए निवृत्त होते हैं और अंशतः निवृत्त नहीं होते हैं।

**जेयावण्णे तहप्पगारा सावज्जजोगोवहिया कम्मंता पर-पाणपरियावणकरा
कज्जंति, तओ वि जाव एगच्चाओ अपडिविरया। तं जहा-समणोवासगा भवंति।**

भावार्थ - और भी इस प्रकार निन्द-पापात्मक क्रिया से युक्त-सावद्ययोग और कूड़-कपट के

प्रयोजन से युक्त-औपधिक कर्मांश व्यापार-जो दूसरों के प्राणों को कष्ट कर हो-करते हैं, उनसे यावत् अंशतः अनिवृत्त हैं। जैसे कि-श्रमणोपासक होते हैं।

अभिगयजीवाजीवा उवलद्धपुण्णपावा आसव-संवरणिज्जर-किरियाअहिगरणबंधमोक्खकुसला।

भावार्थ - वे जीव और अजीव के स्वरूप को अनेक दृष्टियों से समझे हुए, पुण्य और पाप के अन्तर-रहस्य को पूर्णतः पाये हुए और आस्रव-आत्मा में कर्म-आगमन के मार्ग, संवर-कर्म-प्रवाह को रोकने के उपाय, निर्जरा-देशतः कर्म-क्षय, क्रिया-शरीरादि की प्रवृत्ति या प्रवृत्ति से अनिवृत्ति, अधिकरण-संसार के आधार या खड्गादि का निर्वर्तन और संयोजन, बन्ध-जड़-चेतन के मिश्रण की प्रक्रिया और मोक्ष-चेतन से जड़ का वियोग समस्त कर्मों का क्षय-में कुशल होते हैं।

असहेज्जाओ देवासुरणागसुवण्णजक्खरक्खस्स-किण्णरकिं पुरिसगरुल-गंधव्वमहोरगाइएहिं देवगणेहिं णिगंथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जा।

भावार्थ - वे श्रमणोपासक धर्म जनित सामर्थ्य के अतिशय से देव आदि की सहायता की इच्छा नहीं रखते हैं। अथवा अपने द्वारा किये हुए शुभ और अशुभ कर्मों का फल आत्मा स्वयं ही भोगता है। अतएव वे दूसरों की सहायता की इच्छा नहीं रखते हैं। ऐसी उनकी मानसिक दृढ़ता होती है। वे देव-वैमानिक देव, असुर-नागकुमार-भवनपति जाति के देव, सुवर्ण-ज्योतिष्क देव, यक्ष-राक्षस-किन्नर-किंपुरुष-व्यन्तर जाति के देव, गरुड-सुवर्णकुमार, गन्धर्व-महोरग-व्यन्तर देव विशेष आदि देवगणों के द्वारा निर्ग्रन्थ-प्रवचन से विचलित नहीं होते हैं।

णिगंथे पावयणे णिस्संक्रिया णिक्कंखिया णिव्वि-तिगिच्छा, लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा अभिगयट्ठा विणिच्छियट्ठा अट्ठिमिंजपेम्माणुरागरत्ता-‘अयमाउसो ! णिगंथे पावयणे अट्ठे, अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठे।’

भावार्थ - निर्ग्रन्थ-प्रवचन में निःशङ्कित होते हैं, वे अन्य दर्शन के आडम्बर को देखकर उधर आकर्षित नहीं होते हैं और वे करणी के फल के प्रति संदेह रहित होते हैं। वे लब्धार्थ-अर्थ को पाये हुए, गृहीतार्थ-अर्थ को धारे हुए, पृष्ठार्थ-प्रश्न पूछकर अर्थ को जाने हुए, अभिगतार्थ-अर्थ को अनेक दृष्टियों से जाने हुए और विनिश्चितार्थ-अर्थ में पूर्णतः निश्चयात्मक बुद्धि रखने वाले होते हैं। उनकी अस्थि-मज्जा तक निर्ग्रन्थ-प्रवचन के प्रेमानुराग से रंगी हुई होती है। यह उनका अन्तर्घोष है कि-‘हे आयुष्मन् ! यह जड़-चेतन की ग्रन्थियों को खोलने वाला प्रवचन ही अर्थ-सार, जीवन-लक्ष्य का साधक है, यही परमार्थ-चरम सत्य, उपकार-प्रायण है और शेष-सुखकर लगने वाले पदार्थ, उनको पाने की साधना, कुप्रावचन आदि अनर्थ-व्यर्थ या हानिकर है।

विवेचन - मार्ग की सत्यता का सन्देह, अन्य मार्ग का आकर्षण और कार्य की सफलता में

डगमगाता हुआ विश्वास साधना के नाशक और अवरोधक हैं। मार्ग की सत्यता की प्रतीति, अन्यत्र आकर्षण का अभाव और उसकी सफलता का दृढ़ निर्णय साधना के उत्पादक, प्रेरक और पोषक हैं।

लब्धादि पदों के द्वारा बुद्धि के विविध रूपों का निर्देश किया गया है। बुद्धि के संग्राहात्मक, धारणात्मक, जिज्ञासात्मक, प्रदेशात्मक और व्यवसायात्मक कार्य का वर्णन है। बुद्धि के इन विविध रूपों से क्रियाशील होने पर ही साधना में सच्ची प्रीति और मुस्तदी की प्राप्ति हो सकती है।

‘निर्ग्रन्थ प्रवचन ही अर्थ है, परमार्थ है, शेष अनर्थ है’-यह अन्तर्जल्प ही साधना की रीढ़ का कार्य करता है। वे अन्य को प्रेरित करने के लिए भी यही उद्घोष करते हैं।

**ऊसियफलिहा अवंगुयदुवारा चियत्तंतेउरघरदारप्पवेसा चउइसट्टुमुहिट्टुपुण्ण-
मासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा, समणे णिगगंथे फासुएसणिज्जेणं
असणपाणाखाइमसाइमेणं वत्थपडिग्गह-कंबलपायपुंछणेणं ओसह-भेसज्जेणं
पडिहारएणं च पीढफलगसेजासंथारएणं पडिलाभेमाणा विहरंति।**

भावार्थ - वे साफ स्फटिक के समान निर्मल चित्त वाले और कपाट से द्वार को बन्द नहीं रखने वाले अर्थात् सद्दर्शन के लाभ के कारण कहीं भी पाषण्डियों से नहीं डरने वाले-शोभनमार्ग के परिग्रहण के कारण निर्भय होते हैं। लोगों के अन्तःपुर, गृह या द्वार में उनका प्रवेश प्रीतिकर होता है अर्थात् अति-धार्मिकता के कारण सर्वत्र अनाशङ्कनीय होते हैं अर्थात् उन पर किसी प्रकार की शंका नहीं की जाती है। वे चतुदर्शी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णिमा के दिन प्रतिपूर्ण पौषध-आत्मा की पुष्टि के लिए आहार, अब्रह्म आदि चार तरह के त्याग की एक दिन-रात की साधना-का विशेष शुद्धिपूर्वक पुनः पुनः पालन करते हुए, श्रमण-निर्ग्रन्थ के लिए निर्दोष और ग्रहण करने योग्य अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, औषध-एक द्रव्याश्रित वस्तु यथा- सूट आदि भैषज्य-अनेक द्रव्यों की समुदाय रूप वस्तु यथा त्रिफलादि, काम हो जाने पर पुनः लौटा दिये जाने योग्य-पडिहारिय आसन, पाट, निवास स्थान और संस्तारक को प्रतिलाभित करते-देते हुए विचरण करते हैं।

विवेचन - ‘ऊसिय...पवेसी’ इन तीन पदों का उपर्युक्त अर्थ वृद्ध व्याख्या के अनुसार है। अन्य व्याख्या-‘ऊसिय’.....अर्गला से रहित गृहद्वार वाले अर्थात् अतिशय दानी होने के कारण भिक्षुओं के प्रवेश में कोई रुकावट नहीं थी। ‘अवंगुय....’ औदार्य के कारण उनके घर के द्वार सदा खुले रहते थे। ‘चियत्त’..... वे दूसरों के घरों में और यहाँ तक कि राजा के अन्तःपुर में भी चले जाते तो उन पर किसी प्रकार की शंका या अविश्वास नहीं किया जाता था।

विहरित्ता भत्तं पच्चक्खंति। ते बहूइं भत्ताइं अणसणाए छेदिंति। छेदित्ता आलोइय पडिक्कंता समाहिपत्ता, कालमासे कालं किच्चा, उक्कोसेणं अच्युए

कप्ये देवत्ताए उववत्तारो भवंति। तेहिं तेसिं गई जाव बावीसं सागरोवमाइं ठिई।
आराहया। सेसं तहेव ॥ २० ॥

भावार्थ - फिर आहारादि का त्याग करते हैं। बहुत से भोजन के भक्तों को बिना खाये-पीये काटते हैं।आलोचना प्रतिक्रमण करके, समाधि को प्राप्त होते हैं। काल के समय में काल करके उत्कृष्ट अच्युत कल्प-बारहवें स्वर्ग में देवरूप से उत्पन्न होते हैं। उनकी बाइस सागरोपम की स्थिति होती है। वे जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा आराधक होते हैं। शेष पूर्ववत्।

अनारम्भी.....का उपपात

से जे इमे गामागर जाव सणिवेसेसु मणुया भवंति। तं जहा-अणारंभा
अपरिग्गहा धम्मिया जाव कप्येमाणा सुसीला सुव्वया सुपडियाणंदा साहू सव्वाओ
पाणाइवायाओ पडिविरया जाव सव्वाओ परिग्गहाओ पडिविरया। सव्वाओ कोहाओ
माणाओ मायाओ लोभाओ जाव मिच्छादंसणसल्लाओ पडिविरया।

भावार्थ - ये जो ग्राम-नगर यावत् सन्निवेशों में मनुष्य होते हैं। जैसे - अहिंसक अर्थात् आरम्भ के सर्वथा त्यागी, अपरिग्रही, श्रुतचारित्र धर्म के धारक यावत् धर्मानुसार ही वृत्ति करने वाले सुन्दर शील वाले, सुन्दर व्रतों वाले शुभभाव के सेवन में सदा प्रसन्न-उत्साह युक्त, साधु-आत्मभाव की साधना में तल्लीन-जो सर्वथा प्राणातिपात के त्यागी यावत् सर्वथा परिग्रह के त्यागी यावत् सर्वतः क्रोध, मान, माया लोभ यावत् मिथ्यादर्शनशल्य तक सभी पापों के त्यागी होते हैं।

सव्वाओ आरंभसमारंभाओ पडिविरया। सव्वाओ करण-कारावणाओ पडिविरया।
सव्वाओ पयण-पयावणाओ पडिविरया। सव्वाओ कुट्टणपिट्टणतज्जण-
तालणवहबंधपरिकिलेसाओ पडिविरया। सव्वाओ पहाणमहणवण्णगविलेवण
सहफरिसरसरूवगंध-मल्लालंकाराओ पडिविरया। जेयावण्णे तहप्पगारा
सावज्जजोगोवहिया कम्मंता परपाण परियावणकरा कज्जंति, तओ वि पडिविरया
जावज्जीवाए।

भावार्थ - सर्वथा आरम्भ, समारम्भ के त्यागी होते हैं और दूसरों से करने-कराने और अनुमोदन के त्यागी होते हैं तथा पचन-पचावन (पकाने-पकवाने) से कूटने-पीटने, तिरस्कार करने, मार मारने, वध करने, बांधने और दुःखित करने या बाधा-उत्पन्न करने के सर्वथा त्यागी होते हैं तथा स्नान, मर्दन, वर्णक-उबटन, विलेपन, शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध, माल्य और अलङ्कार से निवृत्त हो चुके हैं और भी जो प्राप्त होने वाले इसी प्रकार के दूसरों के प्राणों को परितप्त करने वाली पाप क्रिया से युक्त और कूड-कपटादि आवेश से जन्य कर्मांशों को करते हैं-उनसे भी वे जीवन भर के लिए निवृत्त होते हैं।

से जहा णामए अणगारा भवंति-इरियासमिया भासासमिया जाव इणमेव णिगंथं पावयणं पुरओ काउं विहरंति। तैसि णं भगवंताणं एणं विहारेणं विहरमाणाणं अत्थेगइयाणं अणंते जाव केवलवरणाण-दंसणे समुप्पज्जइ।

भावार्थ - जैसे कि कोई-यथानामक अनगर होते हैं-ईर्यासमिति में अर्थात् चलने, फिरने में, भाषा में यत्नवान्... यावत् निर्ग्रन्थ-प्रवचन को ही सन्मुख रखते हुए या दृष्टि के आगे रखकर, विचरण करते हैं। इस प्रकार की चर्या से विचरण करते हुए उन भगवन्तों में से कुछ को अनन्त अनुत्तर केवलज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न होता है।

ते बहूइं वासाइं केवलिपरियागं पाउणंति। पाउणित्ता भत्तं पच्चक्खंति। जाव पच्चक्खित्ता बहूइं भत्ताइं अणसणाइं छेदंति। छेदित्ता जस्सट्टाए कीरइ णग्गभावे जाव अंतं करंति।

भावार्थ - वे बहुत वर्षों तक केवली अवस्था में विचरण करते हैं। फिर भात-पानी का त्याग करते हैं। बहुत से भोजन के भक्तों को निराहार रहकर काट देते हैं। फिर वे जिस अर्थ के लिए देह के साज-संवार से विरक्त बने थे। यावत् उस अर्थ को पाकर सब दुःखों का अन्त कर देते हैं।

जेसिं पि य णं एगइयाणं णो केवलवरणाणदंसणे समुप्पज्जइ, ते बहूइं वासाइं छउमत्थपरियागं पाउणंति। पाउणित्ता आबाहे उप्पण्णे वा अणुप्पण्णे वा भत्तं पच्चक्खंति। ते बहूइं भत्ताइं अणसणाए छेदंति। छेदित्ता जस्सट्टाए कीरइ णग्गभावे जाव तमट्टुमाराहित्ता चरिमेहिं ऊसासणीसासेहिं अणंतं अणुत्तरं णिव्वाघायं णिरावरणं कसिणं पडिपुण्णं केवलवरणाणदंसणं उप्पाडिंति। तओ पच्छा सिञ्झिंहिति जाव अंतं करेहिंति।

भावार्थ - और कइयों को केवलज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न नहीं होता है। वे बहुत वर्षों तक छंदस्थ-कर्मावरण से युक्त अवस्था में विचरण करते हैं। फिर किसी रोगादि बाधा के उत्पन्न होने या नहीं होने पर भात-पानी को त्याग देते हैं। बहुत से भोजन के भक्तों को निराहार.....बिताकर, जिस ध्येय से धारण किया था-नग्न भाव उस ध्येय की आराधना करके, अन्तिम श्वास-निःश्वास में अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न और प्रतिपूर्ण केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त करते हैं। उसके बाद सिद्ध होंगे यावत् दुःखों का नाश करेंगे।

विवेचन - केवलज्ञान-केवलदर्शन उत्पन्न होने के बाद जीव उसी भव में मोक्ष चला जाता है। इसलिए मूल पाठ में 'सिञ्झिंहिति जाव अंतं करेहिंति' के स्थान पर 'सिञ्झंति जाव अंतं करंति' उचित लगता है, किन्तु मूल प्रति में वैसा ही पाठ है इसलिए यह भविष्यत् कालीन पाठ ही रखा है।

प्रश्न - छद्मस्थ किसे कहते हैं ?

उत्तर - छद्मनि अर्थात् घातिकर्मणि तिष्ठति इति छद्मस्थः ।

अर्थ - छद्म शब्द से यहाँ पर घाती कर्मों का ग्रहण किया है। आत्मा के गुणों का घात करने वाले कर्मों को घातीकर्म कहते हैं-वे चार हैं- यथा-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय। ये चार घातीकर्म जिस जीव के क्षय नहीं हुए हैं, उसे छद्मस्थ कहते हैं।

एगच्चा पुण एगे भयंतारो पुव्वकम्मावसेसेणं कालमासे कालं किच्चा, उक्कोसेणं सव्वट्टुसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववत्तारो भवंति । तहिं तेसिं गई तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई । आराहगा । सेसं तं चेव ॥ २१ ॥

भावार्थ - पुनः कोई एक अनगार भगवन्त भविष्य में एक ही मनुष्य देह को धारण करने वाले क्षीण होते हुए कर्मों में से शेष रहे हुए कर्मों के कारण, उत्कृष्ट सर्वार्थसिद्ध महाविमान में देवरूप से उत्पन्न होते हैं। वहाँ उनकी तैतीस सागरोपम की स्थिति होती है। वे जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा के आराधक होते हैं। शेष पूर्ववत्।

सर्वकामविरत का उपपात

से जे इमे गामागर जाव सण्णिवेसेसु मणुया भवंति । तं जहा-सव्वकामविरया सव्वरागविरया सव्वसंगातीता सव्वसिणेहाइक्कंता अक्कोहा णिक्कोहा खीणक्कोहा जाव एवं माण माया लोहा, अणुपुव्वेणं अट्टकम्म-पयडीओ खवित्ता उप्पिं लोयग-पइट्टाणा हवंति ॥ २२ ॥

भावार्थ - ये जो ग्राम यावत् सन्निवेशों में मनुष्य होते हैं। जैसे-समस्त शब्दादि विषयों से निवृत्त या उनमें उत्सुकता से रहित, विषयाभिमुखता के कारण रूप समस्त आत्म-परिणाम विशेष से निवृत्त, सभी जगत्-सम्बन्धों से परे रहे हुए, सम्बन्धों के हेतु रूप समस्त स्नेह के त्यागी, क्रोध को विफल करने वाले क्रोध का उदय ही नहीं होने देने वाले, क्रोध को क्षीण कर देने वाले इसी प्रकार मान, माया, लोभ को भी क्षीण कर देने वाले क्रमशः आठ कर्म प्रकृतियों को क्षय करके ऊपर लोकाग्रह पर स्थित हो जाते हैं अर्थात् सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो कर मोक्ष में चले जाते हैं।

विवेचन - क्रोधोदय के निमित्त कारणों के मिलने पर क्रोध का उदय हो चुका है, किन्तु किन्हीं उपायों से उसे बाहर प्रकट होने से रोक दिया जाता है, वह अक्रोध है। निमित्त कारणों के मिलने पर, उनसे दूर हट कर या अन्यमनस्कता-प्रसन्नतादि के भाव या ऐसै ही किसी उपाय के द्वारा क्रोध का उदय ही नहीं होने देना-निष्क्रोध है। अनुप्रेक्षादि के समय, अन्तर-समरांगण में क्रोध निःशेष कर देना-क्रोध क्षय है। चारित्रमोहनीय कर्म के अन्य प्रकारों का भी इसी प्रकार क्षय होता है। ऐसा समझ लेना चाहिये।

केवलिसमुद्घात के पुद्गल

४२- अणगारे णं भन्ते ! भाविअप्पा केवलि-समुग्घाएणं समोहणित्ता केवलकप्पं लोयं फुसित्ता णं चिट्ठइ ?-हंता चिट्ठइ ।

भावार्थ - हे भन्ते ! भावित आत्मा अनगार केवलिसमुद्घात (मुक्ति के निकट अधिकारी आत्मा के कर्मों की साम्यावस्था के लिये होने वाली एक विशिष्ट प्रकार की स्वाभाविक आत्मिक प्रक्रिया) से समवहत होकर, सम्पूर्ण लोक को स्पर्श करके, स्थित रहते हैं ?-हाँ ! स्थित रहते हैं ।

विवेचन - जीव-परिणति या अध्यवसाय विशेष से आत्म-प्रदेश संकुचित विस्तृत होकर कर्म-प्रदेशों को झाड़ देते हैं-उसे समुद्घात कहते हैं । जैसे कि-पक्षी अपने पंखों पर लगी हुई धूलि या जल की बूंदें उन्हें फैला कर सिकोड़ कर झाड़ देते हैं ।

से णूणं भन्ते ! केवलकप्पे लोए तेहिं णिज्जरा पोग्गलेहिं फुडे ? - हंता फुडे ।

भावार्थ - हे भन्ते ! क्या उन खिरे हुए पुद्गलों से सम्पूर्ण लोक व्याप्त हो जाता है ? - हाँ व्याप्त हो जाता है ।

छउमत्थे णं भन्ते ! मणुस्स तेसिं णिज्जरा पोग्गलाणं किंचि वण्णेणं वण्णं, गंधेणं गंधं, रसेणं रसं, फासेणं फासं जाणइ ? पासइ ?-गोयमा ! णो इणट्टे समट्टे ।

भावार्थ - हे भन्ते ! छद्मस्थ मनुष्य क्या उन निर्जरित हुए पुद्गलों के किञ्चित् वर्णरूप से वर्ण को, गन्धरूप से गन्ध को, रस रूप से रस को, स्पर्श रूप से स्पर्श को जानता और देखता है ? -

- हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् छद्मस्थ मनुष्य उन निर्जरा के पुद्गलों को नहीं जानता और नहीं देखता है ।

से केणट्टेणं भन्ते ! एवं वुच्चइ-छउमत्थे णं मणुस्से तेसिं णिज्जरा पोग्गलाणं णो किंचि वण्णेणं वण्णं जाव जाणइ पासइ ?

भावार्थ - हे भन्ते ! आप यह किस आशय से कहते हैं, कि छद्मस्थ मनुष्य उन निर्जरा के पुद्गलों को नहीं जानता और नहीं देखता है ।

गोयमा ! अयं णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वद्दीवसमुद्घाणं सव्वब्भंतरए सव्वखुड्डाए, वट्टे तेल्लपूयसंठाणसंठिए, वट्टे रह चक्कवालसंठाणसंठिए, वट्टे पुक्खरकणिया-संठाणसंठिए, वट्टे पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए, एक्कं जोयणसयसहस्सं, आयामविक्खंभेणं, तिण्णिण जोयण-सयसहस्साइं सोलससहस्साइं, दोण्णिण य सत्तावीसे जोयणसए, तिण्णिण य कोसे अट्टावीसं च धणुसयं, तेरस य अंगुलाइं, अब्दंगुलियं च किंचि विसेसाहिए । परिकखेवेणं पण्णत्ते ।

भावार्थ - हे गौतम ! यह जम्बूद्वीप, सभी द्वीप समुद्रों के बिलकुल बीचोबीच सबसे छोटा जम्बूद्वीप, तेलपुये-तैल में तले हुए मालपूये के समान गोल, रथ के पहिये के समान गोल, कमल के बीजकोश के समान गोल, पूर्णचन्द्राकार के समान गोल आकार वाला, एक लाख-योजन का लम्बा-चौड़ा, तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्तावीस योजन, तीन कोश, एक सौ अट्ठाईस धनुष्य, साढ़े तेरह अंगुल और कुछ अधिक परिधि वाला है।

देवें णं महिड्डीए महजुइए महब्बले महाजसे महासुक्खे महाणुभावे सविलेवणं गंधसमुग्गयं गिणहइ। गिण्हत्ता तं अवदालेइ। अवदालित्ता जाव इणामेव-त्तिकट्टु केवलकप्पंजंबूद्दीवंतिहिंअच्छराणिवाएहिंसत्तखुत्तोअणुपरियट्टित्ताणंहव्वमागच्छेज्जा, से णूणं गोयमा ! से केवलकप्पे जंबुद्दीवे दीवे तेहिं घाणपोग्गलेहिं फुडे ?-हंता फुडे।

भावार्थ - महा ऋद्धि वाला, महाद्युति वाले, महाबली महायशस्वी महासौख्य का धारक और महानुभाव देव, विलेपन के सुगन्धित द्रव्य से भरे हुए डिब्बे को लेकर खोलता है। खोल कर तीन बार चुटकी बजाने जितने काल में इक्कीस बार सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की परिक्रमा करके जल्दी आवे तो हे गौतम ! क्या सम्पूर्ण जम्बूद्वीप उस सुगन्धित द्रव्य से व्याप्त हो जाता है ?-हाँ भगवन् ! सारा जंबूद्वीप उस सुगन्धित द्रव्य से व्याप्त हो जाता है।

छउमत्थे णं गोयमा ! मणुस्से तेसिं घाणपोग्गलाणं किंचि वण्णेणं वण्णं जाव जाणइ ? पासइ ? भगवं ! णो इणट्टे समट्टे। से तेणट्टेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-छउमत्थे णं मणुस्से तेसिं णिज्जरापोग्गलाणं णो किंचि वण्णेणं वण्णं जाव जाणइ-पासइ। एए सुहुमाणं ते पोग्गला पण्णत्ता।

भावार्थ - हे गौतम ! छद्मस्थ मनुष्य उस सुगन्धित द्रव्य को क्या जानता है ? देखता है ? हे भगवन् ! यह संभव नहीं है। हे गौतम ! इसी कारण से कहा है कि-छद्मस्थ मनुष्य उन निर्जरित हुए पुद्गलों के वर्णादि को नहीं जानता है, नहीं देखता है। क्योंकि वे पुद्गल सूक्ष्म होते हैं।

समणाउसो ! सब्वलोयं पि य णं ते फुसित्ता णं चिट्ठंति।

भावार्थ - और हे आयुष्मन् श्रमणो ! वे पुद्गल सम्पूर्ण लोक का स्पर्श करके स्थिर रहते हैं।

केवलि समुद्घात का कारण

कम्हा णं भंते ! केवली समोहणंति ? कम्हा णं केवली समुद्घायं गच्छंति ?

भावार्थ - हे भगवन् ! केवली किस कारण से समुद्घात करते हैं अर्थात् आत्म-प्रदेशों को फैलाते हैं ? - किस कारण से फैले हुए आत्म-प्रदेशों की स्थिति को प्राप्त होते हैं ?

दिवेचन-प्रश्न-केवली भगवान् केवली समुद्घात जानबूझ कर करते हैं या स्वाभाविक हो जाती है ?

उत्तर - कुछ लोग ऐसा कह देते हैं कि, केवली समुद्घात स्वाभाविक हो जाती है किन्तु यह कथन आगम सम्मत नहीं है। क्योंकि ठाणांग सूत्र के आठवें ठाणे में और समवायांग सूत्र के आठवें समवाय में तथा पणवणा सूत्र आदि दूसरे आगमों में कहा है- 'पढमे समए दंडं करेइ' अर्थात्-केवली भगवान् पहले समय में आत्म प्रदेशों को चौदह राजू परिमाण लंबाई में दंड की तरह दंड कर देते हैं। दूसरे समय में कपाट कर देते हैं, तीसरे समय में मंथान के समान कर देते हैं और चौथे समय में सम्पूर्ण लोक को भर देते हैं और इसी उलटे क्रम से वापिस प्रतिसंहरण कर लेते हैं। यहाँ मूल पाठ में 'करेइ' शब्द दिया है जिसका अर्थ होता है-करते हैं, किन्तु 'भवइ' अर्थात् स्वाभाविक हो जाती है ऐसा शब्द नहीं दिया है। निष्कर्ष यह है कि केवली भगवान् केवली समुद्घात जान बूझ कर करते हैं।

प्रश्न - केवली समुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर - अर्न्तमुहूर्त्त में मोक्ष प्राप्त करने वाले केवली भगवान् के समुद्घात को केवली समुद्घात कहते हैं, वह वेदनीय नाम और गोत्र कर्म को विषय करता है।

प्रश्न-क्या सभी केवली भगवान् केवली समुद्घात करते हैं ?

उत्तर - नहीं, सभी केवली भगवान् केवली समुद्घात नहीं करते हैं, किन्तु जिस केवली को छह महीने या छह महीने से कम आयुष्य बाकी रहते केवल ज्ञान होता है, वे केवली समुद्घात करते हैं। इस विषय में पूज्य बहुश्रुत महापुरुषों की धारणा तो इस प्रकार है कि-उन केवली भगवन्तों में से कुछ केवली भगवन्त् समुद्घात करते हैं और कुछ नहीं करते हैं। क्योंकि अन्तर्मुहूर्त्त में मोक्ष प्राप्त करने वाले केवली जिनके वेदनीय, नाम और गोत्र कर्म की स्थिति तो अधिक है और आयु कर्म की स्थिति थोड़ी रह गई है, वे केवली वेदनीय आदि कर्मों की स्थिति को आयु कर्म की स्थिति के बराबर करने के लिए केवली समुद्घात करते हैं।

गोयमा ! केवलीणं चत्तारि कम्मंसा अपलिक्खीणा अवेइया अणिज्जिण्णा भवंति । तं जहा-वेयणिज्जं आउयं णामं गोत्तं । सव्वबहुए से वेयणिज्जे कम्मे भवइ । सव्वत्थोवे से आउए कम्मे भवइ । विसमं समं करेइ बंधणेहिं ठिइंहि य । विसमसमकरणयाए बंधणेहिं ठिइंहि य एवं खलु केवली समोहणंति । एवं खलु केवली समुद्घायं गच्छंति ।

भावार्थ - हे गौतम ! केवलियों के चार कर्मांश सम्पूर्णतः क्षीण नहीं होते हैं, वेदित नहीं होते हैं, निर्जित नहीं होते हैं वे चार कर्म ये हैं। जैसे-वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र। सबसे अधिक वेदनीय कर्म होता है और सबसे कम आयुष्य कर्म होता है। बन्धन-प्रदेश बन्ध और अनुभाग बन्ध और स्थिति से विषम उन कर्मों को सम करते हैं। इस प्रकार केवली विषम कर्मों को सम करने के लिए समुद्घात करते हैं-समुद्घात को प्राप्त करते हैं।

सव्वे वि णं भंते ! केवली समुद्घायं गच्छंति ? - णो इणट्टे समट्टे ।

अकित्ता णं समुग्घायं, अणंता केवली जिणा ।

जरामरणविष्यमुक्का, सिद्धिं वरगइं गया ॥ १ ॥

भावार्थ - हे भन्ते ! क्या सभी केवली भगवान् केवली समुद्घात करते हैं ? हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् सभी केवली भगवान् केवली समुद्घात नहीं करते हैं । क्योंकि-

बिना किये समुद्घात, अनन्ता केवली जिन ।

हो जन्म-मृत्यु से मुक्त, सिद्धि सुगति को गये ॥

केवली समुद्घात के बिना ही अनन्त केवली जन्म-मरण के दुःखों से रहित होकर सिद्धि गति को प्राप्त हुए हैं ।

आवर्जीकरण का स्वरूप

कइ समइए णं भंते ! आउज्जीकरणं पण्णत्ते ? - गोयमा ! असंखेज्जसमइए अंतोमुहुत्तिए पण्णत्ते ।

भावार्थ - हे भन्ते ! आवर्जीकरण कितने समय का होता है ? हे गौतम ! असंख्यात समय के अन्तर्मुहूर्त्त का होता है ।

विवेचन - उदीरणावलिका में कर्म के प्रक्षेप की क्रिया को आवर्जीकरण कहते हैं । अर्थात् अपनी आत्मा को मोक्ष के सन्मुख करना आवर्जीकरण कहलाता है ।

केवली समुग्घाए णं भंते ! कइ समइए पण्णत्ते ? गोयमा ! अट्टसमइए पण्णत्ते ।

भावार्थ - हे भन्ते ! केवलि-समुद्घात कितने समय की होती है ? हे गौतम ! आठ समय की होती है ।

तं जहा-पढमे समए दंडं करेइ । बिइए समए कवाडं करेइ । तईए समए मंथं करेइ । चउत्थे समए लोयं पूरेइ । पंचमे समए लोयं पडिसाहरइ । छट्ठे समए मंथं पडि-साहरइ । सत्तमे समए कवाडं पडिसाहरइ । अट्टमे समए दंडं पडिसाहरइ । तओ पच्छा सरीरत्थे भवइ ।

भावार्थ - पहले समय में ऊँचे और नीचे लोकान्त तक अपने जीवप्रदेशों को, ज्ञानाभोग-ज्ञान द्वारा होने वाली जानकारी से अपने शरीर जितने मोटे, दण्डाकार बनाते हैं । दूसरे समय में दण्डवत् बने हुए आत्मप्रदेशों को किवाड़ की तरह आजुबाजु पूर्वापर दिशा में फैलाते हैं । तीसरे समय में कपाटवत् बने हुए आत्म-प्रदेशों को दक्षिण-उत्तर दिशा में फैलाते हैं-जिससे मथानी जैसा आकार हो जाता है । चौथे समय में लोक-शिखर सहित मन्थान के आंतरों को पूरते हैं । पांचवें समय में मन्थान के आंतरों के पूरक लोक-आत्म-प्रदेशों को संहत करते हैं । अर्थात् मन्थानवत् कर देते हैं । छट्टे समय में मन्थानवत्-दक्षिणोत्तर दिशावर्ती आत्म-प्रदेशों को मंद्गत करके कपाटवत् कर देते हैं । सातवें समय में कपाटवत्-

पूर्व-पश्चिमवर्ती-आत्म-प्रदेशों को संहत करके, दण्डस्थ करते हैं और आठवें समय में दण्डवत्-ऊपर-नीचे-वर्ती आत्म-प्रदेशों को संहत करते हैं। इसके बाद शरीरस्थ हो जाते हैं अर्थात् समुद्घात करने से पहले जैसा मौलिक शरीर था वैसा हो जाते हैं।

से णं भन्ते ! तहा समुद्घायं गए किं मणजोगं जुंजइ ? वयजोगं जुंजइ ? कायजोगं जुंजइ ? गोयमा ! णो मणजोगं जुंजइ । णो वयजोगं जुंजइ । कायजोगं जुंजइ ।

भावार्थ - हे भन्ते ! समुद्घात को प्राप्त केवली क्या मानसिक क्रिया करते हैं ? या वाचिक क्रिया करते हैं ? या कायिक क्रिया करते हैं ? हे गौतम ! मानसिक क्रिया नहीं करते हैं। किन्तु कायिक क्रिया करते हैं अर्थात् मन योग और वचन योग को नहीं रोकते हैं परन्तु काय योग को रोकते हैं।

कायजोगं जुंजमाणे किं ओरालियसरीरकायजोगं जुंजइ ? आरोलियमिस्स सरीरकायजोगं जुंजइ ? वेउव्विय सरीरकायजोगं जुंजइ ? वेउव्वियमिस्ससरीरकायजोगं जुंजइ ? आहारग-सरीरकायजोगं जुंजइ आहारगमिस्स-सरीरकायजोगं जुंजइ ? कम्मग सरीरकायजोगं जुंजइ ?

भावार्थ - हे भगवन् ! कायिक क्रिया करते हुए अर्थात् काय योग को करते हुए क्या औदारिक शरीर-शेष पुद्गलों की अपेक्षा स्थूल पुद्गलों से बने हुए शरीर-से कायिक क्रिया करते हैं ? या औदारिक मिश्र शरीर-कर्मण और औदारिक दोनों शरीरों से एक साथ-से या वैक्रिय शरीर-विशिष्ट कार्य करने में सक्षम सूक्ष्म पुद्गलों से बने हुए शरीर से या वैक्रियमिश्र-कर्मण या औदारिक से मिश्रित वैक्रिय-शरीर से या आहारक-विशिष्ट तर पुद्गलों से निष्पन्न शरीर से या आहारकमिश्र-औदारिक से मिश्रित आहारक शरीर से या कर्मण-शरीर से कायिक क्रिया करते हैं ? अर्थात् काययोग का प्रयोग करते हैं।

गोयमा ! ओरालियसरीरकायजोगं जुंजइ । ओरालियमिस्स-सरीरकायजोगं पि जुंजइ । णो वेउव्वियसरीरकायजोगं जुंजइ । णो वेउव्वियमिस्स-सरीरकायजोगं जुंजइ । णो आहारगसरीर कायजोगं-जुंजइ । णो आहारगमिस्ससरीरकायजोगं जुंजइ । कम्मग-सरीरकायजोगं पि जुंजइ ।

भावार्थ - हे गौतम ! औदारिक शरीर से कायिक क्रिया करते हैं और औदारिक मिश्र शरीर से भी कायिक क्रिया करते हैं। वैक्रिय शरीर से, वैक्रिय मिश्र शरीर से, आहारक शरीर से और आहारकमिश्र शरीर से कायिक क्रिया नहीं करते हैं। कर्मण शरीर से भी कायिक क्रिया करते हैं।

पढमट्टमेसु समएसु ओरालियसरीरकायजोगं जुंजइ । विइयछट्टुसत्तमेसु समएसु ओरालियमिस्ससरीरकाय जोगं जुंजइ । तईयचुत्थपंचमेहिं कम्मगसरीरकायजोगं जुंजइ ।

भावार्थ - पहले और आठवें समय में औदारिक शरीर से कायिक क्रिया करते हैं। दूसरे, छठे

और सातवें समय में औदारिक मिश्र शरीर से कायिक क्रिया करते हैं और तीसरे, चौथे और पांचवें समय में कार्मण शरीर से कायिक क्रिया करते हैं।

समुद्घात के बाद की योग प्रवृत्ति

से णं भंते ! तहा समुद्घायगए सिञ्जइ? बुञ्जइ? मुच्चइ? परिणिव्वाइ?
सव्वदुक्खाणमंतं करेइ?—णो इणट्टे समट्टे।

भावार्थ - हे भन्ते ! क्या कोई समुद्घातगत-समुद्घात में स्थित रहते हुए ही सिद्ध होते हैं ? बुद्ध होते हैं ? मुक्त होते हैं ? परिनिर्वृत्त होते हैं ? सब दुःखों का अन्त करते हैं ? हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

से णं तओ पडिणियत्तइ। पडिणियत्तिता इहमागच्छइ। आगच्छित्ता तओ
पच्छा मणजोगं पि जुंजइ। वयजोगं पि जुंजइ। कायजोगं पि जुंजइ।

भावार्थ - उससे-समुद्घात से-प्रतिनिर्वृत्त होते हैं। यहाँ अर्थात् इस मनुष्यलोकगत शरीर में स्थित होते हैं। फिर मन की क्रिया भी करते हैं, वचन की क्रिया भी करते हैं और काया की क्रिया भी करते हैं।

मणजोगं जुंजमाणे किं सच्चमणजोगं जुंजइ? मोसमणजोगं जुंजइ? सच्चामोसमणजोगं
जुंजइ? असच्चामोसमणजोगं जुंजइ? - गोयमा ! सच्चमणजोगं जुंजइ। णो मोसमणजोगं
जुंजइ। णो सच्चामोसमणजोगं जुंजइ। असच्चामोसमण जोगं पि जुंजइ।

भावार्थ - मन की क्रिया में संलग्न होते हुए, क्या सत्य मन की क्रिया में या असत्य मन की क्रिया में या सत्यमृषा-सच-झूठ-मिश्र मन की क्रिया में या असत्य-अमृषा-न सच न झूठ-व्यवहार मन की क्रिया में संलग्न होते हैं ? हे गौतम ! सत्य मन की क्रिया करते हैं। असत्य मन की और सत्यमृषा मन की क्रिया नहीं करते हैं। असत्य-अमृषा मन की क्रिया भी करते हैं।

वयजोगं जुंजमाणे किं सच्चवइजोगं जुंजइ? मोसवइजोगं जुंजइ। सच्चामोसवइजोगं
जुंजइ? असच्चामोसवइजोगं जुंजइ। गोयमा ! सच्चवइजोगं जुंजइ। णो मोसवइजोगं
जुंजइ। णो सच्चामोसवइजोगं जुंजइ। असच्चामोसवइजोगं पि जुंजइ।

भावार्थ - वचन की क्रिया में प्रवृत्त होते हुए, क्या सत्य वचन या मृषा वचन या सत्यमृषा वचन या असत्य-अमृषा वचन योग की प्रवृत्ति करते हैं ?

हे गौतम ! सत्य वचन योग की प्रवृत्ति करते हैं। मृषा वचनयोग की और सत्य-मृषा वचन योग की प्रवृत्ति नहीं करते हैं। असत्य-अमृषा वचनयोग की भी प्रवृत्ति करते हैं।

विवेचन - मनःपर्यव ज्ञानी या अनुत्तर विमानवासी देवों के द्वारा मन से पूछे गये प्रश्नों का उत्तर

देने के लिये केवली भगवान् मनोयोग की प्रवृत्ति करते हैं और जीवादि पदार्थों की प्ररूपणा करते हुए सत्यवचनयोग की प्रवृत्ति करते हैं और आमंत्रणादि में असत्य-अमृषा वचन योग की प्रवृत्ति करते हैं।

कायजोगं जुंजमाणे आगच्छेज्ज वा चिट्ठेज्ज वा णिसीएज्ज वा तुयट्ठेज्ज वा उल्लंघेज्ज वा पल्लंघेज्ज वा, उक्खेवणं वा पक्खेवणं वा तिरियक्खेवणं वा करेज्जा, पाडिहारियं वा पीढफल्लग सेज्जासंधारगं पच्चप्पिणेज्जा ।

भावार्थ - काययोग की प्रवृत्ति करते हुए आते हैं, ठहरते हैं, बैठते हैं, सोते हैं, लांघते हैं, विशेष लांघते हैं, उत्क्षेपण-उछालना, अवक्षेपण-नीचे डालना और तिर्यक्क्षेपण-आजु-बाजु या आगे-पीछे रखना। अथवा ऊँची, नीची और तिरछी गति करते हैं और लौटाने योग्य आसन, पटिये, शय्या और संस्तारक लौटाते हैं।

विवेचन - केवलिसमुद्घात के पश्चात् अन्तर्मुहूर्त में योगनिरोध होता है।

केवलिसमुद्घात नियमतः किसे करना पड़ती है? - इस विषय में मतभेद है। यथा-
यो षाण्मासाधिकायुष्को, लभते केवलोद्गमम् ।

करोत्यसौ समुद्घातमन्ये कुर्वन्ति वा न वा ॥

- छह मास और छह मास से अधिक आयुष्य वाले को केवलज्ञान होने पर वे अवश्य समुद्घात करते हैं और छह महीने से न्यून आयुष्य वाले को केवलज्ञान होने पर, वे समुद्घात करते भी हैं और नहीं भी करते। - गुणस्थान क्रमाराह

आवश्यक निर्युक्ति से भी इसी कथन की पुष्टि होती है। यथा-

छम्मासाउ-सेसे, उप्पण्णं जेसिं केवलं णाणं ।

ते णियमा समुग्घाया, सेसा समुग्घाय भइयव्वा ॥

- किन्तु आवश्यक-चूर्णिकार का मन्तव्य, इससे बिलकुल विरुद्ध है। यथा-‘येऽन्तर्मुहूर्त्तमादिं, कृत्वोत्कर्षेण आमासेभ्यः षड्भ्यः आयुषोऽवशिष्टेभ्यः अभ्यन्तराविर्भूतं केवलज्ञानं पर्यायास्ते नियमात् समुद्घातं कुर्वन्ति। ये तु षड्मासेभ्यः उपरिष्ठादाविर्भूतकेवलज्ञानाः शेषास्ते समुद्घातबाह्याः। ते समुद्घातं न कुर्वन्ति-इत्यर्थः। अथवा अयमर्थः-शेषाः समुद्घातं प्रतिभाज्याः।’

- जो मनुष्य अन्तर्मुहूर्त से लगाकर, छह महीने जितना आयुष्य शेष रहने पर केवलज्ञान प्राप्त करें, तो अवश्य समुद्घात करते हैं। किन्तु जिन मनुष्यों को आयुष्य छह महीने से अधिक हो, वे केवलज्ञान प्राप्त करे तो समुद्घात से बाह्य हैं। अर्थात् वे समुद्घात नहीं करते हैं। अथवा शेष-छह महीने से अधिक आयुष्य वाले समुद्घात करते भी हैं और नहीं भी करते हैं।

यद्यपि निर्युक्ति की-‘छम्मासाउ सेसे.....’ इस गाथा का अर्थ चूर्णिकार के मतानुकूल भी हो सकता है। फिर भी दोनों पक्ष खड़े रहते ही हैं। अतः तत्त्व केवलिगम्य।

- प्रश्नोत्तर मोहनमाला प्रश्न ३७ का उत्तर पृ० १०५-१०८

योग-निरोध और सिद्धि

४३ - से णं भन्ते ! सजोगी सिञ्जइ जाव अंतं करेइ ? - णो इणट्टे समट्टे ।

भावार्थ - हे भन्ते ! क्या सयोगी केवली मन, वचन और काया से सक्रिय सिद्ध होते हैं ? यावत् सब दुःखों का अन्त करते हैं ? - हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् सयोगी केवली सिद्ध नहीं होते हैं ।

से णं पुव्वामेव सण्णिस्स पंचिंदियस्स पज्जत्तगस्स जहण्ण-जोगस्स (जोगिस्स) हेट्ठा असंखेज्जगुणपरिहीणं पढमं मणजोगं णिरुंभइ ।

भावार्थ - हे गौतम ! वे केवली भगवान् सबसे पहले पर्याप्तक संज्ञी पञ्चेन्द्रिय के जघन्य मनोयोग के नीचले स्तर से असंख्यात गुण हीन मनोयोग का निरोध करते हैं । अर्थात् योग-निरोध का आरंभ करने वाले केवली सब से पहले पर्याप्त संज्ञी पञ्चेन्द्रिय के अल्पतम मानसिक व्यापार के असंख्यातवें भाग जितने मनोव्यापार रहता है, शेष सब का निरोध कर देते हैं ।

तयाणांतरं च णं बेइंदियस्स पज्जत्तगस्स जहण्ण-जोगस्स हेट्ठा असंखेज्जगुणपरिहीणं बिइयं वयजोगं णिरुंभइ ।

भावार्थ - इसके बाद पर्याप्तक द्वीन्द्रिय जीव के जघन्य वचनयोग के नीचले स्तर से भी असंख्यात गुण हीन दूसरे वचनयोग का निरोध करते हैं । अर्थात् उस जीव की निम्नतम स्तरीय वाचिक प्रवृत्ति की असंख्यातवें भाग जितनी वाचिक प्रवृत्ति रहती है, शेष सब का निरोध कर देते हैं ।

तयाणांतरं च णं सुहुमस्स पणगजीवस्स अपज्जत्तगस्स जहण्ण-जोगस्स हेट्ठा असंखेज्जगुणपरिहीणं तइयं कायजोगं णिरुंभइ ।

भावार्थ - इसके पश्चात् अपर्याप्त सूक्ष्म पनक-फूलन-जीव के जघन्य योग के नीचले स्तर से असंख्यातगुण हीन तीसरे काययोग का निरोध करते हैं ।

से णं एएणं उवाएणं पढमं मणजोगं णिरुंभइ णिरुंभित्ता, वयजोगं णिरुंभइ । वयजोगं णिरुंभित्ता कायजोगं णिरुंभइ । कायजोगं णिरुंभित्ता जोगणिरुंभं करेइ ।

भावार्थ - इस उपाय से पहले मन योग को अर्थात् मन की क्रिया को रोक करके वचन की क्रिया को रोकते हैं । वचन की क्रिया को रोक कर काया की क्रिया का निरोध करते हैं और काया की क्रिया को रोक कर, योग-निरोध-मन वचन और काया से संबंधित होने वाली आत्मा की सभी प्रवृत्ति को रोक देते हैं ।

विवेचन - 'एएणं उवाएणं' शब्दों से यह अर्थ झलकता है कि-केवली तथा कथित-पर्याप्त

संज्ञी पञ्चेन्द्रिय द्वीन्द्रिय और अपर्याप्त पनक-जीवों की निम्नस्तरीय योग प्रवृत्ति के असंख्यातवें भाग जितनी रही हुई योग प्रवृत्ति को समय-समय में क्रमशः रोकते हुए, पूर्णतः योग-निरोध करते हैं। यथा-

पञ्चतमेत्त सण्णस्स, जत्तियाइं जहण्ण जोगिस्स।

होति मणोदव्वाइं, तव्वावारो य जम्मत्तो ॥

तदसंखगुण विहीणं, समए समए णिरुंभमाणो सो।

मणसो सव्वणिरुहं, करे असंखेज्ज समएहिं ॥

एवमन्यदपि सूत्रद्वयं नेयम् ।.....(टीकायां उद्धृतगाथे)।

- अर्थात् जघन्य योगी पर्याप्त संज्ञी की जितनी मनोद्रव्य की और मनोव्यापार की मात्रा होती है, उससे भी असंख्यात गुण हीन मात्रा में मन का समय समय पर निरोध करते हुए, केवली असंख्यात समय में मन का पूर्णतः निरोध कर देते हैं।

इसी प्रकार शेष दो सूत्रों के विषय में भी यह समझना चाहिए।

काययोग के निरोध के बाद तो योग निरोध हो ही जाता है, फिर अलग से योग-निरोध का कथन क्यों किया गया है ? - वीर्य के द्वारा योगों की प्रवृत्ति होती है। उस योग-प्रवृत्ति के मूल करणवीर्य का निरोध जहाँ तक नहीं होता है वहाँ तक पूर्णतः योग-निरोध नहीं माना जाता। उस करणवीर्य का निरोध भी अकरणवीर्य से हो जाता है। अर्थात् काययोग के निरोध के बाद केवली करणवीर्य से हटकर, अकरणवीर्य में पूर्णतः स्थित हो जाते हैं। संभवतः यही दर्शाने के लिए योग-निरोध और अयोगता का कथन अलग से हुआ है।

जोगणिरुहं करेत्ता अजोगत्तं पाउणंति। अजोगत्तं पाउणित्ता इसिं-हस्सपंचक्खरउच्चारणद्धाए असंखेज्जसमइयं अंतोमुहुत्तियं सेलेसिं पडिवज्जइ।

भावार्थ - योग निरोध करके अयोगी अवस्था को प्राप्त होते हैं। अयोगी अवस्था-मन, वचन और काया की क्रिया से रहित अवस्था को प्राप्त करके, ईषत्स्पष्ट पांच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण जितने काल की-असंख्यात समय के अन्तर्मुहूर्त्त के काल की-शैलेशी अवस्था को प्राप्त होते हैं।

विवेचन - अयोगी अवस्था के अलग-से कथन में यह भी रहस्य हो सकता है कि-जो आत्मपरिणति योग-निरोध के लिये प्रवृत्त हुई थी उसका भी, कार्य पूरा हो जाने के कारण शमन हो गया।

अ, इ, उ, ऋ और लृ ये पांच ह्रस्व अक्षर हैं। इनका न द्रुत न विलम्बित, किन्तु मध्यम उच्चारण ग्रहण किया गया है। कहा है -

हस्सक्खराइं मज्झेण जेण कालेण पंच भण्णंति।

अच्छइ सेलेसिगओ, तत्तियं मेत्तं तओ कालं ॥

अ, इ, उ, ऋ और लृ ये पांच ह्रस्व अक्षर हैं इनको जल्दी भी नहीं और बहुत विलम्ब करके भी

नहीं किन्तु मध्यम गति से उच्चारण करने में जितना समय लगे उतने समय तक शैलेशी अवस्था को प्राप्त होते हैं।

प्रश्न - शैलेशी अवस्था किसको कहते हैं ?

उत्तर - शैल का अर्थ है पर्वत और ईश का अर्थ है स्वामी अर्थात् पर्वतों का स्वामी। जम्बूद्वीप का मेरु पर्वत सब पर्वतों से ऊँचा है अर्थात् वह एक लाख योजन का ऊँचा है इसलिए उसे शैलेश कहते हैं, वह अडोल और अकम्प है, प्रलय काल की हवा और तूफान भी उसे कम्पित नहीं कर सकते हैं। इसी प्रकार केवली भगवान् भी जिस अवस्था में सर्वथा अडोल और अकम्प हो जाते हैं, उस अवस्था को शैलेशी अवस्था कहते हैं।

पुव्वरइयगुणसेढीयं च णं कम्मं तीसे सेलेसिमद्धाए असंखेज्जाहिं गुणसेढीहिं अणंते कम्मंसे खवेइ। वेयणिज्जाउयणाम-गुत्ते इच्चेते चत्तारि कम्मंसे जुगवं खवेइ।

भावार्थ - उस शैलेशी काल में पूर्व रचित-शैलेशी अवस्था से पहले रची गई गुण श्रेणी रूप में रहे हुए कर्मों को-असंख्यात गुण श्रेणियों में रहे हुए अनन्त कर्मों को क्षीण करते हैं। वेदनीय, आयुष्य, नाम और गोत्र इन चारों कर्मों का एक साथ क्षय करते हैं।

विवेचन - सामान्यतः कर्म, बहु, अल्प, अल्पतर और अल्पतम रूप से निर्जरा के लिये रचे जाते हैं, किन्तु जब परिणाम विशेष से, वे ही कालान्तर में वेद्य कर्म, अल्प, बहु, बहुतर और बहुतम रूप से, शीघ्रतर क्षय करने के लिये, रचे जाते हैं, तब वह रचना-प्रकार 'गुणश्रेणी' नाम से कहे जाते हैं। अर्थात् जहाँ गुण की वृद्धि से, असंख्यात गुणी निर्जरा समय-समय पर अधिक होती है, वह गुणश्रेणी है।

खवित्ता ओरालियतेयाकम्माइं सव्वाहिं विप्प-जहणाहिं विप्पजहइ। विप्पजहित्ता उज्जुसेढी पडिवण्णे अफुसमाणगई उड्डं एक्कसमएणं अविग्गहेणं गंता सागारोवउत्ते सिज्झइ।

भावार्थ - एक साथ क्षय करके, औदारिक, तैजस् और कार्मण इन तीन शरीरों को, अशेष विविध त्यागों के द्वारा त्याग देते हैं। फिर ऋजुश्रेणी-आकाश प्रदेशों की सीधी पंक्ति के आश्रित होकर, अपृश्यमानगति-अस्पृश्यदगति वाले सीधे एक समय में ऊँचे जाकर, साकारोपयोग-ज्ञानोपयोग में सिद्ध होते हैं।

विवेचन - प्रश्न - मूल पाठ में 'अफुसमाणगई' शब्द दिया है। इसका क्या अर्थ है ?

उत्तर - टीकाकार ने इसका अर्थ इस प्रकार किया है।

अस्पृशन्ती-सिद्धयन्तरालप्रदेशान् गतिर्यस्स सोऽस्पृशद्गतिः अन्तराल प्रदेशस्पर्शने हि नैकेन समयेन सिद्धिः, इष्यते च तत्रेक एव समयः, य एव चायुष्कादिकर्मणां क्षयसमयः स एवं निर्वाणसमयः अतोऽन्तराले समयान्तरस्याभावादन्तराल-प्रदेशानाम-संस्पर्शनमिति।

अर्थ - जिस जगह से जीव सिद्ध होता है वहीं से ऋजु गति के द्वारा सीधा मोक्ष में चला जाता है। वह एक समय की ऋजु गति है इसलिए बीच के आकाश प्रदेशों को स्पर्श नहीं करता है, क्योंकि आयुष्य आदि चार कर्मों का क्षय का समय और निर्वाण का समय एक है। इसलिए बीच में समय का अभाव होने से अन्तराल के आकाश प्रदेशों का स्पर्श भी नहीं होता है।

इसके आगे टीकाकार ने लिख दिया है कि -

‘सूक्ष्मश्चायमर्थःकेवलिगम्यो भावत् इति।’

यह विषय अति सूक्ष्म है इसलिए इसका रहस्य तो केवली भगवान् ही जानते हैं।

वहाँ स्थित सिद्ध का स्वरूप

ते णं तत्थ सिद्धा हवंति-सादीया अपज्जवसिया असरीरा जीवघणा दंसणणाणोवउत्ता णिट्ठियट्टा णिरेयणा णीरया णिममला वितिमिरा विसुद्धा सासयमणागयद्धं कालं चिट्ठंति।

भावार्थ - वहाँ लोकाग्रपर वे सिद्ध होते हैं। आदि सहित, अन्त रहित, शरीर रहित, जीवघन, ज्ञान और दर्शन रूप साकार और अनाकार उपयोग से युक्त सब प्रयोजनों से निवृत्त, कम्पन से रहित निश्चल, बद्धमान-रजरूप आते हुए कर्मों से रहित, पूर्वबद्ध कर्मों से मुक्त, अज्ञान से रहित और विशुद्ध-अमिश्रित शुद्ध जीव स्वरूप वाले होकर, अनागत अद्धाकाल भविष्य काल में शाश्वत-अविनश्वर रहते हैं।

विवेचन - कई अन्य मतावलम्बियों की सिद्ध स्थान विषयक मान्यता इस प्रकार है -

‘रागादि वासना से मुक्त सिद्धों की स्थिति का कोई नियत स्थान नहीं है। या ‘मुक्त व्योमवत् सर्वत्र स्थित रहते हैं।’ यथा-

रागादि वासना मुक्तं, चित्तमेव निरामयम्।

सदाऽनियत देशस्थं, सिद्ध इत्यभिधीयते ॥

अथवा - गुणसत्त्वान्तरज्ञानान्निवृत्त प्रकृति क्रियाः।

मुक्ताःसर्वत्र तिष्ठन्ति, व्योमवत्तापवर्जिताः ॥

सिद्धि-स्थान विषयक इन मान्यताओं का निराकरण करने के लिये ‘तत्थ’-तत्र-लोकाग्र पर शब्द का प्रयोग हुआ है।

कई शरीरधारियों को भी सिद्ध मानते हैं। यथा-

अणिमाद्यष्टविधं प्राप्यैश्वर्यं कृतिनःसदा।

मोदन्ते निर्वृतात्मानस्तीर्णाः परम दुस्तरम्

अन्य मत में आठ सिद्धियाँ मानी गई है। यथा-

अणिमा महिमा चैव, लघिमा गरिमा तथा।

प्राप्तिः प्राकाम्य मीशित्वं, वशित्वं चाष्ट सिद्धयः ॥

अर्थ - १. अणिमा - छोटे से छोटा हो जाना। परमाणु के समान २. महिमा - बड़े से बड़ा हो जाना। मेरु पर्वत के समान ३. लघिमा-हलके से हलका हो जाना। आकड़े की रुई के समान ४. गरिमा-भारी से भारी हो जाना। वज्र के समान। ५. प्राप्ति-इच्छा हो वहाँ प्राप्त हो जाना। जैसे कि जमीन पर बैठे हुए मेरु पर्वत पर हाथ फेर देना ६. प्राकाम्य-इच्छित वस्तु को प्राप्त कर लेना ७. ईशित्वं -ईश्वर पना-स्वामी पना ८. वशित्वं-सबको अपने वश में कर लेना।

इन आठ सिद्धियों को जो प्राप्त कर लेते हैं वे सिद्ध बन जाते हैं, कृतार्थ बन जाते हैं। कठिन संसार समुद्र को तिर कर पार हो जाते हैं। वे सदा निवृत्त हो जाने के कारण हमेशा प्रसन्न चित्त रहते हैं। ऐसा सिद्धों का स्वरूप है।

इस प्रकार के मत का खण्डन 'असरीरा' विशेषण से होता है जो जीव की सिद्धि नहीं मानते हैं और जो जीव की मुक्तावस्था मानकर भी पुनः लौटने वाला मानते हैं, उनके मतों का निषेध क्रमशः 'सादिया' और 'अपज्जवसिया' विशेषण से हो जाता है। 'जीव घणा' का अर्थ अन्तर रहित होने के कारण वे सिद्ध जीव प्रदेश मय रहते हैं। अन्त के शरीर की अवगाहना से सिद्ध अवस्था में योग निरोध काल में शरीर के छेदों के पूर्ण हो जाने से तीन भाग कम उनकी अवगाहना रहने से जीव प्रदेश घन हो जाते हैं। जो मुक्त अवस्था में चेतना और ज्ञानादि नहीं मानते हैं, उनके मत का निषेध 'दंसणणाणोवउत्ता' विशेषणों से होता है। जो सिद्ध आत्माओं का अनुकंपादि कारणों से पुनरवतार मानते हैं, उनका मत 'णिट्टियट्टा' विशेषण पद से निर्मूल हो जाता है। सिद्धों के परभाव के कर्तृत्व का निषेध 'णिरेयणा'- निरेजना शब्द से, पर से प्रभावित होने का निषेध 'णीरया' शब्द से, पर से आबद्ध होने का निषेध 'णिम्मला' पद से, किसी से छले जाने का एवं अज्ञान अंधकार का निषेध 'वित्तिमिरा' शब्द से और आत्मभाव में स्थिति का प्रतिपादन 'विसुद्धा' शब्द से होता है। बहुवचनान्त विशेषण इसलिए हैं कि- सिद्ध अनन्त हैं और स्वरूपतः एक-से होते हुए भी व्यक्तितः सब भिन्न हैं।

से केणट्टेणं भंते ! एवं वुच्चइ-तेणं तत्थ सिद्धा भवंति सादीया अपज्जवसिया जाव चिट्ठंति ?-गोयमा ! से जहाणामए बीयाणं अग्गिदट्ठाणं पुणरवि अंकुरुप्पत्ती ण भवइ । एवामेव सिद्धाणं कम्मबीए दट्ठे पुणरवि जम्मुप्पत्ती ण भवइ । से तेणट्टेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-ते णं तत्थ सिद्धा भवंति सादीया अपज्जवसिया जाव चिट्ठंति ।

भावार्थ - हे भन्ते ! आप किस कारण से इस प्रकार कहते हैं, कि-वहाँ वे सिद्ध होते हैं, सादि अन्त रहित यावत् शाश्वत रहते हैं ?

हे गौतम ! जैसे अग्नि से जले हुए बीजों की पुनः अंकुर रूप उत्पत्ति नहीं होती है। उसी प्रकार कर्म-बीजों के जल जाने पर सिद्धों की भी पुनः जन्म रूप उत्पत्ति नहीं होती है। इसलिए हे गौतम ! मैं इस प्रकार कहता हूँ, कि- 'वे वहाँ सिद्ध होते हैं अनागत काल में शाश्वत रहते हैं।

विवेचन - जन्म-कर्मकृत प्रसूति। कर्म के निमित्त से होने वाली उत्पत्ति का अभाव बताने के लिये 'जम्मुप्यत्ती' शब्द कहा गया है। क्योंकि प्रतिक्षण उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त ही सद्भाव होता है। अतः वहाँ परिणामान्तर रूप उत्पत्ति होती है।

सिद्धयमान् जीव के संहनन आदि

जीवा णं भन्ते ! सिञ्जमाणा कयरंमि संघयणे सिञ्जंति? - गोयमा ! वइरोसभणारायसंघयणे सिञ्जंति।

भावार्थ - हे भन्ते ! सिद्धयमान-सिद्ध होने वाला जीव कौन से संहनन-हड्डियों के बन्धन में सिद्ध होते हैं ?

हे गौतम ! वज्रऋषभनाराच संहनन (कीलिका और पट्टी सहित मर्कट बन्धमय सन्धियों वाला हड्डियों का बन्धन) में सिद्ध होते हैं।

जीवा णं भन्ते ! सिञ्जमाणा कयरंमि संठाणे सिञ्जंति? - गोयमा ! छणहं संठाणाणं अण्णयरे संठाणे सिञ्जंति।

भावार्थ - हे भन्ते ! सिद्धयमान जीव कौन-से संस्थान(आकार) में सिद्ध होते हैं ?

हे गौतम ! छह संस्थान (आकार) में से किसी भी संस्थान में सिद्ध होते हैं।

विवेचन - संहनन भी छह हैं और संस्थान भी छह हैं। वज्रऋषभ-नाराच, ऋषभ नाराच-मर्कट बन्ध और पट्टी से युक्त सन्धियों वाला, नाराच-मर्कट बन्ध युक्त सन्धियों वाला, अर्द्ध नाराच-एक तरफ मर्कट बन्ध और एक तरफ कीलिका युक्त सन्धियों वाला, कीलिका-कीलिका युक्त सन्धियों वाला और सेवार्त-कमजोर सन्धियों वाला, ये छह संहनन हैं और समचतुरस्र-सुडोल, योग्य माप से युक्त, न्यग्रोधपरिमंडल-वटवृक्ष के समान नाभि के ऊपर के अवयव सुन्दराकार और नीचे के अवयव सामान्य, सादि-नीचे का अंग सुडौल और ऊपर का अंग सामान्य, वामन-टिंगना कद, कुब्ज-कुबड़ा और हुंड-कुत्सित-बेडौल-ये छह प्रकार के संस्थान हैं।

जीवा णं भन्ते ! सिञ्जमाणा कयरंमि उच्चत्ते सिञ्जंति? - गोयमा ! जहण्णेणं सत्त रयणीओ, उक्कोसेणं पंचधणुस्सए सिञ्जंति।

भावार्थ - हे भन्ते ! सिद्धयमान जीव कितनी ऊँचाई में सिद्ध होते हैं ?

हे गौतम ! जघन्य सात हाथ और उत्कृष्ट पांच सौ धनुष की ऊँचाई में सिद्ध होते हैं। अर्थात् पांच सौ धनुष की ऊँचाई वाले सिद्ध होते हैं।



विवेचन - प्रश्न - तीर्थंकर भगवन्तों के शरीर की ऊँचाई कितनी होती है ?

उत्तर - तीर्थंकर भगवन्तों के शरीर की ऊँचाई जघन्य सात हाथ की होती है और उत्कृष्ट पांच सौ धनुष की होती है। इसलिए यहाँ गद्य पाठ में सिद्ध होने वाले जीवों की जो जघन्य अवगाहना बताई है वह तीर्थंकर भगवन्तों की अपेक्षा समझना चाहिये। क्योंकि सामान्य मनुष्य तो जघन्य दो हाथ की ऊँचाई वाले भी सिद्ध होते हैं। यह आगे की सातवीं गाथा में बताया गया है।

प्रश्न - क्या पांच सौ धनुष से अधिक ऊँचाई वाले भी सिद्ध होते हैं ?

उत्तर - नहीं !, पांच सौ धनुष से अधिक ऊँचाई वाले जीव सिद्ध नहीं हो सकते हैं। टीकाकार ने पांच सौ धनुष से अधिक ऊँचाई वाले भी सिद्ध हो सकते हैं ऐसा जो लिखा है वह आगम सम्मत नहीं है।

जीवा णं भन्ते ! सिञ्जमाणा कयरम्मि आउए सिञ्जंति ? - गोयमा ! जहणणेणं साइरेगट्टुवासाउए, उक्कोसेणं पुव्व-कोडियाउए सिञ्जंति ।

भावार्थ - हे भन्ते ! सिद्धयमान जीव कितने आयुष्य में सिद्ध होते हैं ?

हे गौतम ! जघन्य आठ वर्ष से अधिक आयुष्य में और उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व की आयुष्य में सिद्ध होते हैं। अर्थात् आठ वर्ष से ऊपर की आयुष्य से लगाकर एक करोड़ पूर्व तक की आयुष्य तक सिद्ध हो सकते हैं। इससे कम या ज्यादा आयुष्य वाले मनुष्य सिद्ध नहीं हो सकते हैं।

प्रश्न - एक पूर्व कितने वर्षों का होता है ?

उत्तर - ७०५६००००००००० संख्या को व्यवहार में इस प्रकार बोल सकते हैं सात नील; छप्पन खरब, इतने वर्षों का एक पूर्व होता है।

सिद्धों का निवास स्थान

अत्थि णं भन्ते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए अहे सिद्धा परिवसंति ?-णो इणट्टे समट्टे । एवं जाव अहेसत्तमाए ।

भावार्थ - हे भन्ते ! क्या इस रत्नप्रभा पृथ्वी के नीचे सिद्ध निवास करते हैं ? - नहीं, यह अर्थ समर्थ नहीं है। इसी प्रकार सातों पृथ्वियों के विषय में समझना चाहिए।

विवेचन - यद्यपि पहले 'तत्थ सिद्धा भवंति'-इस सूत्र के द्वारा सिद्धों के निवास स्थान का सङ्केत किया जा चुका है। तथापि शिष्य की जिज्ञासा के अनुसार कल्पित विविध लोकाग्र भागों का निषेध करते हुए वास्तविक लोकाग्र के स्वरूप का विशेष बोध देने के लिये प्रश्न-उत्तर किये गये हैं।

शिष्य की कल्पना है, कि - 'रत्नप्रभा पृथ्वी का अधोभाग भी किसी अपेक्षा से लोकाग्र ही है।' इसी प्रकार शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पङ्कप्रभा, धूम्रप्रभा, तमःप्रभा और तमस्तमःप्रभा इन पृथ्वियों के

अधोभाग के विषय में भी इसी प्रकार की कल्पना है। भगवान् ने इन सब कल्पनाओं का निषेध किया है। वास्तविक लोकाग्र कहां है ? इसका उत्तर आगे दिया जाएगा।

अत्थि णं भंते ! सोहमस्स कप्पस्स अहे सिद्धा परिवसंति ? - णो इणट्ठे समट्ठे । एवं सव्वेसिं पुच्छा-ईसाणस्स सणंकुमारस्स जाव अच्चुयस्स गेविज्ज-विमाणाणं अणुत्तर-विमाणाणं ।

भावार्थ - हे भन्ते ! क्या सिद्ध, सौधर्मकल्प के नीचे निवास करते हैं ? यह अर्थ समर्थ नहीं है। इसी प्रकार ईशान, सनत्कुमार यावत् अच्युत, ग्रैवेयकविमान और अनुत्तरविमान-सबकी पृच्छा समझना चाहिए।

अत्थि णं भंते ! ईसीपब्भाराए पुढवीए अहे सिद्धा परिवसंति ? - णो इणट्ठे समट्ठे ।

भावार्थ - तो क्या भन्ते ! सिद्ध, ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के नीचे निवास करते हैं ? यह अर्थ समर्थ नहीं है।

से कर्हिं ख्वाइ णं भंते ! सिद्धा परिवसंति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसम रमणिज्जाओ भूमिभागाओ उड्डं चंदिमसूरियग्गहगणणक्खत्ताराभवणाओ बहूइं जोयणाइं बहूणं जोयणसयाइं, बहूइं जोयणसहस्साइं, बहूइं जोयणसयसहस्साइं, बहूओ जोयणकोडिओ, बहूओ जोयण-कोडाकोडीओ उड्डतरं उप्पइत्ता सोहम्पीसाणसणंकुमारमाहिं दबं भलंतग-महासुक्कसहस्सारआणय-पाणयआरणच्चुय तिण्णिण य अट्टारे गेविज्ज-विमाणावाससए वीइवइत्ता विजयवेजयंत-जयंतअपराजियसव्वट्ठ-सिद्धस्स य महाविमाणास्स सव्वे उवरिल्लाओ थूभियग्गाओ दुवालसजोयणाइं अबाहाए एत्थ णं ईसीपब्भारा णाम पुढवी पण्णत्ता ।

भावार्थ - हे भन्ते ! फिर सिद्ध भगवान् कहाँ रहते हैं ?

हे गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी के बहुसम रमणीय भूमि भाग से ऊपर चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और ताराओं के भवनों से, बहुत-से योजन, बहुतसे सैकड़ों योजनों, बहुत-से हजार योजनों, बहुत-से सौ-हजार योजनों, बहुत-से करोड़ योजनों और बहुत-से करोड़-करोड़ योजनों से ऊपर जाने पर सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, लान्तक, महाशुक्र, सहस्रार, आणत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्प, ३१८ ग्रैवेयक विमान-आवास को पार कर, विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्ध महाविमान के शिखर के अग्रभाग से बारह योजन के अन्तर-अबाहा से इस स्थल पर ईषत्प्राग्भारा नाम की पृथ्वी है।

पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं, एगा जोयणकोडी बायालीसं सयसहस्साइं, तीसं च सहस्साइं, दोण्णिण य अउणापण्णे जोयणसए, किंचि विसेसाहिए परिरएणं ।

वह ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी पैतालीस लाख योजन की लम्बी और पैतालीस लाख योजन की चौड़ी है और एक करोड़ बयालीस लाख तीस हजार दो सौ गुणपचास योजन से कुछ अधिक उसकी परिधि है।

ईसिपब्भारा य णं पुढवीए बहुमज्झदेसभाए अट्टजोयणिए खेत्ते, अट्टजोयणाइं बाहल्लेणं । तथाऽणंतरं मायाए मायाए पडिहायमाणी पडिहायमाणी सव्वेसु चरिमपेरंतेसु मच्छिय-पत्ताओ तणुयतरा, अंगुलस्स असंखेज्जइभागं बाहल्लेणं पण्णत्ता ।

भावार्थ - वह ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी बहुमध्य देशभाग में, आठ योजन जितने क्षेत्र में, आठ योजन मोटी है। इसके बाद थोड़ी-थोड़ी कम होती हुई, सबसे अन्तिम किनारों पर मक्खी की पांख से भी पतली है। उस किनारे की मोटाई अंगुल के असंख्येय भाग जितनी है।

ईसीपब्भाराए णं पुढवीए दुवालस णामधेज्जा पण्णत्ता । तं जहा-ईसी इ वा, इसीपब्भारा इ वा, तणू इ वा, तणुतणू इ वा, सिद्धी इ वा, सिद्धालए इ वा, मुत्ती इ वा, मुत्तालए इ वा, लोयग्गे इ वा, लोयग्गथूभिया इ वा, लोयग्गपडिवुज्झणा इ वा, सव्वपाणभूयजीवसत्तसुहावहा इ वा ।

भावार्थ - ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी के बारह नाम हैं। जैसे-१. ईषत्-अल्प, हल्लकी या छोटी, २. ईषत्प्राग्भारा-अल्प, ३. तनु-पतली, ४. तनुतनु-विशेष पतली ५. सिद्धि ६. सिद्धालय-सिद्धों का घर ७. मुक्ति, ८. मुक्तालय ९. लोकाग्र, १०. लोकाग्रस्तूपिका-लोकाग्र का शिखर ११. लोकाग्रप्रतिबोधना-जिसके द्वारा लोकाग्र जाना जाता हो ऐसी और १२. सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों को सुखावह (सुखदाता) ।

विवेचन - सिद्ध भगवन्तों के समीप होने के कारण इस पृथ्वी को सिद्धि, सिद्धालय, मुक्तालय आदि शब्दों से कहा गया है।

प्राणाः द्वित्रिचतुः प्रोक्ताः भूतास्तुः तरवः स्मृताः ।

जीवाः पंचेन्द्रियाः प्रोक्ताः शेषा सत्त्वा उदीरिताः ॥

अर्थ - बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों को प्राण कहते हैं, वनस्पति को भूत कहते हैं, पंचेन्द्रिय को जीव कहते हैं। पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय इन चार स्थावरों को सत्त्व कहते हैं। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक जीव जो वहाँ पृथ्वी आदि रूप से उत्पन्न होते हैं, उन सब जीवों के लिए वह ईषत्प्राग्भारा पृथ्वी सुखदायी होती है क्योंकि वहाँ शीत ताप आदि दुःखों का अभाव है।

ईसीपब्भाराणं पुढवीसेया आयंसतलविमलसोल्लियमुणाल-दगरय-तुसारगोक्खीर-
हारवणणा उत्ताणयछत्तसंठाणसंठिया सब्वज्जुण-सुवण्णमई अच्छा सण्हा लण्हा
घट्टा मट्टा णीरया णिम्मला णिप्पंका णिवक्कं कडच्छाया समरीच्चिया सुप्पभा पासाईया
दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ।

भावार्थ - ईषत्रागभारा पृथ्वी, दर्पण के तल समान विमल, सौल्लिय-एक प्रकार फूल संभवतः
मुचकुन्द, कमलनाल-मुणाल-मृणाल, जलकण, तुषार, गाय के दूध और हार के समान वर्णवाली-सफेद
है। उलटे छत्र के आकार के समान आकार में रही हुई है और अर्जुनस्वर्ण-सफेद सोना मयी है। वह
आकाश या स्फटिक-सी स्वच्छ कोमल परमाणुओं के स्कन्ध से निष्पन्न, घुण्टित-घोंटकर चिकनी की
हुई-सरिखी, वस्तु के समान तेज शान-से घिसी हुई-सरिखी, सुकुमार शान-से संवारी हुई सरिखी या
प्रमार्जनिका से शोधी हुई-सरिखी, रज से रहित, मल से रहित, आर्द्रमल से रहित, अकलङ्क, अनावरण,
छाया या अकलङ्क शोभावाली, किरणों से युक्त, सुन्दर प्रभावाली, मन के लिये प्रमोदकारक-प्रासादीय,
दर्शनीय-जिसे देखते हुए नयन अघाते न हों ऐसी, अभिरूप-कमनीय और प्रतिरूप-देखने के बाद
जिसका दृश्य आँखों के सामने घूमता ही रहे ऐसी है।

ईसीपब्भाराए णं पुढवीए सीयाए जोयणंमि लोगंते । तस्स जोयणस्स जे से उवरिल्ले
गाउए, तस्स णं गाउयस्स जे से उवरिल्ले छब्भागे तत्थ णं सिद्धा भगवंतो सादीया
अपज्जवसिया अणेगजाइजरामरणजोणि संसारकलं कलीभाव-पुणब्भव-
गब्भवासवसहिपवंचसमइक्कंता (अणेगजाइजरामरणजोणिवेयणं संसार-कलं कली
भाव-पुणब्भवगब्भवासवसहीपवंचमइक्कंता) सासयमणागयमद्धं चिट्ठंति ॥

भावार्थ - ईषत्रागभारा पृथ्वी के तल से उत्सेधांगुल से एक योजन पर लोकान्त है। उस योजन
का जो ऊपर का कोस है, उस कोस का जो ऊपर का छट्टा भाग है, वहाँ सिद्ध भगवन्त, जन्म, जरा
और मरण प्रधान अनेक योनियों की वेदना और संसार में पर्यटन-कलङ्कलीभाव-दुःख की घबराहट से
बार-बार उत्पत्ति-गर्भवास में निवास के प्रपञ्च-विस्तार से परे बन कर, शाश्वत अनागत काल में
सादि-अनन्त रूप से स्थित रहते हैं।

सिद्ध-स्तवना

कहिं पडिहया सिद्धा ? कहिं सिद्धा पड्ठिया ?

कहिं बोदिं चइत्ताणं ? कत्थ गंतूण सिज्झइ ॥ १ ॥

भावार्थ - सिद्ध कहाँ जाकर रुकते हैं ? सिद्ध कहाँ स्थित होते हैं ? और कहाँ देह को त्याग कर,
कहाँ जा कर सिद्ध होते हैं ?

विवेचन - जीव का स्वभाव ऊर्ध्वगामी है। अतः यह शङ्का उठना सहज है कि-सिद्ध हमेशा भ्रमणशील ही रहते हैं या कहीं रुकते हैं?-यदि रुकते हैं तो रुकने का क्या कारण है? जिसका निमित्त मिलने पर रुकते हैं, तो क्या उससे टकराकर वापिस लौटते हैं या कहीं स्थित रहते हैं? वे जहाँ स्थित होते हैं-वहीं शरीर छोड़ते हैं या अन्यत्र? अर्थात् उनका जो स्थान है, वहाँ जाकर देह छोड़ते हैं या अन्यत्र? जहाँ देह त्यागते हैं, वहीं कृतकृत्य हो जाते हैं या अन्यत्र? प्रायः ऐसी जिज्ञासाएँ इन प्रश्नों के मूल में रही हुई हैं।

अलोगे पडिहया सिद्धा, लोयगगे य पइट्टिया।

इहं बोदिं चइत्ताणं, तत्थ गंतूण सिञ्जइ ॥ २ ॥

भावार्थ - सिद्ध अलोक से रुकते हैं। लोकाग्र पर स्थित होते हैं और मनुष्य लोक में देह को छोड़ कर वहाँ-लोकाग्र पर जा कर, सिद्ध अर्थात् कृतकृत्य होते हैं।

विवेचन - प्रतिहत अर्थात् आनन्तर्यवृत्ति मात्र का स्खलन। सिद्धों की अलोक में गति बन्द हो जाने के कारण-१ गतिसहायक द्रव्य धर्मास्तिकाय का अभाव २. शरीर-त्याग के प्रयोग से इतनी ही गति होना, ३. सिद्ध जीवों का लौकिक द्रव्य होना-आदि। तिरछे या नीचे गति नहीं करने का कारण-जीवद्रव्य का मुक्तता के कारण ऊर्ध्वगमन स्वभाव। देहादि से मुक्ति तो मनुष्य लोक में ही हो जाती है। पूर्णतः मुक्ति और सिद्ध में एक समय का भी अन्तर नहीं होता है। किन्तु निश्चयदृष्टि से लोकाग्र पर प्रतिष्ठित हो जाने के बाद ही उन्हें सिद्ध माना जाता है।

जं संठाणं तु इहं, भवं चयंतस्स चरिमसमयंमि।

आसी य पएसघणं, तं संठाणं तहिं तस्स ॥ ३ ॥

भावार्थ - मनुष्यलोक के भव के देह में जो प्रदेशघन आकार, अन्तिम समय में बना था, वही आकार उनका वहाँ पर होता है।

दीहं वा हस्सं वा, जं चरिमभवे हवेज्ज संठाणं।

तत्तो तिभागहीणं, सिद्धाणोगाहणा भणिया ॥ ४ ॥

भावार्थ - छोटा या बड़ा, जैसा भी अन्तिमभव में आकार होता है, उससे तीसरे भाग जितने कम स्थान में सिद्धों की व्याप्ति-जिनेश्वर देव के द्वारा कही गई है।

विवेचन - प्रश्न - सिद्ध अवस्था में आत्म प्रदेशों की अवगाहना कितनी होती है? और इसका क्या नियम है?

उत्तर - उपरोक्त प्रश्न का उत्तर इस गाथा में दिया गया है। वह यह है कि-सिद्ध होने वाले जीव

के शरीर की अवगाहना इस चरम भव में जितनी होती है, उसका एक तिहाई भाग कम होकर दो तिहाई भाग प्रदेशों की सिद्ध अवस्था में अवगाहना होती है। जैसे कि यहाँ से तीन हाथ के शरीर की अवगाहना वाला जीव सिद्ध होता है, तो सिद्ध अवस्था में उसके आत्म प्रदेशों की अवगाहना दो हाथ की रहती है। इसी प्रकार छह हाथ वाले की चार हाथ और नौ हाथ वाले की छह हाथ की अवगाहना रहती है। इसी प्रकार सात हाथ वाले की चार हाथ सोलह अंगुल (२४ अंगुल का एक हाथ होता है) की अवगाहना सिद्ध अवस्था में रहती है।

तिणिण सया तेत्तीसा, धणुत्तिभागो य होइ बोधव्वा ।

एसा खलु सिद्धाणं, उक्कोसोगाहणा भणिया ॥ ५ ॥

भावार्थ - तीन सौ तैंतीस धनुष और धनुष का तीसरा भाग अर्थात् ३२ अंगुल, यह सर्वज्ञ कथित सिद्धों की उत्कृष्ट अवगाहना जानना चाहिए।

चत्तारि य रयणीओ, रयणित्तिभागूणिया य बोधव्वा ।

एसा खलु सिद्धाणं, मञ्जिमओगाहणा भणिया ॥ ६ ॥

भावार्थ - चार हाथ और तीसरा भाग कम एक हाथ-सोलह अंगुल यह सर्वज्ञकथित सिद्धों की मध्यम अवगाहना जानना चाहिए।

एक्का य होइ रयणी, साहीया अंगुलाइं अट्ट भवे ।

एसा खलु सिद्धाणं, जहणणओगाहणा भणिया ॥ ७ ॥

भावार्थ - एक हाथ और आठ अंगुल अधिक-यह सर्वज्ञकथित सिद्धों की जघन्य अवगाहना है।

विवेचन - प्रश्न - अधिक से अधिक कितनी ऊँचाई वाले सिद्ध हो सकते हैं।

उत्तर - पणवणा सूत्र में तथा इसी सूत्र की इस पांचवीं गाथा के अनुसार उत्कृष्ट ५०० धनुष की अवगाहना वाले सिद्ध हो सकते हैं।

प्रश्न - टीकाकार ने मरुदेवी माता की ५२५ धनुष की अवगाहना बताई है यह कैसे ?

उत्तर - मरुदेवी माता की अवगाहना ५०० सौ धनुष की ही थी इससे अधिक नहीं इसलिए टीकाकार का ५२५ धनुष लिखना यह आगम सम्मत नहीं है तथा वृद्ध अवस्था के कारण उनका शरीर सिकुड गया था अथवा वे बैठी हुई सिद्ध हुई थी इसलिए अवगाहना कम हो गई थी टीकाकार का यह लिखना भी आगमानुकूल नहीं है, क्योंकि सिद्ध होने वाला जीव चाहे बैठा हुआ हो, सोया हुआ हो या आडा टेडा हो अथवा देव द्वारा संहरण करके समुद्र या कुएं तालाब आदि पानी में ऊपर से ऊँधा डाला जाता हुआ हो अर्थात् सिद्ध होने वाले जीव किसी भी अवस्था में हो किन्तु सिद्ध गति में जाते समय

आत्मा के प्रदेश मनुष्य के शरीर के आकार में खड़े हो जाते हैं। सब सिद्धों के आत्म प्रदेश खड़े मनुष्य के शरीर के आकार के होते हैं।

प्रश्न - सिद्ध भगवन्तों की मध्यम अवगाहना चार हाथ सोलह अंगुल कैसे समझना ?

उत्तर - गाथा नं. ६ में सिद्ध भगवन्तों की जो यह मध्यम अवगाहना बताई है वह वास्तव में मध्यम अवगाहना नहीं है किन्तु तीर्थंकर भगवन्तों की अपेक्षा यह जघन्य अवगाहना है यह ऊपर के गद्य पाठ से स्पष्ट हो जाता है क्योंकि वहाँ सिद्ध होने वाले जीव की जघन्य अवगाहना सात हाथ की बतलाई है। इसकी टीका में स्पष्ट कर दिया है कि यह जघन्य अवगाहना तीर्थंकर भगवन्तों की अपेक्षा समझनी चाहिए।

प्रश्न - सिद्ध भगवन्तों की अवगाहना किस प्रकार बोलना चाहिये।

उत्तर - सिद्ध भगवन्तों की अवगाहना में जघन्य अवगाहना दो प्रकार से बोलना चाहिये यथा- सामान्य केवलियों की अपेक्षा जघन्य अवगाहना एक हाथ आठ अंगुल और तीर्थंकर भगवन्तों की अपेक्षा जघन्य अवगाहना चार हाथ सोलह अंगुल तथा उत्कृष्ट अवगाहना ३३३ धनुष और ३२ अंगुल (३३३ धनुष १ हाथ और ८ अंगुल) होती है इस प्रकार सिद्ध भगवन्तों की अवगाहना बोलना चाहिये।

प्रश्न - दो हाथ के अवगाहना वाले कौन सिद्ध हुये ?

उत्तर - पण्णवणा सूत्रों आदि की टीका तथा प्रवचन सारोद्धार आदि ग्रन्थों में कूर्मापुत्र का उदाहरण दिया है जिनकी शरीर की अवगाहना दो हाथ थी। सिद्ध अवस्था में उनकी अवगाहना एक हाथ आठ अंगुल है।

प्रश्न - तीर्थंकरों में जघन्य अवगाहना का उदाहरण कौनसा है ?

उत्तर - अवसर्पिणी काल के अंतिम चौबीसवें तीर्थंकर और उत्सर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर के शरीर की अवगाहना सात हाथ की होती है। सिद्ध अवस्था में उनकी अवगाहना चार हाथ सोलह अंगुल होती है। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी की सिद्ध अवस्था की अवगाहना चार हाथ सोलह अंगुल है।

प्रश्न - उत्कृष्ट अवगाहना का उदाहरण क्या है ?

उत्तर - अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर और उत्सर्पिणी काल के चौबीसवें तीर्थंकर के शरीर की अवगाहना तथा पांचों महाविदेह क्षेत्र के सभी तीर्थंकरों के शरीर की अवगाहना ५०० धनुष की होती है तथा सामान्य केवलियों की उत्कृष्ट अवगाहना ५०० धनुष की हो सकती है। जैसे कि-भगवान् ऋषभदेव के पुत्र भरत-बाहुबली आदि सौ पुत्रों की अवगाहना ५०० धनुष की थी।

प्रश्न - मरुदेवी माता और नाभिराजा के शरीर की अवगाहना कितनी थी ?

उत्तर - मरुदेवी माता के शरीर की अवगाहना ५०० धनुष की थी। नाभिराजा को कुलकर माना है इसलिए ग्रन्थकार उनके शरीर की अवगाहना ५२५ धनुष लिखते हैं।

प्रश्न - नाभिकुलकर का आयुष्य कितना था और वे काल धर्म को प्राप्त कर कहां गये थे ?

उत्तर - नाभिकुलकर का आयुष्य एक करोड़ पूर्व से कुछ अधिक था और वे कुलकर रूप युगलिक थे। इसलिए काल करके वे देवलोक में गये अर्थात् भवनपति देवों में उत्पन्न हुये थे। वहाँ का आयुष्य पूरा करके मनुष्य रूप से उत्पन्न हुये और दीक्षा लेकर संयम का पालन करके भगवान् ऋषभदेव के शासन में ही मोक्ष में पधार गये।

प्रश्न - मरुदेवी माता का आयुष्य कितना था और उनकी शरीर की ऊँचाई कितनी थी। वे काल करके कहाँ गये ?

उत्तर - मरुदेवी माता का आयुष्य एक करोड़ पूर्व था। उनके शरीर की ऊँचाई ५०० धनुष की थी। भगवान् ऋषभदेव को केवलज्ञान होने के एक अन्तर्मुहूर्त पहले केवलज्ञान प्राप्त कर तत्काल मोक्ष चले गये।

प्रश्न - मरुदेवी माता के लिए टीकाकार का लिखना यह है कि - "मरुदेवी तु आश्चर्यकल्पाइत्येवमपि न विरोधः।

सो क्या यह कहना ठीक है ?

उत्तर - टीकाकार का उपरोक्त कथन ठीक नहीं है। क्योंकि मरुदेवी माता का मोक्षगमन आश्चर्य रूप नहीं है। स्थानांग सूत्र के दसवें ठाणे में दस आश्चर्य बताये गये हैं। उनमें मरुदेवी माता का मोक्ष गमन आश्चर्य नहीं बतलाया है और यह आश्चर्य है भी नहीं क्योंकि पणवणा सूत्र के प्रथम पद में सिद्धों के पन्द्रह भेद बताये हैं उसमें स्त्री लिंग सिद्ध भी बतलाया गया है। श्वेताम्बर परम्परा में स्त्री का मोक्ष गमन निराबाध रूप से मान्य है।

प्रश्न-क्या दिगम्बर सम्प्रदाय स्त्री की मुक्ति नहीं मानता है ?

उत्तर - हाँ ! दिगम्बर सम्प्रदाय स्त्री की मुक्ति नहीं मानता है, किन्तु उनके मान्य ग्रन्थों में स्त्री का मोक्ष बतलाया गया है यथा-

श्री मन्नेमिचन्द्र सैद्धान्तिकचक्रवर्तिविरचित

गोम्पटसार (जीवकाण्ड)

पण्डित खूबचन्द जी जैन द्वारा रचित संस्कृत छाया तथा बालबोधिनी टीकासहित

होति खवा इगिसमये, बोहियबुद्धा य पुरिसवेदा य ।

उक्कस्सेणट्टत्तरसयप्पमा सग्गदो य चुदा ॥

पत्तेयबुद्धतित्थयरत्थिणंउसयमणोहिणाणजुदा ।

दसछक्कवीसदसवीसट्ठावीसं जहाकमसो ॥

जेट्ठावरबहुमञ्जिम, ओगाहणगा दु चारि अट्टेव ।

जुगवं हवंति खवगा, उवसमगा अद्धमेदेसिं ॥

अर्थ - युगपत्-एक समय में क्षपक श्रेणि वाले जीव अधिक से अधिक होते हैं तो कितने होते हैं ? इसका प्रमाण इस प्रकार है कि बोधित बुद्ध एक सौ आठ, पुरुष वेदी एक सौ आठ, स्वर्ग से च्युत होकर मनुष्य होकर क्षपक श्रेणि मांडने वाले एक सौ आठ, प्रत्येक बुद्ध ऋद्धि के धारक दश, तीर्थंकर छह, स्त्रीवेदी बीस, नपुंसकवेदी दश, मनःपर्यवज्ञानी बीस, अवधिज्ञानी अट्ठाईस, मुक्त होने के योग्य शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना के धारक दो, जघन्य अवगाहना के धारक चार, समस्त अवगाहनाओं की मध्यवर्ती अवगाहना के धारक आठ । ये सब मिलकर चार सौ बत्तीस होते हैं । उपशमश्रेणि वाले इसके आधे (२१६) होते हैं ।

ओगाहणाए सिद्धा, भवन्तिभागेण होइ परिहीणा ।

संठाणमणित्थंथं, जरामरणविप्पमुक्काणं ॥ ८ ॥

भावार्थ - सिद्ध अन्तिम भव की अवगाहना से तीसरे भाग जितनी कम अवगाहना वाले होते हैं । जरा और मरण से बिलकुल मुक्तों का आकार किसी भी लौकिक आकार से नहीं मिलता है-इत्थं-इस प्रकार-थं-स्थित, अणित्थंथं-इस प्रकार के आकारों में नहीं रहा हुआ हो ऐसा ।

विवेचन - जीव के न्यग्रोध परिमण्डल आदि छह संस्थान बताये गये हैं । इन छह संस्थानों में से किसी भी संस्थान में रहा हुआ जीव इत्थंस्थ (इस प्रकार का) आकार वाला कहलाता है । सिद्ध भगवन्तों में इन छह संस्थानों में से कोई भी संस्थान नहीं है । इसलिए उनका संस्थान "अन्+इत्थंस्थ=अनित्यंस्थ" कहलाता है जैसा कि वनस्पति का एक प्रकार का संस्थान नहीं होने से उसका संस्थान भी अनित्यंस्थ कहलाता है ।

जत्थ य एगो सिद्धो, तत्थ अणंता भवक्खयविमुक्का ।

अण्णोण्णसमवगाढा, पुट्टा सव्वे य लोगंते ॥ ९ ॥

भावार्थ - जहाँ एक सिद्ध है, वहाँ भव के क्षय से विमुक्त, धर्मास्तिकायादिवत् अचिन्त्य परिणामत्व से परस्पर अवगाढ़ अनन्त सिद्ध हैं और सब लोकान्त का अर्थात् लोकाग्र भाग का स्पर्श किये हुए हैं ।

फुसइ अणंते सिद्धे, सव्व पएसेहिं णियमसो सिद्धा ।

ते वि असंखेज्जगुणा, देसपएसेहिं जे पुट्ठा ॥ १० ॥

भावार्थ - सिद्ध, निश्चय ही सम्पूर्ण आत्म-प्रदेशों से अनन्त सिद्धों का स्पर्श करते हैं और उन सर्वात्म प्रदेशों से स्पृष्ट सिद्धों से असंख्य गुण वे सिद्ध हैं-जो देश प्रदेशों से स्पृष्ट हैं।

विवेचन - एक-एक सिद्ध समस्त आत्म-प्रदेशों द्वारा अनन्त सिद्धों का सम्पूर्ण रूप से स्पर्श किये हुए हैं इस प्रकार एक सिद्ध की अवगाहना में अनन्त सिद्धों की अवगाहना रही हुई है और एक में अनन्त अवगाह हो जाते हैं, उनसे भी असंख्यात गुण सिद्ध ऐसे हैं जो देशों और प्रदेशों कितनेक भागों से एक दूसरे में अवगाह हैं तात्पर्य यह है कि अनन्त सिद्ध तो ऐसे हैं जो पूरी तरह एक दूसरे में समाये हुए हैं और उनसे भी असंख्यात गुण सिद्ध ऐसे हैं जो देश प्रदेशों से अर्थात् कतिपय अंशों में एक दूसरे में समाये हुए हैं।

सिद्ध भगवान् अरूपी अमूर्त होने के कारण उनकी एक दूसरे में अवगाहना होने में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न नहीं होती है। जिस प्रकार अनेक दीपकों की ज्योति एक दूसरे में समाई हुई होती है, उसी प्रकार सिद्ध भगवान् भी ज्योति में ज्योति स्वरूप विराजमान हैं।

असरीरा जीवघणा, उवउत्ता दंसणे य णाणे य ।

सागारमणागारं, लक्खणमेयं तु सिद्धाणं ॥ ११ ॥

भावार्थ - वे सिद्ध अशरीरी, जीवघन और दर्शन तथा ज्ञान-इन दोनों उपयोगों में क्रमशः स्थित हैं। साकार-विशेष उपयोग ज्ञान और अनाकार-सामान्य उपयोग-दर्शन चेतना-सिद्धों का लक्षण है।

विवेचन - वस्तु के भेदयुक्त ज्ञान को साकार उपयोग कहते हैं और वस्तु के अभेदज्ञान को अनाकार उपयोग। सिद्धान्तपक्ष इन दोनों उपयोगों की प्रवृत्ति सिद्धों में भी क्रमशः मानता है। इस पक्ष के पोषक जिनभद्रगणि आदि आचार्य हैं। कुछ आचार्य दोनों उपयोगों को युगपद् मानते हैं और सिद्धसेन दिवाकर तर्कबल से इस मत की स्थापना करते हैं कि-ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग में, केवली अवस्था में किसी प्रकार का भेद नहीं है। दिगम्बर सम्प्रदाय में युगपद् उपयोग का ही प्रतिपादन है। स्थानकवासी सम्प्रदाय सिद्धांतपक्ष को ही मान्यता देता है। सैद्धांतिकों की दृष्टि में-'जानने में प्रवृत्त होना' और 'देखने में प्रवृत्त होना' अर्थात् 'विशेष ज्ञानोपयोग की स्थिति' और 'सामान्य ज्ञानोपयोग की स्थिति'-ये आत्मा के एक ही गुण की दो पर्यायें हैं। पर्यायें क्रमवर्ती ही हो सकती हैं। अतः सिद्धों को भी विशेषज्ञान और सामान्यज्ञान क्रमशः ही होते हैं। साकार और अनाकार उपयोग ही सिद्धों का लक्षण है।

केवलणाणुवउत्ता, जाणंति सव्वभावगुणभावे ।

पासंति सव्वओ खलु, केवलदिट्ठी अणंताहिं ॥ १२ ॥

भावार्थ - केवलज्ञानोपयोग से सभी वस्तुओं के गुण और पर्यायों को जानते हैं और अनन्त केवलदृष्टि से सर्वतः-चारों ओर से-देखते हैं ।

विवेचन - (अ) इस गाथा के द्वारा केवलज्ञान और केवलदर्शन का भेद स्पष्ट किया गया है । जब पदार्थों को सर्वतः देखा जाता है, तब वे पदार्थ सावयव होते हुए भी अभिन्न रूप से दिखाई देते हैं और जब उनके गुणादि की ओर दृष्टि रहती है, तब उनमें भेद ही भेद दिखाई देता है ।

(आ) द्रव्य-गुण और पर्याय का आश्रय ।

गुण-पदार्थव्यापी अंश अर्थात् पदार्थव्यापी ऐसा अंश, जो वैसे ही अन्य अंशों के साथ पदार्थ में अविरोधी रूप से रहता है ।

पर्याय-पदार्थ की क्रमवर्ती अवस्था ।

(इ) सिद्ध अन्तर्मुख ही होते हैं-बहिर्मुख नहीं। यह जो सर्व-द्रव्यादि का ज्ञान होता है, वह उनकी अन्तर्मुखता के कारण ही होता है। आत्मा तो स्व-उपयोग का ही स्वामी है। अर्थात् स्व-उपयोग की लीनता में ही यह विशेषता है कि-उसमें सभी द्रव्यादि का ज्ञान स्वतः होता है। आगम काल के पश्चात् जो ये भेद हुए हैं कि केवली व्यवहार दृष्टि से ही सर्व द्रव्यादि को जानता है और निश्चयदृष्टि से तो अपनी आत्मा को ही जानता है-वे मात्र समझने के लिये ही है। वस्तुतः स्व-उपयोग में व्यवहार-निश्चय रूप भिन्न दृष्टियों से कोई विशेष अन्तर नहीं है ।

णवि अत्थि माणुसाणं, तं सोक्खं ण वि य सव्वदेवाणं ।

जं सिद्धाणं सोक्खं, अव्वाबाहं उवगयाणं ॥ १३ ॥

भावार्थ - न तो मनुष्यों को ही वह सुखानुभव है और न सभी देवों को ही, जो सौख्य अव्याबाध-बाधा-पीड़ा रहित अवस्था को प्राप्त सिद्धों को है ।

जं देवाणं सोक्खं, सव्वद्धापिंडियं अणंतगुणं ।

ण य पावइ मुत्तिसुहं, णंताहिं वग्गवग्गूहिं ॥ १४ ॥

भावार्थ - तीनों काल से गुणित जो देवों का सौख्य है, उसे अनन्त बार वर्गवर्गित किया जाय, ऐसा वह अनन्तगुण सौख्य मुक्तिसौख्य के बराबर नहीं हो सकता है ।

विवेचन - जितनी संख्या हो, उतनी संख्या से गुणित करने पर जो गुणनफल आता है, उसे वर्ग कहा जाता है। जैसे-दो से दो को गुणित करने पर 'चार' वर्ग हुआ। जो उस वर्ग का भी वर्ग हो, उसे

वर्गवर्ग कहते हैं। जैसे-दो का वर्ग चार और चार का वर्ग सोलह। ऐसे अनन्त बार वर्गवर्गित देवों का सुख, सिद्धों के सौख्य के तुल्य नहीं हो सकता।

चूर्णिकार ने-‘गन्ताहि.....’ पद का सम्बन्ध ‘मुत्तिसुहं’ के साथ जोड़कर यह अर्थ किया है- ‘अनन्त खण्ड खण्डों से खण्डित सिद्धसुख-अर्थात् सिद्धों के सुख के अनन्तानन्ततम खण्ड की समता भी, देवों का सर्वकालिक सुख, नहीं कर सकता है। क्योंकि देवों का सुख पौद्गलिक सुख से मिश्रित है। जबकि सिद्धों का सुख विशुद्ध आत्मिक है।

सिद्धस्स सुहो रासी, सव्वद्वापिण्डिओ जइ हवेजा।

सोऽणंतवग्गभइओ, सव्वागासे ण माएजा ॥ १५ ॥

भावार्थ - एक सिद्ध के सुख को तीनों काल से गुणित करने पर जो सुख की राशि हो, उसे अनन्तवर्ग से भाजित करने पर जो सुख की राशि उपलब्ध होती है, वह सुखराशि भी सम्पूर्ण आकाश में नहीं समा सकती।

विवेचन - यहाँ विशिष्ट आह्लाद रूप सुख ग्रहण किया है। शिष्टजनों की सुख शब्द की प्रवृत्ति जिसके लिये होती है, उस आह्लाद की अवधि करके वहाँ से आरम्भ करके, एक-एक गुण की वृद्धि के तारतम्य के द्वारा, उस आह्लाद की यहाँ तक वृद्धि करे कि वह अनन्तगुण वृद्धि के द्वारा निरतिशय निष्ठा को प्राप्त हो जाय अर्थात् कल्पनातीत राशि हो जाय। ऐसा वह अत्यन्त, उपमा से रहित और ऐकान्तिक औत्सुक्य निवृत्ति रूप, निश्चलतम महोदधि के समान चरम आह्लाद ही सिद्धों के सदा होता है। उस प्रथम चार से-संभवतः सुखानुभव के पहले स्तर से ऊपर तक के अन्तरालवर्ती आह्लाद के तारतम्य के द्वारा जो विशेष-विशेष रूप से स्तर बनते हैं, वे समस्त आकाश प्रदेशों से भी अधिक होते हैं। अतः कहा-‘सव्वागासे ण माएजा’। यदि अन्यथा हो तो उनकी प्रतिनियत देश में अवस्थिति किस प्रकार हो सकती है-यों आचार्य कहते हैं।

इस गाथा का वृद्धोक्त विवरण का यह आशय है-‘यह जो सुखभेद है, वे सिद्ध सुख के पर्यायरूप से कहे गये हैं। उस अपेक्षा से क्रम से उत्कृष्ट करते हुए उस सुख के भेद को उपचार से अनन्ततम स्थानवर्तिता की प्राप्ति होती है। असद्भाव स्थापना से उस सुखराशि को हजार मान लिया जाय और समयराशि को सौ। हजार को सौ से गुणित किया तो लाख हुए। यह गुणन किया गया-सर्व समय संबंधी सुख पर्यायों की उपलब्धि के लिए तथा अनंत राशि को ‘दश’ से मान लिया। उसका वर्ग हुआ सौ। वर्ग से प्राप्त संख्या सौ के द्वारा लक्ष को अपवर्तित किया तो हजार ही हुए। अतः पूज्यों ने कहा-‘समीभूत-तुल्यरूप ही है-यह आशय है।’ यहाँ जो यह सुखराशि का गुणन और अपवर्तन हुआ है,

उसकी हम इस प्रकार संभावना करते हैं, कि-यहाँ अनन्त राशि से गुणित होने पर भी-अनन्तवर्ग अर्थात् अनन्तानन्त रूप अतीव महास्वरूप से अपवर्तित होने पर, किंचिद् अवशेष रहता है, वह राशि भी अति महान् है। उससे भी सिद्धों की सुखराशि महान् है-ऐसी बुद्धि शिष्य में उत्पन्न करने के लिये अथवा गणितमार्ग से व्युत्पत्ति करने के लिये-यह प्रयास है।

अन्य इस गाथा की व्याख्या इस प्रकार करते हैं-सिद्ध के सुखों की पर्यायराशि xxx जो सर्वसमयों से सम्बन्धित है, उसे सङ्कलित की-उस सङ्कलित राशि को अनन्तवार वर्गमूल से अपवर्तित की अर्थात् अत्यन्त लघु बनाई। जैसे-सर्वसमय सम्बन्धी सिद्धों की सुखराशि ६५५३६ है। इसे वर्ग से अपवर्तित करने पर २६६ हुई। वह स्ववर्ग से अपवर्तित होने पर १६, सोलह से चार और चार से दो-यह अतिलघु राशि प्राप्त हुई। वह भी सम्पूर्ण आकाश प्रदेशों में भी नहीं समा सकती है।

जह णाम कोइ मिच्छो, णगरगुणे बहुविहे वियाणंतो।

ण चएइ परिकहेउं, उवमाए तर्हि असंतीए ॥ १६ ॥

भावार्थ - जैसे कोई म्लेच्छ-जंगली मनुष्य बहुत तरह के नगर के गुणों को जानते हुए भी, वहाँ-जंगल में-नगर के तुल्य कोई पदार्थ नहीं होने से, नगर के गुणों को कहने में समर्थ नहीं हो सकता है।

इय सिद्धाणं सोक्खं, अणोवमं णत्थि तस्स ओवम्मं।

किंचि विसेसेणेत्तो, ओवम्ममिणं सुणह वोच्छं ॥ १७ ॥

भावार्थ - वैसे ही सिद्धों का सुख अनुपम है। यहाँ उसकी बराबरी का कोई पदार्थ नहीं है। फिर भी कुछ विशेष रूप से उसकी उपमा कहता हूँ-सो सुनो।

विवेचन -

म्लेच्छः कोऽपि महारण्ये, वसति स्म निराकुलः।

अन्यदा तत्र भूपालो, दुष्टाश्वेन प्रवेशितः ॥ १ ॥

म्लेच्छेनासौ नृपो दृष्टः, सत्कृतश्च यथोचितम्।

प्रापितश्च निजं देशं, सोऽपि राज्ञा निजं पुरम् ॥ २ ॥

ममायमुपकारीति, कृतो राज्ञाऽतिगौरवात्।

विशिष्टभोगभूतीनां भाजनं जनपूजितः ॥ ३ ॥

ततः प्रासादशृंगेषु, रम्येषु, काननेषु च।

वृत्तो विलासिनीसार्थभुक्ते भोगसुखान्यसौ ॥ ४ ॥

अन्यदा प्रावृषः प्राप्तौ मेघाडम्बर मण्डितम् ।

व्योम दृष्ट्वा ध्वनिं श्रुत्वा, मेघानां स मनोहरम् ॥ ५ ॥

जातोत्कण्ठो दृढं जातो-ऽरण्यवासगमं प्रति ।

विसर्जितश्च राज्ञाऽपि, प्राप्तोऽरण्यमसौ ततः ॥ ६ ॥

पृच्छन्त्यरण्यवासास्तं, नगरं तात ! कीदृशम् ? ।

स स्वभावान् पुरः सर्वान्, जानात्येव हि केवलम् ॥ ७ ॥

न शशाक तकां(तरां) तेषां, गदितुं स कृतोद्यमः ।

वने वनेचराणां हि, नास्ति सिद्धोपमा यतः (तथा) ॥ ८ ॥

भावार्थ - एक म्लेच्छ किसी महास्प्य में रहता था। राजा दुष्ट अश्व के द्वारा वहाँ पहुँच गया अर्थात् जंगल को प्राप्त हो गया ॥ १ ॥ उस म्लेच्छ ने राजा को देखा और उसका यथोचित सत्कार किया। जब वह राजा स्वदेश को लौटा तो उस म्लेच्छ को भी साथ ले गया ॥ २ ॥ राजा ने अपना उपकारी जानकर, उसे विशिष्ट भोग साधन दिये और उसे जन-पूजित बनाया ॥३ ॥ उसने प्रासाद-शिखरों पर और रम्य बगीचों में विलासिनियों से घिरे रह कर, भोगसुखों को भोगा ॥ ४ ॥ वर्षा ऋतु आई। बादलों से गगन मण्डित हो गया। वह आकाश को देख कर और मनोहर मेघध्वनि को सुन कर, अरण्य में जाने के लिये उत्सुक हुआ। राजा ने भी उसे विसर्जित किया और वह जंगल में गया ॥ ५ ॥ ६ ॥ जंगल निवासी उसे पूछते हैं- 'तात ! नगर कैसा है ?' वह नगर के सभी स्वभावों को जानता है ही। किन्तु उद्यम करने पर भी, वह वन में वनचरों को कहने में समर्थ नहीं हो सका। ऐसे ही सिद्ध की उपमा भी नहीं है ॥ ७ ॥ ८ ॥

जह सव्वकामगुणियं, पुरिसो भोत्तूण भोयणं कोइ ।

तण्हा-छुहा-विमुक्को, अच्छेज्ज जहा अमियत्तित्तो ॥ १८ ॥

भावार्थ - जैसे कि-कोई पुरुष सभी इच्छित गुणों से युक्त भोजन को करके, भूख-प्यास से रहित होकर, जैसे अमित तृप्त-विषयों की प्राप्ति हो जाने से, उत्सुकता की निवृत्ति से उत्पन्न प्रसन्नता से युक्त-हो जाता है ।

इय सव्वकालत्तित्ता, अतुलं णिव्वाणमुवगया सिद्धा ।

सासय मव्वाबाहं, चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥ १९ ॥

भावार्थ - वैसे ही सर्वकाल तृप्त, अतुल शान्ति को प्राप्त सिद्ध शाश्वत और अव्याबाध सुख को प्राप्त होकर-सुखी होकर स्थित रहते हैं ।

विवेचन - वहाँ केवल दुःख की निवृत्ति मात्र ही है-ऐसी बात नहीं है। किन्तु वहाँ सुखानुभव भी है। यही इस गाथा में प्रतिपादित हुआ है।

सिद्धत्ति य, बुद्धत्ति य, पारगयत्ति य परंपरगयत्ति ।

उम्मुक्ककम्मकवया, अजरा अमरा असंगा य ॥२० ॥

भावार्थ - वे सिद्ध-कृतकृत्य हैं। बुद्ध-केवलज्ञान से सम्पूर्ण विश्व को जानने वाले हैं। पारगत-भव-सागर से पार पहुँचे हुए हैं। परम्परागत-क्रम से प्राप्त मुक्ति के उपायों के द्वारा पार पहुँचे हुए हैं। उन्मुक्त कर्म कवच-समस्त कर्मों से मुक्त हैं। अजर- बुढ़ापे से रहित हैं। अमर-मरण से रहित हैं और असंग-सभी क्लेशों से रहित हैं।

णिच्छिण्ण-सव्व-दुक्खा, जाइजरामरणबंधणविमुक्का ।

अव्वाबाहं सुक्खं, अणुहोति सासयं सिद्धा ॥ २१ ॥

भावार्थ - सिद्ध, सभी दुःखों से रहित होकर, जन्म, जरा, मरण और बन्धन से मुक्त होकर, अव्याबाध शाश्वत सुख का अनुभव करते हैं।

अतुलसुहसागरगया, अव्वाबाहं अणोवमं पत्ता ।

सव्वमणागयमद्धं, चिट्ठंति सुही सुहं पत्ता ॥ २२ ॥

भावार्थ - बाधा-पीडा से रहित अनुपम अवस्था को प्राप्त होकर समस्त अनागत काल सम्बन्धी सुख को पाकर और अतुल सुखसागर में लीन बन कर वे सुखी आत्मा स्थित रहते हैं। अर्थात् विभाव-वेदन-बाधा का आत्यन्तिक अभाव हुआ, अतः स्व-द्रव्य के सिवाय अन्यत्र दुर्लभ है ऐसी अवस्था-अनुपम प्राप्त हुई। किन्तु विभाव-वेदन का अभाव होने पर, वेदनमात्र का अभाव नहीं होता है-स्वभाव-वेदन का अस्तित्व-सुही रहता है। वह स्वभाव-वेदन क्षणिक नहीं, किन्तु समस्त अनागत काल में स्थित रहता है। अतः वहाँ आत्मा आनन्द-घन हो जाता है।

॥ इइ उववाइयसुत्तं समत्तं ॥

शुभं भूयात्

परिशेष

(१)

'उववाइय' सुत्त के विषय का अन्यत्र वर्णन-

तपोवर्णन-

विवाहपण्णत्ती स. २५, उ. ७। स. १३, उ. ८ आदि।

उत्तरज्झयण सुत्त अ. ३०

ठाणंग सुत्त-विभिन्न 'ठाणों' में यथा-ध्यान वर्णन ठा. ४ उ. १।

'मणविर्णय' आदि तपों का वर्णन ठा. ७ आदि।

समवायंग-सम. १२।

चार गति के कारणों का वर्णन- ठाणंग ठा. ४, उ. ४।

अम्बड और अम्बड के शिष्य- विवाहपण्णत्ती स. १४, उ. ८

निह्व -

ठाणंग ठा. ७

परलोक के आराधक-विराधक -

विवाहपण्णत्ती स. १, उ. २

योग-निरोध और 'अफुसमाणगई'

-उत्तरज्झयण सुत्त २९ अ०

सिद्ध-स्तवना

- उत्तरज्झयणसुत्त अ० ३६।



(२)

वर्णन भेद

विवाहपण्णत्ती स. १३, उ. ८ में 'पंडियमरण' के भेद बताते हुए, 'आवकहिय' अनशन के 'पाओवगमण' और 'भत्त-पच्चक्खाण'-इन दो भेदों के 'णीहारिमे य अणीहारिमे य'- ये दो भेद किये गये हैं। उत्तरज्झयण ३० वें अ० में 'सवियार' और 'अवियार' ये दो भेद किये गये हैं और 'नीहारि' और 'अनीहारि'-ये भेद भी गिनाये गये हैं। - गा. १२। १३ 'अवमोदरिया' तप के वर्णन में भी भेद है।

- उ. ३०। १४ से २४ गा०

'मणविणय' तप का वर्णन ठाणंगसुत्त ठा. ७ में इस प्रकार हुआ है। पसत्थ मणविणए सत्तविहे प० तं.-अपावए, असावज्जे, अकिरिए, निरुवक्केसे, अणणहयकरे, अछविकरे, अभूयाभिसंकणे। अपसत्थमणविणए सत्तविहे प० तं-पावए, सावज्जे, किरिए, उवक्केसे, अणहयकरे, छविकरे, भूयाभिसंकणे।

'विवाहपण्णत्ती' स. २५ उ. ७ में वर्णन भेद-

'मनः योगप्रतिसंलीनता' में इतना विशेष है-'मणस्स एगत्तीभावकरणं'। इसी प्रकार वचन यो० में भी-'वईए वि.....

काययोग प्रति० में भी कुछ शाब्दिक अन्तर है।

'मणविणय'-

से किं तं मणविणए ? - पसत्थमणविणए य अपसत्थ मणविणए य। से किं तं पसत्थमण..... ? - सत्तविहे. प. तं. अपावए, असावज्जे, अकिरिए, निरुवक्कमे, अ.....

अपसत्थ म० सत्तविहे प० तं.-पावए, सावज्जे, सकिरिए, सउवक्कोसे, अणहयकरे, छविकरे, भूताभिसंकणे। से तं अ....।

ध्यानवर्णन में 'ठाणंग' गत भेद-

आर्तध्यान के लक्षण में 'विलवणया' की जगह 'परिदेवणया'।

धर्मध्यान के लक्षण में क्रमभेद और 'उवएसरुई' के स्थान पर 'ओगाढरुई'। धर्मध्यान के आलम्बन में 'धम्मकहा' के स्थान पर 'अणुप्पेहा'।

धर्मध्यान की अनुप्रेक्षा में क्रमभेद।

शुक्लध्यान के भेदों में-'सुहुमकिरिए अप्पडिवाई' के स्थान पर 'सुहुमकिरिए अणियट्टी' और 'सुमुच्छिन्नकिरिए अणियट्टी' के स्थान पर 'समुकिरिय अप्पडिवाती'।

शुक्लध्यान की अनुप्रेक्षा में क्रमभेद।

- ठाणंग १४।१

तिर्यञ्चगति के बन्ध के कारणों में 'उत्तकंचणयाए वंचणयाए' के स्थान पर 'कूडतोलकूडमाणेणं'।

- ठाणंग ४। ४।

(३)

'उववाइय' के विषय में विभिन्न दृष्टियाँ

बाह्य दृष्टियाँ-

१. भाषा-गत
२. शैली-गत
३. इतिहास-गत
 - (अ) तत्कालीन नागरिक सभ्यता
 - (आ) तत्कालीन शासक की स्थिति
 - (इ) तत्कालीन शासन की स्थिति
 - (ई) तत्कालीन धार्मिक स्थिति
 - (उ) तत्कालीन व्यायाम-अभ्यंगनादि शरीर शास्त्र से सम्बन्धित पद्धतियाँ
 - (ऊ) तत्कालीन वस्त्र-अलङ्कार
 - (ए) तत्कालीन शिक्षण-पद्धति
 - (ऐ) तत्कालीन विद्या-वैभव
 - (ओ) तत्कालीन सामाजिक दृष्टि
 - (औ) तत्कालीन उद्यान, वास्तु आदि से संबंधित कलाएँ।
 - (अं) तत्कालीन दार्शनिक मत-भेद आदि।

आन्तर दृष्टियाँ-

- (१) ध्यान-पद्धति का प्रयोगात्मक शास्त्र
- (२) देव, गुरु और धर्म की व्याख्या
- (३) अन्तर-वृत्तियों का विश्लेषण आदि।



श्री अखिल भारतीय सुधर्म जैन संस्कृति रक्षक संघ, जोधपुर
आगम बत्तीसी प्रकाशन योजना के अन्तर्गत प्रकाशित आगम

अंग सूत्र

क्रं. नाम आगम	मूल्य
१. आचारांग सूत्र भाग-१-२	५५-००
२. सूयगडांग सूत्र भाग-१,२	४५-००
३. स्थानांग सूत्र भाग-१, २	६०-००
४. समवायांग सूत्र	२५-००
५. भगवती सूत्र भाग १-७	३००-००
६. ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र भाग-१, २	६०-००
७. उपासकदशांग सूत्र	२०-००
८. अनुत्तरोपपातिक दशा सूत्र	१५-००
९. प्रश्नव्याकरण सूत्र	३५-००
१०. विपाक सूत्र	३०-००

उपांग सूत्र

१. उववाइय सुत्त	२५-००
२. राजप्रश्नीय सूत्र	२५-००
३. जीवाजीवाभिगम सूत्र भाग-१,२	६०-००
४. प्रज्ञापना सूत्र भाग-१,२,३,४	१६०-००
५-६. निरयावलिका (कल्पिका, कल्पवतंसिका, पुष्पिका- पुष्पचूलिका, वृष्णिदशा)	२०-००
१०. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति	५०-००

मूल सूत्र

१. नंदी सूत्र	२५-००
२. अनुयोगद्वार सूत्र	५०-००

श्रीघ्न प्रकाशित होने वाले आगम

१. उत्तराध्ययनसूत्र

